
राजेन्द्र अवस्थी
लमसेना

लमसेना

राजेन्द्र अवस्थी

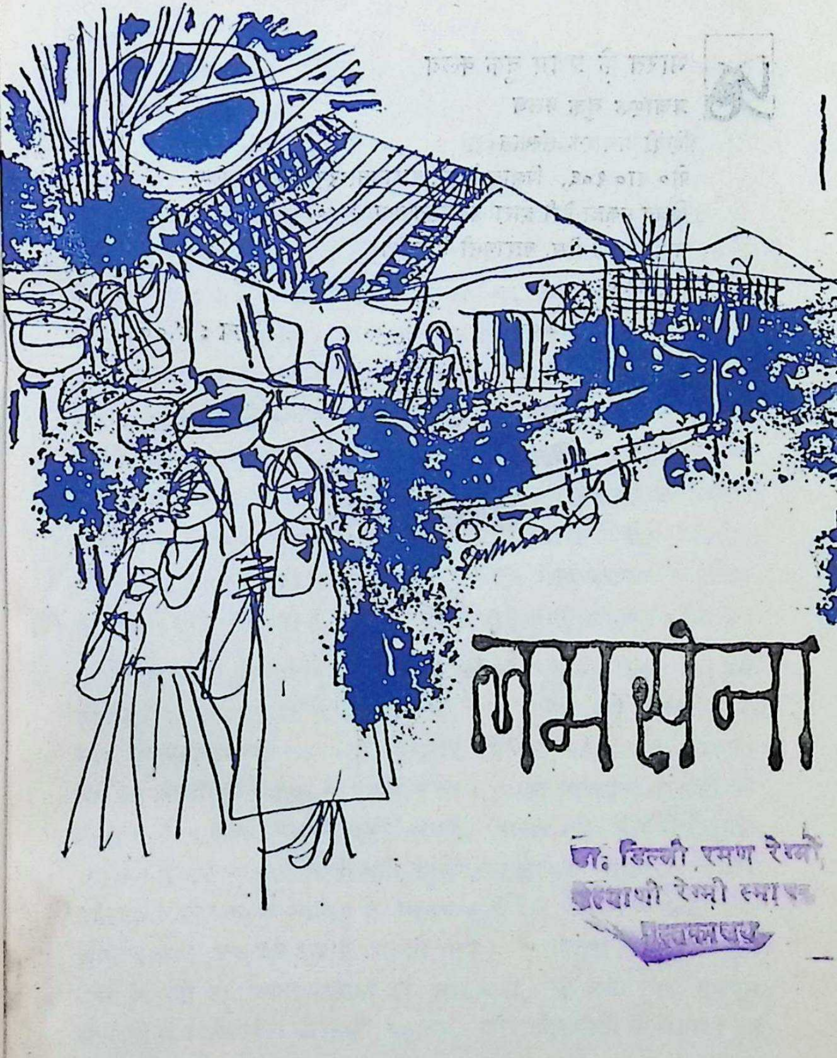
राजेन्द्र अवस्थी

सूरज किरन की छाँव, जंगल के फूल, जाने कितनी आँखें, उतरते ज्वार की सीपियाँ, बहता हुआ पानी, बीमार शहर आदि बहुचर्चित कृतियों के यशस्वी कथाकार। संप्रति 'कादंबिनी' के सम्पादक। 'जंगल के फूल' पर राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त।

प्रचारक बुक क्लब

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो॰बा॰१०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१



जमघेना

भारत के प्रथम बुक क्लब

प्रचारक बुक क्लब

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो० बा० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए

विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा

भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित

सन् १९७६

Rajendra Awasthi
LAMSENA
Stories

मूल्य : ४.००

आंचलिकता क्या है ?

आंचलिकता को लेकर एक परिचर्चा का आयोजन 'सारिका' के अक्तूबर, १९६१ के अंक में मैंने किया था। उस समय कई तरह के विचार सामने आये। हिन्दी में आंचलिकता को लेकर वह पहली परिचर्चा थी। जब मेरा दूसरा आंचलिक उपन्यास 'जंगल के फूल' प्रकाशित हुआ, तब भी कई प्रश्न मेरे सामने आये। उसे लेकर तरह-तरह की चर्चाएं हुईं। आंचलिकता क्या है, कहाँ की अजूबा चीज है ? कैसे आयी ? क्यों आयी ? आदि कई तरह के प्रश्न सामने आये। उसी समय कुछ आलोचकों ने कहा कि अकेले 'मैला आंचल' ने प्रेमचन्द की घिसी-पिटी परस्परा से हिन्दी-साहित्य को मुक्ति दी और उपन्यासों में कहीं गतिरोध था, तो वह इससे दूर हो गया। यह बात केवल 'मैला आंचल' के लेखक के लिए ही गर्व की नहीं है, उस पर समूची नयी पीढ़ी गर्व कर सकती है।

'रेणु' के पहले नागार्जुन ने कुछ आंचलिक उपन्यास लिखे थे। वैसे तो कहा यह जाता है कि आंचलिकता के चिह्न हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही आये। सन् १८६० के उत्तरार्द्ध में जो गद्य लिखा जा रहा था, वह आंचलिक प्रभावों से प्रभावित था। उसमें प्रादेशिक भाषाओं की प्रमुखता थी। आगे चलकर ब्रज, अवधी, राजस्थानी और छत्तीसगढ़ी बोलियों में कई रचनाएँ लिखी गयीं, जिनमें उन क्षेत्रों के रीति-रिवाजों और समस्याओं का कथा के माध्यम से चित्रण हुआ है। प्रदेशों के यही प्रयास आगे चलकर एक बड़े रूप में सामने आये। स्वाधीनता के बाद जनता और विद्वानों का ध्यान जनपदों की ओर गया, जो अभी तक एकदम उपेक्षित थे। जनपदीय बोलियों, मुहावरों और लोकगीतों के संकलन का काम एक आंदोलन की तरह आरम्भ हुआ। स्वाधीनता के साथ ही यत्र-तत्र इन विषयों पर लगातार रचनाएँ छपने लगीं। इस तरह एक साथ

एक बड़े रूप में सारे लोगों का ध्यान इन विविध अंचलों की ओर गया। इसके पहले गाँवों की समस्याओं को लेकर प्रेमचन्द ने एक नये युग का साहित्य में सूत्रपात कर दिया था, परन्तु उनकी दृष्टि दूसरी थी। उनके सामने एक आक्रांत और सताया हुआ समाज था। उस समाज की बुराइयों को जितने अच्छे ढंग से रखा जा सकता था, उन्होंने रखा। परन्तु, एक विशिष्ट गाँव अथवा जनपद को अपनी पूरी कथा का माध्यम न तो प्रेमचन्द ने और न उनके बाद के किसी कहानीकार ने बनाया।

शुद्ध आंचलिकता को अवतरित करने का श्रेय विहार की भूमि को है। शिवपूजन सहाय और नागार्जुन ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किये। नागार्जुन के 'बलचनमा', 'बाबा बटेसर नाथ' और 'वरुण के बेटे' का हिन्दी-साहित्य में अच्छा स्वागत हुआ। दूसरी ओर हिन्दी के कथा और उपन्यास साहित्य में, उसी समय, गतिरोध की बातें सामने आयीं। प्रेमचन्द की परम्परा दम तोड़ती-सी नजर आने लगी। दूसरी ओर व्यक्ति को समाज पर आरोपित करते हुए, व्यक्ति की सत्ता को सर्वोपरि बताकर उसे साहित्य में प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न होने लगे। इन दो धाराओं को लेकर एक विवाद-जैसी स्थिति उत्पन्न हो गय। जहाँ व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता को स्थान मिलेगा, अनेक विनाशक और विघटनकारी तत्त्व अपने-आप उद्‌भूत होंगे। इसलिए व्यक्तिवादी विघातक साहित्य के विरुद्ध और प्रेमचन्द-युग की जर्जर, टूटती परम्पराओं का मोह छोड़कर नये युग के नये आयामों को अपनी समर्थ लेखनी से सामने उभारकर लाने का काम आवश्यक प्रतीत हुआ।

आंचलिकता क्या है?—'अंचल' का सीधा-सादा अर्थ है 'जनपद' या क्षेत्र। जिस कथा-कृति में किसी विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जन-जीवन का समग्र चित्रण—वहाँ की भाषा, वेशभूषा, धर्म, जीवन, समाज, संस्कृति और आर्थिक तथा राजनैतिक जागरण के प्रश्न—एक साथ उघरकर आये, वह 'आंचलिक' कृति होगी। चूंकि ऐसे साहित्य का सम्बन्ध अपने अंचलविशेष से होता है, अतः उसमें न तो प्रतिद्वंद्विता

की भावना के लिए कोई स्थान है और न तुलनात्मक विवेचन की गुंजाइश। प्रत्येक अंचल अपने-आप में पुष्ट है। हर आंचलिक जीवन का परिपेक्षी उसे अपनी दृष्टि से देखता है। इसलिए हर समर्थ कथाकार का अपना व्यक्तित्व होता है और वह अपने-आप में इतना पूर्ण और समृद्ध रहता है कि भारी भीड़ में भी अलग दिखायी देता है। जितन बाबू का आदर्श, ताजमनी का कोमल समर्पण, बलचनमा का परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन, सुखराम नट की परिस्थितियों से जूझने की शक्ति और उसके साथ विपत्ति तथा वेदना के बीच चाँदनी के समान मुसकरानेवाली कजरी और प्यारी का प्रेम, बंजारी के जीवन की भटकन और महुआ तथा सुलकसाए के प्यार के बीच से उभरती हुई विद्रोह की चिनगारियाँ ये सब ऐसे अजर-अमर तत्त्व हैं, जो दूर से ही चमकते दिखायी देते हैं। इनमें आपस में किसी तरह की तुलना सम्भव नहीं है। ऐसे स्वस्थ और प्रतिद्वन्द्विता-रहित साहित्य को अपना अलग व्यक्तित्व मिलना बहुत सहज और स्वाभाविक है।

इधर 'आञ्चलिक' शब्द से एक नया भ्रम पैदा हो रहा है। कदाचित् यह समझा जाने लगा है कि आञ्चलिक उपन्यास वही है, जो केवल ग्रामीण जीवन पर आधारित हो और वहाँ की संस्कृति का चित्रण करे। इस तरह का विचार निराधार नहीं है। इस बीच में हिन्दी में जो लिखा गया है, उसमें अधिकांश कथाकारों ने ग्रामों को ही अपनी लेखनी का सम्बल बनाया है। नागरो जीवन को लेकर कुछ छिटपुट प्रयत्न हुए, पर उनमें विशेष सफलता नहीं मिल पायी। वास्तविकता यह है कि अञ्चल एक देहात हो सकता है, एक भारी शहर भी, शहर का मुहल्ला भी और इन सबसे दूर सघन वनों की उपत्यकाएँ भी। नये सन्दर्भ में 'आंचल' को एक नयी और विस्तृत दृष्टि से देखना चाहिए। महानगर या महानगर का कोई हिस्सा कथा का माध्यम बनकर आ सकता है। इस दृष्टि से बम्बई, दिल्ली और कलकत्ता के जीवन पर लिखे गये उपन्यास या कहानियाँ भी आंचलिकता की सीमा में आती हैं। ग्रामों की ओर सृजन का

बल सम्भवतः समय की आवश्यकता मात्र रहा है। आगे कुछ कथाकारों ने शहरों के उस जीवन को भी माध्यम बनाया है, जहाँ मनुष्य यन्त्र का दास है, अपनी सत्ता वह खो चुका है और कबीर की तरह हाथ में लाठी लिये खड़ा है, किन्तु उसके मुँह के बोल किसी ने छीन लिये हैं।

हिन्दी में आंचलिक कथा-साहित्य का विकास दो रूपों में हुआ है—(१) जिसमें अञ्चल का सौन्दर्य माध्यम है, लक्ष्य नहीं और (२) जिसमें अञ्चल के समग्र जीवन को चित्रित कर देने का अपना एक लक्ष्य है। जितनी भी कहानियाँ या उपन्यास अभी तक इस दिशा में लिखे गये हैं, वे इन दो में से कोई एक और कई बार दोनों को साथ लेकर चले हैं। यहाँ एक प्रश्न उठाया गया है—आज की बदलती स्थिति में गाँवों का रूप-रंग भी बदल रहा है। कहा जाता है कि गाँव, विकास की गति में पीछे छूटकर जड़ रह गये परिवेश के प्रतीक हैं। ऐसे परिवेश का चित्रण ही क्या उच्च और स्थायी साहित्य की शर्त है? यह किस कथा-अधिनियय में आता है?

इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक अच्छा आंचलिक उपन्यास सब कुछ होते हुए भी वह उपन्यास पहले है। उसमें इतिहास हो सकता है, भूगोल के दर्शन मिल सकते हैं, नृतत्त्व शास्त्र की छाया आ सकती है, लेकिन ये सब उपन्यासकार के इष्ट नहीं हैं। उसका इष्ट है, वह कथा-क्षेत्र और वहाँ की मानवीय संवेदना। मानवीय संवेदना कथा का प्राण है। उसी के बल पर कथाकार के पात्र अमर होते हैं, और अलग खड़े दिखायी देते हैं। मानवीय संवेदना ने ही शालार्क होम, हैमलेट और होरी-जैसे काल्पनिक पात्रों को रूप प्रदान किया है। संवेदना के साथ जो सबसे बड़ी बात होगी, वह है दृष्टि की। कथाकार किस दृष्टि को लेकर अपने अञ्चल को देखता और परखता है? गाँव का एक रूप वह है जो जमींदारों और मालगुजारों के जमाने में रहा है, जिसमें निम्न वर्ग के शोषण के सिवाय दूसरे उपयोगी तत्त्व कम रहे हैं। दूसरा रूप है—सूखते, उजड़ते और दाने-दाने को तरसते गाँवों का। लेकिन इनके बाद भी गाँवों के और रूप

हैं—बदलते गाँवों के, जहाँ जर्रे-जर्रे में जीवन की एक नयी धड़कन सुनायी देती है। जहाँ का किसान और खेतिहर अब सामन्ती दासता को बहुत पीछे छोड़ चुका है। वह उन्मुक्त आकाश के नीचे भरी हुई फसल के उन पौधों के बीच खड़ा है, जहाँ हवा का एक झोंका अनन्त यौवन की अंगड़ाइयाँ छोड़ जाता है। जहाँ की संस्कृति ने दुःख और दैन्य के क्षणों में भी जीना सिखाया है। जहाँ का आदमी भूखा रहकर भी शाम को गीत और नृत्य के मजमे में डूब जाता है और अपनी सारी बेबसी को भूल जाता है। उन्हीं गाँवों में अब नवजागरण की एक और अँगड़ाई देखने को मिलती है। अब घर-घर बिजली पहुँच रही है। हर जगह रहटों की आवाजें मुँह-अँधेरे सुनायी पड़ने लगी हैं। अब गाँव बदलते जा रहे हैं। वहाँ की कायापलट हो रही है। राजनीति की साँसें वहाँ भी उभरने लगी हैं और इसलिए आम चुनावों के समय वे सब अपना अधिकार समझकर वोट डालने जाते हैं। ये सब गाँव के बदलते रूप हैं और आज के आंचलिक कथाकारों को इन्हीं रूपों को पकड़ना है। यदि वहाँ अब भी भूत-प्रेतों की मान्यता है, तो उसके साथ-साथ किसी तरह वहाँ नयी दवाएँ भी अपनायी जाने लगी हैं। अपने भाग्य के साथ उन्होंने किस तरह अपने श्रम को जोड़ दिया है! इस बदलती करवट का जो सही चित्रण करेगा, वही उपन्यास अपने अञ्चल के साथ न्याय कर सकेगा। इसलिए आज के बदलते गाँव, वे गाँव नहीं हैं, जो विकास की गति में पीछे छूट गये हैं, बल्कि ये वे गाँव हैं जो विकसित होकर बढ़ तो रहे हैं; किन्तु उनमें शहरी सभ्यता की नाटकीयता अभी तक नहीं आ पायी। और अधिक विकसित होने के बाद इन गाँवों की काया पूरी तरह निखर उठेगी, लेकिन अपना रूप-रंग बदलकर भी वे गाँव ही बने रहेंगे। यदि तथाकथित सभ्यता के विकास में ये केन्द्र जड़ हो गये होते, तो उनसे फिर नयी कोपलें कदापि नहीं निकलतीं।

हमारे देश के विभिन्न अंचल ही हमारी संस्कृति के प्रतीक हैं। शहरों ने हमारी संस्कृति को कभी प्रभावित नहीं किया और न उनके बलबूते

एक विराट सांस्कृतिक धारा बन पायी। हाँ, गाँवों की सहज और उन्मुक्त प्रवृत्तियों की भोंडी नकल अवश्य ही शहरों में हुई, लेकिन उससे सांस्कृतिक विकास की दिशा में किसी तरह का बल नहीं मिल सका। सघन वनों में रहनेवाली जातियों के लोक-नृत्यों को जब सजे-सजाये स्टेजों पर, शहरों में कॉलेजों की लड़कियाँ उपस्थित करती हैं, तो इससे उन्हें भले ही सन्तोष मिल जाए, जिन्होंने कभी गाँव नहीं देखे, वहाँ का वह सहज भोलापन और उल्लास नहीं देखा, लेकिन जिन्होंने यह सब स्वयं देखा है, वे आँसू बहाकर ही रह जाते हैं! इन नृत्य-गीतों में न तो वह थिरकन है, न वह मस्ती और न वह अटपटापन, जो उनकी आत्मा है। रोज और पाउडर में पूरी पुतलियाँ पलाश और आम-महुआ के झाड़ों के नीचे उन्मुक्त खेलती ग्राम-बालाओं की हवा तक नहीं छू पातीं। शहर नकली संस्कृति के केन्द्र हो सकते हैं, संस्कृतियों का उद्गम-केन्द्र नहीं!

इसलिए आंचलिक कथा-साहित्य हमारा सांस्कृतिक उपादान है और यदि विभिन्न अञ्चलों पर किसी तरह का सामूहिक प्रयास किया जाए, तो उससे हमारी बिखरी संस्कृति का एकीकरण हो सकता है और उसमें उपलब्ध समान तत्त्वों, विचारों और प्रश्नों को खोजा जा सकता है, जो किसी भी स्वाधीन देश की बहुत बड़ी अमानत हो सकते हैं। आंचलिक उपन्यासों में किसी एक व्यक्ति का प्राधान्य हो ही नहीं सकता। वहाँ व्यक्ति का स्थान अंचल ले लेता है और वह अञ्चल ही कथा का नायक बन जाता है। वहाँ के घटना-विधान में सभी पात्रों का स्तर समान होता है। सभी पात्र अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व लेकर आते हैं। उनमें चोर से लेकर महापुरुष तक होते हैं और वे सब उस विशिष्ट आञ्चलिक जीवन को पूर्ण करने के लिए ही अवतरित होते हैं। पात्रों की यह विविधता घटनाक्रम में भी असर पैदा करती है। हो सकता है, कथा में बिखराव हो। यह भी हो सकता है कि हर क्षण वहाँ के चित्र बदलते जाएँ, लेकिन कहीं-न-कहीं इन बदलते हुए चित्रों का सम्मिलन-केन्द्र अवश्य

होगा। ये सभी चित्र एक बड़ी प्रवहमान धारा की सहायक धारा के रूप में ही काम करते हैं।

आंचलिक उपन्यासों की चर्चा करते हुए प्रो० गोपाल हाल्दार ने लिखा है—"बंगाल के आधुनिक लेखक अब सच्चे माने में धरती के पुत्र होते जा रहे हैं। उनके साहित्य में स्थानीय अथवा प्रादेशिक पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों और नदी-नालों का पर्याप्त चित्रण होता है। यहाँ तक कि किसी एक रचना को पढ़कर हम बता सकते हैं कि उसका लेखक किस जिले का रहनेवाला है।" इतनी बड़ी विशेषता और किसी तरह के उपन्यास-लेखक में न कभी आयी और न आ सकेगी। इन उपन्यासों ने एक और बड़ा काम किया है। प्रेमचन्द की कहानियाँ गाँवों की बुराइयों और बीभत्सता का चित्र रही है। छोटी-छोटी बातों में होनेवाले झगड़ों से लेकर गाँव में फैली गन्दगी तक को उभारना प्रेमचन्द का श्रेय रहा है। आंचलिक कथाकारों ने इस गन्दगी में भी सौन्दर्य को देखा है। यदि गाँवों में झगड़े हैं, तो जितना बड़ा संगठन वहाँ है, उतना और कहाँ मिलता है? वहाँ आदमी स्वतन्त्र रूप से कुछ है ही नहीं। वह पूरे गाँव की एक इकाई हैं। ऐसा न होता तो जिस आदमी का हुक्का-पानी बन्द कर दिया जाता है, वह आत्मग्लानि से पीड़ित होकर अपने जीवन को मौत से बदतर न समझने लगता। मालगुजारी और जमींदारी प्रथा का अब अन्त हो गया है। कहा जाता है, जब ये थीं, तब गाँव परेशानियों से भरे थे। लेकिन तब भी वहाँ कई अच्छाइयाँ रही हैं। एक गाँव का छोटा-सा किस्सा है। मालगुजार का एक बड़ा खेत कट रहा था। जब खेत कट गया, तो शाम को मजदूरों ने बोझे ढोने शुरू किये। उनमें से एक ने बोझा चुरा लिया और मालगुजार की खलिहान में भेजने की अपेक्षा, वह अपने घर ले गया। उसके दूसरे साथी ने यह देख लिया। उससे न रहा गया और रात को वह बखरी पहुँच गया। बूढ़ी मालकिन को पायलागी करके वह बैठ गया और बहुत हिचकते हुए उसने एक बोझा चोरी की बात बता दी। सुनकर मालकिन बिल्कुल नाराज नहीं हुई। उसने मुनीम

को बुलाया और हुक्म दिया कि इसे दो कुड़े धान दे दिया जाय। वह आदमी हतप्रभ हो गया। बोला, "नहीं मालकिन, मुझे धान नहीं चाहिए। मैंने तो सच्चे नौकर का कर्त्तव्य पूरा किया है।"

मालकिन ने उसकी पीठ थपथपायी और कहा, "सो तो मैं मानती हूँ, पर तुझे भी जरूरत होगी, तू ले जा।" उसे चुपचाप ले जाना पड़ा। दूसरे दिन चोर आदमी को बुलाया गया और आते ही उसने अपना अपराध कबूल कर लिया। वह मालकिन की दया को जानता था। वह रोने लगा। मालकिन तब भी नाराज नहीं हुईं। उसने कहा, "बेटा, तू एक बोझ ले गया, उसका मुझे दुःख नहीं है। वह तूने अच्छा किया। तुझे जरूरत रही होगी और आदमी अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए ही तो चोरी करता है। मुझे दुःख तो इस बात का है कि तूने मुझे नहीं पहचाना। तेरी मालकिन अभी मरी नहीं। तुझे जरा-सी भी परेशानी थी तो मुझसे आकर क्यों नहीं कहा? मेरे जीते जी तूने मुझे मरा समझ लिया, इसी का दुःख है!" एक अपराधी के लिए इससे बड़ा दण्ड और क्या हो सकता था। यह दण्ड तब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया, जब उस किसान ने घर जाकर देखा कि मालकिन ने धान का एक और बोझा उसके घर भेज दिया है और कहला भेजा है कि इससे भी जरूरत पूरी न हो, तो खबर देना। जमींदारी और मालगुजारी से जहाँ हजारों बुराइयाँ थीं, वहाँ अब इतना बड़ा एकाधिकार रखनेवाला भी कोई नहीं रहा। सरकारी नौकरों के अत्याचारों और कानून की पहुँच से बहुत दूर रहने के कारण गाँव का किसान अब पहले से भी ज्यादा सताया हुआ है।

आंचलिक उपन्यासों को पढ़कर बहुत से लोगों का ध्यान उन क्षेत्रों को देखने की ओर गया है। 'जंगल के फूल' पढ़कर कई लोगों ने बस्तर देखने की इच्छा प्रकट की है और 'मैला आँचल' के बाद पूर्णिया देखने की लालसा मुझमें भी जागृत हुई है। आंचलिक कथाओं ने अंचलों को एक नये आकर्षण के रूप में सामने रखा है। यह आकर्षण उन अंचलों

की बुराइयों को पढ़ने के बाद भी बराबर बना हुआ है और यह बहुत बड़ी सफलता है।

अंचलों को लेकर दूसरी भारतीय भाषाओं में बहुत लिखा गया है। मैंने इनमें से कुछ रचनाएँ पढ़ी हैं। पद्मा नदी के माझियों को लेकर माणिक बंद्योपाध्याय का 'पद्मा नदी'। ताराशंकर बन्द्योपाध्याय का 'भगिनी कन्धार काहिनी'। गुजराती का 'मलेला जीव', जिसका कथा-क्षेत्र राजस्थान और गुजरात का सीमा प्रदेशवर्ती उघड़िया गाँव है। मराठी में पेंडसे का 'गारंबीचा बापू' और माडगूलकर का 'बनगर बाड़ी'। कन्नड़ में 'कुड़ियार कुसु' और मलयालम में 'चेम्पियन' ऐसे ही उपन्यास हैं। इन सबका यदि हिन्दी अनुवाद हो जाए, तो आंचलिक उपन्यासों की कोई एक सीधी भारतीय परम्परा ढूँढ़ने में बड़ी सहायता मिलेगी।

कुछ समय पहले मैंने मिखाइल शोलोकोव का 'वर्जिन सायल अपटर्न' (कुमारी धरती का जागरण) पढ़ा था। उपन्यास में देन अंचल के ग्रेमियाची लंग कागासी गाँव में इस शतक के चतुर्थ दशक में घटनेवाली घटनाएँ हैं। कागासी अंचल की मिट्टी की गन्ध से ओत-प्रोत नव-निर्माण के कार्य में लगे हुए वहाँ के लोग, उनके वैर-विरोध, हँसी-रुदन और जीवन के अनेक द्वन्द्वों का मधुर चित्रण है। शोलोकोव को हाल ही उनके आँचलिक उपन्यास 'क्वाइट फ्लोज द डॉन' (धीरे बहे दोन रे) पर नोबल पुरस्कार भी मिला है। नट हमसुन के 'ग्रोथ आफ द सायल' को पढ़कर हम उत्तरांचल के एक छोटे-से खण्ड में पहुँच जाते हैं। विलियम फाकनेर के सभी उपन्यासों में संयुक्त राज्य अमरीका का दक्षिणांचल ही कथांचल रहा है। सर्विया प्रान्त के हर्जेगोविना और बोस्तंनमा अंचल की पूरी कहानी दूर्वा आंदिच (यूगोस्लाविया) के उपन्यास ट्रिना नदी के कगार पर' में पढ़ी जा सकती है। 'अँकारा का बन्दी' स्वात दरवेश (तुर्की) की आंचलिक कृति है। मिसीसिपी नदी के किनारे रहनेवाली आदिमजातियों को लेकर और एक ग्रामीण अंचल को अपनी कथा का

धरातल बनाकर मार्क ट्वेन ने अपने उपन्यास 'लाइफ ऑन मिसीसिपी' में वहाँ के सारे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन को उभारकर सामने रख दिया है। यह उपन्यास अपने देश के आंचलिक कथा-साहित्य का एक सीमाचिह्न है। टामस हार्डी और अर्नेस्ट हेमिंग्वे के उपन्यासों में भी वहाँ के विविध अंचलों की जीती-जागती कहानी पढ़ने को मिलती है।

इन सारे उपन्यासों के वाद भी हिन्दी के किसी आंचलिक उपन्यास में इसकी कोई छाप नहीं है—न कथ्य, न शिल्प, न एप्रोच और न विचारों में। शायद यह सम्भव नहीं है। मैंने पहले कहा है कि दुनिया का हर अंचल अपने-आप में पुष्ट है। उसकी अपनी विशेषता है और उसकी अपनी संस्कृति है। ऐसी स्थिति में एक अंचल का प्रभाव दूसरे पर नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक आंचलिक कृति मौलिक और अकेली है। हर प्रभाव से अछूती अपने-आप में परिपूर्ण !

अब प्रश्न रह जाता है, आंचलिक उपन्यासों की भाषा के सम्बन्ध में। अंचलों के प्रचलित शब्दों, बोलियों, मुहावरों और लोकोक्तियों तथा गीतों का प्रयोग अपने कथा-सूत्र में करें या नहीं ? यदि करें तो किस सीमा तक ? मेरा ख्याल है कि यह बड़े विवाद का प्रश्न नहीं हो सकता। किसी भी कृति का मूल्य उसकी सरसता और सुबोधता पर होता है। उलझन हर जगह भँवर ही पैदा करती है और उससे मस्तिष्क की उलझन और खोखलापन ही सामने आता है। इसलिए मूल कथा-सूत्र में सरसता को रोकनेवाला हर तत्त्व वाधक है—वह चाहे भाषा से सम्बन्ध रखता हो, चाहे वोली से। उसमें स्थानीय शव्दों का प्रयोग उस सीमा तक होना चाहिए, जहाँ तक वे भाषा में अनगढ़पन और अनपच उत्पन्न न करें। हमारे लोक जीवन में युगों से संचालित शब्दों अ र वोलों ने अपनी अक्षुण्णता आज भी सुरक्षित रखी है। ऐसे शब्द किसी भी भाषा की अनुपम निधि हो सकते हैं। वे न केवल अपने अर्थों, वल्कि अपनी ध्वनि से भी हमें आकर्षित किये विना नहीं रहते। इसलिए कथाकार जव एक सर्वहारा

वर्ग के प्रतिनिधित्व का दम भरता है, तो दूसरी ओर उसे उस वर्ग के प्रति भी सचेष्ट और आस्थावान होना चाहिए। उस अंचल का ठीक चित्र प्रस्तुत करने के लिए भी, वहाँ के कुछ शब्दों, गीतों आदि का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। फिर प्रत्येक आंचलिक उपन्यास की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। उस शैली में जितना कुछ खप सकता हो, खपाया जा सकता है। हाँ, अपने पाठकों की याद लेखक को हमेशा रखनी चाहिए। अतः आंचलिक धारा हिन्दी के कथा-साहित्य में एक स्वस्थ दिशा की द्योतक है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक कहा है कि—"आंचलिक उपन्यासों में पिंड में ब्रह्माण्ड की कल्पना है, अणु में समग्र व्यापार को नियोजित करने की चेष्टा है।"

●

विभाजन

नीला आकाश और उसमें खिला पूनों का चाँद—सोता हुआ सागर भी जिसे देखकर उन्माद में आ जाता है और उसमें भयंकर तूफान उठने लगते हैं।

कुछ ऐसी ही थी साँवली मोटियारी की भरी-पूरी मांसल देह। उसमें थे अनगिनत गुदने के निशान, जैसे वटोही वसन्त को देखकर खेत में लगी सरसों अपने-आप फूल उठती हैं। गाँव के न जाने कितने युवक मोटियारी को प्यासी आँखों से घूरा करते थे। जब वह हमजोली लड़कियों के बीच होती, तो भी सबमें अलग दिखती, जैसे अँधेरी रात में अनगिनत तारों के बीच शुक्र चमकता है। लगता था, गोदनेवाले ने अपना सारा कला-कौशल उसी की देह में भर दिया है।

वह बचपन से गुदने गुदाती आ रही है। कब से यह क्रम चला, वह नहीं जानती, पर एक बार की बात उसे याद है। तब वह सात-आठ बरस की रही होगी। एक बैगा बुढ़िया उसकी पीठ पर मछली बना रही थी। सूजे की नोक जब मांस में चुभती, तो वह चीख उठती थी। इसके पहले गुदना गुदाते समय उसे इतना दर्द कभी नहीं हुआ था। मछली पूरी नहीं बन पायी थी कि उसने पीठ ऊपर उठा ली थी। उसकी माँ ने तब उसे समझाया था। उसने कहा था "यह सुख का दर्द है बेटी। जिस तरह अँधेरी रात के बाद उजेली रात आती है, उसी तरह ये निशान तेरे जीवन को बदल देंगे। ये तेरे लिए मनचाहा प्रेमी खोज कर लायेंगे।" माँ ने उसे यह भी बताया था कि गुदने जिन्दगी में अच्छा साथी देकर धरती में स्वर्ग लाते हैं और मरने के बाद यमराज की यातना से बचाते हैं। माँ की यह बातें सुनकर मोटियारी ने अपनी साँस साधी थी और हिम्मत कर पीठ पर मछली बनवायी थी। जब मछली बन

गयी, तो पुरा-पड़ौस के न जाने कितनी लड़के-लड़कियों ने उसकी पीठ ठोंकी थी। तब से मोटियारी बराबर बड़ी लगन के साथ गुदने गुदाती रही और आज तक गुदाती चली आ रही है। अब उसकी देह में तिल रखने की भी जगह बाकी नहीं है। अब उसे गाँव के हर युवा लड़के का प्यार मिलता है। अब तक कई लड़के उसके सामने अपने प्यार की झोली फैला चुके हैं, पर वे सब झोलियाँ अब भी रीती हैं।

मोटियारी दिन-भर छाती मार कर काम करती है—कभी बेवर की सफाई, कभी जंगल में महुआ, चार और तेंदू की बिनाई, तो कभी बनी-मजूरी से बूढ़ी फसल की कटाई। सोने-जैसी फसल काटने में उसे मजा आता है, शायद इसलिए कि खेतों में झुकी बालों को देखकर उसका मन विद्रोह कर उठता है। उसने खुद सिर झुकाना कभी नहीं सीखा, सिर झुकाने का कभी समय ही नहीं आया। वह सोचती है, सिर झुकाना लाचारी है और कमजोरी का चिह्न है और ये दोनों बुढ़ापे की निशानी हैं, इसलिए जो फसल बुढ़ा गयी है, उसका सिर तुरन्त कुचल दिया जाय, ताकि वहाँ फिर नयी फसल उगे, जो हर्ष और उमंग से भरी हो, जिसकी हरी देह बार-बार लचक कर नाचे और गाये और उसके साथ किसी तरह का विद्रोह न करे। तभी तो, जब मोटियारी पके धान और पके गेहूँ के पौधों को काटती है तो सब देखकर दंग रह जाते हैं। उसमें इतनी ताकत कहाँ से आ जाती है। जब गेहूँ और धान के हरे जवान पौधे लहराते हैं और हवा उन्हें चूमती है तो जैसे सारा खेत अँगड़ाई लेने लगता है। उसके हर कोने से साँप-जैसी ऐंठन उठने लगती है और यह देखकर मोटियारी भी एक मीठी जम्हाई लेती है। उसे लगता है कि वह दौड़कर खेत की सारी फसल को समेट ले और लिपट कर उसका भरपूर चुम्बन कर ले। कभी वह मस्ती में आकर ददरिया और बिरहा भी छेड़ देती है। उसके गीतों को हवा की लहरें दूर-दूर ले जाकर बिखेर देती हैं और जब वे किसी मनचले युवक के कान में पड़ती हैं, तो वह अपने को भूल जाता है और पागल होकर उसकी तरफ दौड़ा आता है। तब

मोटियारी खड़ी-खड़ी हँसती रहती है। आकाश में बिजली की तरह उसके दाँत चमकते हैं और उन्हें देखकर बड़े-बड़े प्रेमियों की हिम्मत पस्त पड़ जाती है।

एक दिन मोटियारी हिरदे के बाँध की मेंड़ पर खड़ी थी। खेत में चने के हरे झाड़ खड़े थे। एक-एक झाड़ सिर से पैर तक घेंटियों से लदा था। हरे झाड़ों में गोल और नुकीली घेंटियाँ—मोटियारी उन्हें ताक रही थी। उसकी आँखें झाड़ों पर सिमटी थीं। शायद वह सोच रही थी कि इन सुन्दर और हरी घेंटियों में भी काँटे-जैसी नोंक क्यों हैं? काफी देर तक वह अपलक खेत को देखती रही और फिर एकाएक न जाने क्या उमंग उठी कि उसने तान छेड़ दी। वह गाती और डोलती रही और जब उसने अपनी नजर खेत से उठाकर सामने डाली, तो वहाँ एक युवक खड़ा दिखा—काँधे में तीर और कमान रखे। उसे देखकर वह एक पल को तो मुसकरा दी, पर फिर अपने-आप उसकी त्यौरियाँ चढ़ गयीं। बोली—"क्या घूरता है रे? कहाँ का है?"

"तुझे, धरती का हूँ" कहकर उसने मुसकरा दिया। उसकी मुसकराहट जैसे मोटियारी को काट गयी। बोली—"निरा गँवार है, शकल से तो बैगा लगता है।"

"वही हूँ भी" "मेरी छाती काँप रही है। तुझे देखा तो सहारा पाने के लिए चला आया।" वह बोला।

मोटियारी का चेहरा कुछ झुका, शायद वह शरमा गयी थी, पर तुरन्त ही उसने अपने सिर को एक झटका दिया और आँखें चढ़ाकर बोली, "बड़ा शिकारी दिखता है। जान न पहचान, चाहे जिसे छेड़ने चला।"

वह उसके पास आ गया, काँपने का उपक्रम करने लगा। बोला, "सच कहता हूँ, डर लग रहा है।"

"डर, बैगा होकर। काहे का?"

"र—क—सा।"[1] उसने अपने सारे शरीर में भय के चिह्न समेटे।

"दिन में रक्सा।" मोटियारी ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, पेले बाजू की मेंड़ में; क्या आग उगलता था, प्रेम का अपना सारा पागलपन जैसे वह धरती पर उगल देना चाहता हैं। मैं तो काँप उठा, री।" वह बोला।

"ये तीर और कमान क्या देखने के हैं?" मोटियारी ने कहा।

"यही समझ ले। उसे देखकर तो मेरी छाती काँप गयी। इन्हें क्या सम्हालता, और—"

पास आकर उसने मोटियारी के हाथ पकड़ लिये और कहा, "यहाँ से चल भाग चलें, किसी झाड़ की आड़ में, आता होगा दईमारा।"

मोटियारी सिहरी। उसने चारों तरफ देखा। काँपते शब्दों में बोली, "यहाँ तो नहीं दिखता, रे।"

"वह....वह, वह... देख"—उसने बायीं ओर इशारा किया और फिर मोटियारी का हाथ खींचकर बोला–"भाग, इसी तरफ आ रहा है।"

दोनों भागने लगे। बीच-बीच में वह युवक बराबर आवाज लगाता रहा—"वह आया, वह।"

काफी दूर जाने के बाद, एक दूसरे खेत की मेंड़ पर, जरिया के घने झाड़ों की आड़ में दोनों ठहर गये। मोटियारी काँप रही थी। बोली, "मुझे तो डर लगता है रे, देख रक्सा आ तो नहीं रहा।" युवक ने एक कदम बाहर आकर यहाँ-वहाँ देखा। बोला—"अभी दिखता तो नहीं, क्या जाने कहाँ है? किसी आड़ में न हो।"

"तो चल, हम गेंवड़े की तरफ भाग चलें"—मोटियारी ने कहा।

"धत्त"—वह बोला, "मेरे रहते इतना डरती है। थोड़ा यहीं बिलम लें, अपने आप भाग जायगा निगोड़ा।"

---

१. रक्सा एक सर्वमान्य जानवर है। कहा जाता है, वह अपने मुंह से आग उगलता है।. सचाई यह है कि उसके मुँह में फासफोरस जैसा पदार्थ होता हैं और जब वह मुँह खोलता हैं, तो दूर से आग-जैसी लपटें दिखायी देती हैं।

"डरता तो तू है रे"—मोटियारी ने साहस बटोरकर कहा, "अब शेखी मारने लगा। जाने कहाँ से अपना डर मिटाने के लिए मेरी तरफ भागता आ रहा है।"

"हूँ"—उसने कहा और मुसकरा दिया।

वह जमीन पर बैठ गया। मोटियारी का हाथ पकड़कर उसने खींचा। उसकी बाजू में वह भी बैठ गयी। छिवले का एक पत्ता तोड़कर वह युवक हवा करने लगा। बोला, "तू जो न मिलती, तो जान निकल जाती। मेरा तो करेजा मुँह तक आ रहा था।"

"कैसा बैगा है तू, बैगा तो जंगल का राजा होता है—जरूर तेरी नसल में फरक हैं।" कहकर मोटियारी ने अपनी धोती का छोर दाँतों में दबा लिया। उसे डर था, कहीं वह बिगड़ न जाय। पर युवक नहीं बिगड़ा। बोला, "गोंड़िन का साथ हो गया है, नसल में फरक आ हीं गया।" उसने अपनी टेंट से छिवले के पत्तों की चिलम निकाली, उसमें तम्बाकू भरी और चकमक से आग सुलगायी। उसकी कश खींचते हुए बोला, "अब चैन आया, तेरा नाम क्या है, री ?"

"मोटियारी" वह बोली।

"असल नाम बता। यह तो तेरे घोटुल की निशानी है।"

"नहीं रे, यही मेरा असल नाम भी है।"

"नाम से भी मोटियारी और काम से भी मोटियारी !"—उसने आश्चर्य से कहा।

मोटियारी ने हँस दिया, "तू कहाँ का चेलिक है, रे।" उसकी हँसी में शरारत थी। युवक उसे भाँप गया। बोला, "काश, हमारी जात में चेलिक होते। तेरा घोटुल ही अपना बनाता। सचमुच घोटुल तो सपना है री, हमारे लिए।" उसने एक लंबी सांस ली। मोटियारी चुप रही। वह कहता गया, "लोग मुझे लामू कहकर पुकारते हैं, पीपरदेही में रहता हूँ। नाम तो तूने सुना होगा ?"

"सुना क्या, कई बार देख आयी हूँ। तू जानता है टिटरू को ?—ठगुआ को ?—ननकू को ?—फगनी को ?"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं, इन सबको जानता हूँ" लामू बोला—"टिटरू तो मेरा जिगरी है। ननकू जरा छोटा बैठता है, इसलिए कक्कू कहता है ठगुआ तो पड़ोसी है और फगनी, उसकी न पूछ, लड़की है बाँकी, पर निगोड़ी उचटती ज्यादा है।"

मोटियारी ने अपने दोनों होंठ दबाकर हँसी रोकी। बोली, "मतलब ?

"यही"—उसने कहा—"पैसे के पीछे जान देती है। गाँव में जितने अफसर अब तक आये हैं, सबकी सेवा की है उसने। हमारी जात में होती तो काट कर रख देता।"

"सुना है, फगुआ में उसका ब्याह होनेवाला है"—मोटियारी ने पूछा।

"सपने की बात करती है, मोटियारी।"—लामू बोला—"उस फर-फन्दन से भला कौन ब्याह करेगा ? हाँ, तीन-चार बच्चोंवाला रँडुआ भले ही पकड़ ले।"

"दिखती तो ऐसी नहीं, लामू। बोलने में मीठी है और सूरत भी तो तुरइया है।"

"यही तो खराबी है, मोटी"—लामू बोला, "काँटा फूल में ही चुभता है और भौंरा भी तो चमेली को देखता है।"

मोटियारी सम्हलकर बैठ गयी। पीछे कुछ सूखे पत्ते पड़े थे। उन्हें समेट कर उसने उन्हें पीछे लगा लिया और टिक कर बैठ गयी। बोली, "अच्छा, देख भला, रक्सा अब कहाँ है ? जाना।"

लामू ने जरिया की छाँव के बाहर आकर चारों तरफ देखा, बोला, "वह खड़ा है, वह।" और फिर भाग कर मोटियारी के पास सिमिटकर बैठ गया। मोटियारी उसी तरह बैठी रही, बोली, "अजीब बात है, अभी तक रात में सताता था, अब दिन में भी सताने लगा।"

"हाँ मोटियारी।" लामू ने भय के चिह्न अपने चेहरे पर लाते हुए कहा। मोटियारी उठकर खड़ी हो गयी। उसने लामू के हाथ से कमान छीन ली। कहा,—"कैसा पहाड़ी है। बैंगा तो खूँखार शेर के भी दाँत उखाड़ देता है। चल, रक्से को मैं देखती हूँ।"

"नहीं मोटियारी, अब तो और मुसीबत होगी, तू जो साथ में है। जानती है, रक्सा निराश प्रेमी होता है। वह प्रेम में पागल घूमता रहता है और जवान कुमारियों को यदि कहीं देख लेता है, तो मुँह की सारी आग उन पर उगलता है। इसी से मुझे अपने से ज्यादा तेरा डर लगता है।"

"डरपोंक कहीं का। पहली बार ऐसा डरपोंक बैंगा देख रही हूँ। आखिर है तो वह जानवर ही।"

"जानवर नहीं, भूत है।" लामू ने कहा।

"एं! भूत है? पर कब तक हम ठहरेंगे? मैं बायें हाथ के रास्ते से जाती हूँ, पीछे के गेंवड़े से गाँव चली जाऊँगी।" उसने कमान लामू को लौटा दी और जाने लगी। लामू ने उठकर उसका हाथ पकड़ लिया। बोला, "देख, वह आ रहा है।"

अबकी बार मोटियारी ने बड़ी हिम्मत दिखायी। बोली, "आने दे, सामने आयेगा, तो निबट लूँगीं। गेंवड़े तक गाँव का कोई मिल ही जायगा।"

"नहीं मोटियारी, घड़ी-भर और बिलम ले।" अबकी बार लामू के स्वर में आग्रह था।

"नहीं।"—मोटियारी ने फिर कदम बढ़ाये, तो लामू ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए। बोला, "एक बात कहूँ मोटी।"

"कह"—वह बोली।

"तेरा नाम मेरे गाँव तक पहुँच गया है। सुना है नाचती क्या है, हवा में उड़ती है। एक पैंतरा तो दिखा दे।"

मोटियारी ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया, बोली—"इतने उजेले में हाथ पकड़ता है, डर नहीं लगता ? कोई देख लेगा तो ?"

"अरी, डर लगता तो दिन को रक्सा मेरे पीछे क्यों पड़ता ।"

"जरूर तू किसी ऐसी लड़की से प्यार करता रहा होगा ।"—मोटियारी ने व्यंग्य कसा ।

लामू चौंका । उसे लगा कहीं मोटियारी सचमुच गलत न समझ बैठे । बोला, "प्यार तो कई ने जताया है री, पर जब से तेरी सूरत देखी है, सबको भूल गया हूँ ।"

"मेरी सूरत ! वह तो तूने आज देखी है रे । कितना झूठ बोलता है ।" मोटियारी हँसी ।"

"तू क्या जाने री, परकी साल तू फागुसेंगरा में हमारे गाँव आयी थी, बस तभी से साँप लोट रहा है ।"

"चल जा ।"—वह बोली—"परजात में शादी करने चला है, जानता है क्या होता है परजात में शादी करने से ?"

लामू ने सिर हिलाकर नाहीं कर दी—गोया इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता हो ।

वह बोली, "परजात में शादी की थी केतू ने, बैगन थी वह । एक दिन वह बाजार से लौट रहा था कि रास्ते में शेर ने उस पर धावा बोल दिया । झाड़ में चढ़कर वह मुश्किल से जान बचा पाया । तीन दिन बाद टौरिया के पास शेर ने उसे फिर छेड़ा, पर किसी तरह वह बच निकला । तब उसी रात वह शेर उसकी सार से वह बैल ले गया, जिसे वह महीने-भर पहले ही खरीद कर लाया था । उसके बाद जानता है, क्या हुआ ?"

"क्या हुआ मोटियारी ?" लामू ने पास आकर पूछा ।

"यही कि उनका लड़का जब हुआ; तो अंधा और बहरा निकला । गुनियाँ ने खूब झाड़-फूँक की, असर कुछ न हुआ । दूसरे दिन उसकी औरत पर न जाने कौन भूत सवार हुआ कि उसने कुएँ में डूबकर अपनी जान दे दी । यह मिला परजात में शादी करने का मजा ।" मोटियारी ने

बात पूरी कर लामू की ओर देखा। वह खड़ा-खड़ा हँस रहा था, बोला, "नहीं जानती? बैगा हूँ। शेर मेरा भाई है, मुझे तंग नहीं कर सकता।"

"देख ली तेरी वीरता! रक्सा से डरकर दौड़ा आया मेरा सहारा लेने, कितना वीर है!" मोटियारी बोली।

लामू हँसा, खूब हँसा। इतना कि उसके पेट में बल पड़ने लगे। बोला, "कैसा बनाया। कितनी मूरख है! दिन में कहीं रक्सा आता है?"

वह हँसता गया। मोटियारी को गुस्सा आ गया। उसने अपनी आँखें लाल-पीली कीं। बोली, "बड़ा आया प्यार का ठेकेदार। कोई देख लेता और उससे मैं रक्सा की बात करती तो हँसी मेरी होती। तुझे क्या है, तू मेरे बारे में भी वही कहता जो अभी फगनी के बारे में कह रहा था।"

"नहीं मोटियारी, कहाँ तू और कहाँ फगनी" वह बोला।

मोटियारी ने उसे आगे बोलने से रोक दिया। बोली, "बस, रहने दे।" और गेंवड़े की तरफ वह दौड़ गयी। लामू पीछे लगा, पर सामने से कोई आता दिखा तो खड़ा हो गया। मोटियारी ने लौटकर जीभ दिखायी और अँगूठा बताया और आगे बढ़ गयी। फिर पीछे लौटकर उसने नहीं देखा। लामू खड़ा-खड़ा उसे तब तक निहारता रहा, जब तक वह मेंड़ छोड़कर गेंवड़े की पगडण्डी में नहीं उतर गयी।

बियारी के बाद मोटियारी ने अपना सिंगार किया। लाल-हरा फुंदरा चोटियों में बाँधा और गले में लाल-सफेद घुंघचियों की माला पहनी। अपनी चटाई लेकर रोज की तरह वह घोटुल की ओर चली गयी। दस-ग्यारह साल हो गये, वह इसी तरह रोज घोटुल जाती है। जब वह पाँच साल की थी तब से घोटुल जा रही है। पहले दिन उसका बाप उसे साथ लाया था। मुंशी के सुपुर्द मोटियारी को कर वह चला गया था। मुंशी ने तब उसे घोटुल के सारे नियम समझाये थे। धीरे-धीरे वह सब कुछ समझ गयी थी। घोटुल की तरफ उसका आकर्षण अपने-आप बढ़ गया था और वह रोज साँझ होने का रास्ता देखती रहती थी। उसके सामने घोटुल में अब तक न जाने कितने समारोह हो चुके थे, न जाने

कितने जोड़े व्याहे जा चुके थे। न जाने कितने युवकों से नाच और गाने में वह होड़ लगा चुकी थी और कितने ही युवकों की प्रेम-भरी नजरें उस पर सीधी थीं। पर, वह जिसे चाहती थी वह था—सीतल! तीन-चार साल सीतल के साथ उसने हँसी-खुशी में विताये थे।

सीतल बाँका नौजवान था। जात का गोंड़ था, पर वैगा से कम वीरता उसमें नहीं थी। था भी खूबसूरत। उसी गाँव में वह रहता था। लहकी उसे खूब आते थे और करमा के पैंतरे में तो वस उसकी जोड़ नहीं थी। शैला होता तो बाँसों उछलता था, ददरिया में अपनी देह केंचुए की तरह सिकोड़ता था। वह अपने नाच के लिए दूर-दूर प्रसिद्ध था। उसके साथ मोटियारी को भी जाने को मिलता और इस तरह मोटियारी भी ख्याति पा गयी थी। अब वह नहीं रहा। मोटियारी को घोटुल जाना पड़ता इसीलिए जाती है ऐसा बाँका उसे कोई नहीं मिला; जो उसकी आँखों की पुतलियों में समा जाय। सीतल ने मोटियारी के पीछे ही अपनी जान दे दी थी। पीपरदेही के मालगुजार के बेटे ने एक रात मोटियारी को जबरन अपने कमरे में बन्द रखा। सीतल ने दूसरे दिन सवेरे-सवेरे टँगिया से मालगुजार के वेटे के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और खुद जाकर अपने को पुलिस के हवाले कर दिया था। उस पर दो बरस मुकदमा चला और अन्त में फाँसी की सजा हो गयी। उसके बाद मोटियारी ने किसी से अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ा। घोटुल के नियमों के अनुसार उसे किसी-न-किसी युवक के सहारे रहना पड़ता, पर उसने इस चुनाव में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी और न किसी युवक को अपना मन दिया।

आज जब वह घोटुल में आयी; तो रोज की तरह वहाँ चहल-पहल थी। एक कोने में अपना बिछावन रखकर वह भी धूनी के सहारे बैठ गयी। वहाँ घोटुल के और सदस्य भी बैठे थे। बेलोसा और दुलोसा[१] ने

---

१. बेलोसा और दुलोसा—घोटुल की कुमारियाँ होती हैं, जो सदस्यों को काम बाँटती हैं।

सबको अगले दिन का काम बाँटा। चालकी[1] ने सबको तम्बाकू दी। जमादार[2] ने कंघियाँ बाँटी। मुन्शी[3] ने सबकी हाजिरी ली और मुखवान[4] ने सबकी खैर-खुशी पूछी। मुन्शी ने फिर तुरही बजायी। साँवरिया ने सुझाव रखा कि आज नाच के बदले किस्सा-कहानी हो तो कैसा रहेगा ?

"किस्सा"—गुरमटिया बोली, "बहुत अच्छा रहेगा। सुना है बैगा राजा अच्छा किस्सा जानते हैं। गाँव में एक बैगा आया है, पंचों की राय हो तो उसे बुला लिया जाय।"

मोटियारी ने सुना तो दंग रह गयी। यह कौन बैगा है, कहीं वही तो पीछे नहीं लगा ? मुन्शी ने सबकी राय ली। सबने हामी भर दी तो बैगा को बुलाया गया, वह लामू ही था। मोटियारी ने देखा तो उसका खून सूख गया। सोचने लगी, वह कहीं फिर हरकत न करे या दिन की बात ही सबसे न कह दे। मुंशी ने बैगा से कोई वीरता-भरी कहानी सुनाने को कहा, तो बैगा ने हँस दिया। बोला, "पागल हुए हो ? रात को भी क्या किसी से लड़ना हैं ? मैं तो ऐसी मजेदार कहानी सुनाऊँगा कि जिसे सुनकर तुम सबको मजा आये।"

दिलोसा ने उसकी बात का समर्थन किया। बैगा ने कहानी शुरू कर दी—'एक गोंड़ लड़की-जैसी सुन्दरता पाना मुश्किल होता है। बैगा वीर होता है, पर सुन्दरता के लिए तरसता है, इसलिए एक दिन एक बैगा एक गोंड़ लड़की से प्यार कर बैठा। वह अपना प्यार कैसे जताये, यह उसके सामने उलझन थी। पर एक दिन वह भी सुलझ गयी।

"सूरज ठीक सिर पर था और जैसे औंधा होकर सारे खेत को अपनी जलती आँखों से निहार रहा था। एक बैगा पूरब से आ रहा था। वह

---

१. चालकी—घोटुल का सदस्य, जिसका काम सदस्यों को तम्बाकू बाँटना है।

२. जमादार—सदस्यों को कंघी बाँटता है।

३. मुंशी—घोटुल इंचार्ज।

४. मुखवान-निरीक्षक सदस्य।

हाँफ रहा था । उसने एक मेंड़ पर एक गोड़िन को देखा । बस, वहीं ठहर गया और चिल्लाने लगा—"रक्सा, रक्सा ।"

किस्सा कहते-कहते उसने मोटियारी की तरफ देखा । मोटियारी ने शरम से अपनी पलकें झुका लीं । पर, फिर भय के चिह्न बनाकर उसने सिर ऊपर उठाया और बैगा की ओर चुप रहने का इशारा किया । लामू ने मुसकरा दिया और अपने गले में जोर देकर कहने लगा—"हाँ, तो उस लड़की ने उनकी रक्षा की रक्सा से । रक्सा जैसे लड़की को देखकर भाग गया । बात उल्टी है, पर सच है । वैसे रक्सा क्वाँरी लड़कियों को देखकर और आग उगलता है, पर उस दिन उसने ऐसा नहीं किया । शायद वह लड़की कोई देवी रही है ।"

"देवी !" मुन्शी ने आश्चर्य से कहा—"वह कहाँ है ? हमें उसकी पूजा करनी चाहिए ।"

बैलोसा खूब खिलखिलाकर हँसी, बोली, "सचमुच सब पागल हो गये । कहीं रक्सा दिन में आता है ?"

"अरे भाई, यह तो कहानी है । सब उलझ कैसे गये ?"—साँवरिया बोला ।

बैगा ने इन सब बातों पर कान नहीं दिया । वह मोटियारी को देखता रहा । मोटियारी छुई-मुई हो रही थी । उसकी बाजू में रतीराम बैठा था । रतीराम घोटुल का पुराना सदस्य है । उसमें न जाने क्या खराबी है कि इतने समय के बाद भी वह किसी लड़की का प्यार नहीं पा सका । उसके सामने दर्जनों जोड़े घोटुल से निकलकर चले गये, पर वह जहाँ-का-तहाँ है । नियम के अनुसार कुछ दिनों से मोटियारी—घोटुल में उसके साथ रहती थी । इस बार उसने बड़ी आशाएँ लगा ली थीं । सोचता था, मोटियारी जिसे चाहती थी, वह तो दुनिया छोड़कर चला गया, अब उसका रास्ता आसान हो गया है । इस बार उसे निराश नहीं होना पड़ेगा । वह चुपचाप कहानी सुन रहा था और कभी मोटियारी को देखता, तो कभी बैगा को । कभी-कभी जब उसकी दूसरी बाजू में बैठी

गुरमटिया यह सब देखकर खिलखिला पड़ती, तो वह झेंप जाता और अपनी गरदन नीचे झुका लेता। बैगा कह रहा था—"तो दोनों जरिया की छाँव में बैठ गये।"

"ठहरो !"—मोटियारी ने एकाएक उसे रोक दिया। वह उठकर खड़ी हो गयी। बोली, "ऐसी गप्पें हमें नहीं सुननी।" सबकी नजरें मोटियारी पर अटक गयीं। बैगा ने हँस दिया। बोला, "यह तुम्हारी राय है मोटियारी, पञ्चों की नहीं।"

"हाँ, बैगा ठीक कहता है।" चारों तरफ से आवाजें आयीं। बैगा ने हाथ का इशारा करते हुए कहा, "तुम बैठ सकती हो। किस्सा तो मैं यहीं खतम कर रहा हूँ। अब मैं पञ्चों से यह पूछना चाहता था कि यदि यह लड़की किसी घोटुल की सदस्य हो, तो क्या उसका ब्याह उस बैगा से हो सकता है ? उस दिन दोनों ब्याह करने का वचन दे चुके हैं।"

मोटियारी सिमट गयी और घोटुल के सदस्य एक-दूसरे की ओर हक्का-बक्का देखने लगे। एक चेलिक ने खड़े होकर कहा, "नहीं हो सकता। उस पर पहले हमारा अधिकार है।"

दूसरा बोला, "फिर वह प्रेमी जात का बैगा है। बैगा हमारा पुरोहित होता है।"

"इसीलिए तो उसे तुम्हारी जात की लड़की लेने का अधिकार है।" लामू ने कहा। चालकी खड़ा हो गया। शान्त भाव से बोला, "लेकिन पञ्चो, तुम सब भूलते हो कैतू को। उसने एक बैगन को मिहरिया बनाया था, वह बरबाद हो गया। हमें चाहिए कि यह किस्सा हम फिर न दुहरायें।"

"चालकी सच कहता है।" मुखवान बोला। दुलोसा जैसे खीज उठी। बोली, "लड़कियों के साथ खिलवाड़ क्यों करते हो ? अरे, कैतू का किस्सा हमारा वहम है। जो भाग का बदा रहता है, वही होता है। यह भारी भूल है कि हम एक किस्से को दूसरे से जोड़ते हैं।"

मोटियारी उठकर खड़ी हो गयी। बोली, "अब क्या झगड़ा होगा ? अरे, पहले उस लड़की से तो पूछा होता।"

"तो समझो, वही तुम लड़की हो।" लामू ने एकदम कह दिया। मोटियारी का सिर चकराने लगा। वह बैठ गयी और चक्कर खाकर लेट गयी। आसपास के दो-चार सदस्य दौड़े आये—"क्या हो गया ! क्या हो गया !" गुरमटिया जोर से हँसी। बोली, "सीतल के बाद बेचारी की छाती भी कमजोर हो गयी है।" सबने हँसने में साथ दिया। एक ने कहा, "अरे, यह तो किस्सा था, कोई बैगा सचमुच थोड़े मोटियारी के पीछे दौड़नेवाला है।"

सारे सदस्य मोटियारी की हिफाजत में लग गये। मुंशी ने बैगा को धन्यवाद देकर विदा किया। तब बाहर चाँद अपनी मस्ती में था और बाँस के झाड़ की नोंक पर अटका था।

मोटियारी रात-भर चिन्ता में उलझती रही। रतीराम ने थोड़ी देर ढाढ़स बँधाया। बोला, "अरी, वह तो कहानी कह रहा था।"

"वह तो जानती हूँ, पर सोचती हूँ, यह कहानी यदि कभी सच हुई तो ?"

रतीराम ने उसके सिर पर हाथ फेरा। बोला, "कहानी कहने के लिए होती है मोटी, वह सच कभी नहीं होती।"

मोटियारी चुप तो रही, पर उसका मन न माना। रतीराम जोर-जोर से खर्राटें भरने लगा पर, मोटियारी घोटुल की छत को ही ताकती रही। वह लामू के बारे में सोच रही थी। उसकी आँखों के सामने उस समय का सारा दृश्य घूम रहा था, जब लामू उससे बाँध पर मिला था। उसने पड़े-पड़े ही घोटुल के सारे चेलिकों पर नजर डाली। एक के बाद एक, सबका चेहरा उसके सामने घूमने लगा। हर आदमी के बारे में वह सोचने लगी। यह क्रम चलता रहा, पर वह किसी निर्णय पर नहीं पहुँची। उसे यही लगा वह मानो बैलगाड़ी के चक्के की लीक पर खड़ी है और चारों ओर चक्कर काट रही है।

लामू उसे प्रिय नहीं, यह बात नहीं। वैसे ही बैगाओं की वीरता से वह परिचित थी, फिर लामू तो साँप के भी दाँत उखाड़ने की हिम्मत रखता था। अब तक उसने सैकड़ों खूँखार जंगली जानवरों का शिकार कर डाला है। उसका बाप भी गाँव का जाना-माना गुनियाँ है। पर, इस समय मोटियारी के सामने दो गाँठें थीं—एक तो यह कि लामू दूसरी जाति का है। उससे ब्याह करने से वह डरती थी, इसलिए कि कैतू का किस्सा उसनें ही तो लामू को बतलाया था। दूसरी यह कि वह घोटुल का सदस्य नहीं है। ऐसी हालत में यदि वह चाहे भी तो उससे ब्याह नहीं कर सकती।

मोटियारी उलझी थी और इस उलझन के बीच ही उसने अनायास उस बैंगा को अपना दिल दे दिया। उसका यह विश्वास मजबूत हो गया कि घोटुल के सारे सदस्य निकम्मे हैं और उसकी जोड़ी के नहीं हैं। सीतल के बाद यदि कोई ठीक जोड़ीदार मिला है, तो वह यही बाँका नौजवान है।—सोचतें-सोचते घोटुल के मुर्गों ने चिल्लाना शुरू कर दिया। मुन्शी ने आवाज लगायी और सबके सब अपना-अपना बिछावन लेकर बाहर निकलते गये। मोटियारी जब निकली तो सारा घोटुल खाली हो चुका था।

सूरज बाज की तरह धरती को ताक रहा था। मोटियारी सामने के पहाड़ को देख रही थी। सुबह पूरब से इसी पहाड़ की छाती फाड़कर सूरज निकलता है। शाम को फिर उसी पहाड़ की गोद में सो जाता है। उसे नींद नहीं आती। दिन-भर किसी को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसकी आँखें थक जाती हैं। तब वह वेष बदल लेता है। रात को चाँद बन जाता है। सोचता है—वह रूप उसे पसन्द नहीं तो यह भी जाय। उसी पगडण्डी से वह चलता है। रात-भर रोता है और फिर दूसरे दिन सबेरे-सबेरे चुपके से अपने असली रूप में आकर वह उन आँसुओं को खुद पी जाता है, ताकि दुनिया यह न समझे कि दूसरों को वीरता का पाठ पढ़ानेवाला खुद कायर है, खुद रोता है। पर, यह गलती सूरज की नहीं है। गलती

धरती की है—उस धरती की, जिस पर आकाश टिका है, जिसकी छाती पर सूरज घूमता है। इस धरती का सारा कलेवर ही बनावटी है। उसके भीतर आग जलती है और हम सोचते हैं, धरती कितनी शीतल है! कितनी शान्त है !! उसकी गोद में प्यार के सागर लहराते हैं। धरती की छाती चीरकर कोई अन्दर नहीं पहुँचा। यदि अन्दर तक पहुँच पाता, तो असली मरम पा लेता। तब वह न इन सागरों को देखकर भ्रम खाता और न पहाड़ों की छाया में अपने को उलझा देता।

इस धरती पर टिकनेवाले लोग भी कुछ ऐसे हैं। जिसकी वे दुहाई देते हैं, वह है समाज और इसी समाज का आँचल थाम कर वे न जाने कितने पाप कर जाते हैं। और जो पाप करते हैं, वही पुण्य का पाठ पढ़ाते हैं। मोटियारी का मस्तिष्क भारी है। वह उसी बाँध में खड़ी है, जिसकी मेंड़ पर लामू से उसकी भेंट हुई थी। तब चने के झाड़ जवान थे, अब वे बुढ़ा गये हैं। हवा चलती है, तो वे लड़खड़ा उठते हैं। एक-दूसरे से टकरा कर खड़खड़ाने जैसी आवाज करते हैं, मानो जिन्दगी पाने के लिए रो रहे हैं। उनमें अब भी जीने की लालसा है, पर मोटियारी नहीं चाहती कि ऐसे निकम्मे पौधे जिन्दा रहे। बायें हाथ में वह उनकी गरदन पकड़ती है और दाहिने हाथ से हँसिये का वज्र प्रहार कर उन्हें वह जमीन पर सुला देती है—भीतर से गरम, पर बाहर से ठंढी जमीन पर। उसके हाथ पौधों को काट रहे हैं, पर मन उड़ रहा है, दूर, बहुत दूर। वह भी नहीं जानती कहाँ ?

यह दादरगाँव के पटेल का घर है। भारी बखरी है। किसी चीज की कमी नहीं है। पटेल ने चार ब्याह किये हैं। चारों मिहरिया अभी जिन्दा हैं। उनमें एक उसकी जाति की है। दूसरी शहर की पढ़ी-लिखी कोई लड़की है। वह सारी मिल्कियत का हिसाब-किताब रखती है। तीसरी है पंकिन। कहते हैं, उसे पटेल का गर्भ रह गया था। वह उसी के घर मजूरी करती थी। जब यह खबर गाँव को लगी, तो सबने पटेल की हँसी उड़ायी। पटेल ने उसे अपने घर रख लिया। चौथी औरत गोंड़िन

है। वह गोंड़ भले ही हो, पर है खूबसूरत। सबमें अलग दिखती है। इतनी खूबसूरत न उसकी ब्याहता है और न शहर की चुलबुली लड़की। पटेल उसकी खूबसूरती पर ही अटक गया था और तीन सौ रुपये उसके 'लमसेना'[१] को देकर अपने घर ले आया था। पटेल ने अच्छा किया। उसका मन एक में नहीं भरा; वह चार औरतें ले आया। चारों सुखी हैं। किसी को कोई शिकायत नहीं, पर मोटियारी जो सोचती है, वह यह है कि आखिर कैतू को ही शेर ने क्यों परेशान किया? उसकी मिहरिया को डूबकर क्यों मरना पड़ा, इसलिए कि कैतू गोंड़ था और उसकी मिहरिया बैगिन—नहीं, बात सच नहीं हो सकती। कैतू को परेशान करनेवाला शेर नहीं हो सकता, वे आदमी थे। उसकी मिहरिया की भी जिसने हत्या की, वह भी एक आदमी था। और वही आदमी है, जो पटेल से चीं तक नहीं करते। करें कैसे? पटेल गाँव का मुखिया है। पंचायत का सरपंच है। सबका अन्नदाता है। सारी धरती की जड़ उसके हाथ है। सारा गाँव उसकी बखरी पर माथा टेकता है—माथा टेके, मना कौन करता है, पर जो माथा टेकते हैं, उनके माथे पर पत्थर के भी निशान बनते हैं, इसे वह क्यों नहीं पहचानता, समाज क्यों नहीं पहचानता।

मोटियारी जानती है कि यदि वह लामू से ब्याह करने के लिए अपना मुँह खोलेगी, तो उसमें आग भर दी जायगी। सारा घोटुल सर उठा लेगा, वहाँ हंगामा मच जायगा और जब मामला पंचायत में जायगा तो उसका सरपंच पटेल होगा। फैसला क्या होगा, यह भी वह जानती थी। उसने कई फैसले देखे हैं। वह किसी और के साथ बाँध दी जायगी और लामू को धक्का देकर निकाल दिया जायगा। तब कौन जाने लामू धक्का सह सकता है? ननकू के साथ भी यही हुआ था। भरी सभा में उसे बाहर किया गया था। सारे लोगों ने उस पर थूका था। तब दूसरे दिन सुबह नरवा के किनारे उसकी लाश मिली थी। गाँव-भर ने तब हमदर्दी जतायी थी।

---

१. देखिए अगली कहानी 'लमसेना'।

सोचते-सोचते मोटियारी ने हँसिया नीचे रख दी और उठकर खड़ी हो गयी। उसने नीले आसमान को देखा, जिसके नीचे दूर तक खेत बिखरे थे। वह सोचने लगी, आसमान एक है, खेत अलग-अलग हैं। धरती में जो विभाजन है, आसमान में नहीं। क्यों न वह आसमान में उड़ जाय। वहाँ से खड़ी होकर वह इस सारी धरती को देखेगी और उसमें कितने टुकड़े हैं, गिनेगी। फिर आकर सबको बतायेगी—मूर्खों, इन टुकड़ों को एक कर दो, जो फसल तुम्हारी मुट्ठी में समा जाती है, छूटकर बाहर गिरने लगेगी····पर कल्पना भी कितनी रंगीन होती है !

उसने देखा, लामू खेत काटना छोड़कर उसकी ओर दौड़ा आ रहा है। मोटियारी की पलकें फिर बोझिल हो गयीं। वह बैठ गयी और बूढ़े झाड़ों को फिर धरती पर सुलाने लगी। लामू भी बाजू में आकर बैठ गया। बोला, "नाराज़ हो गयी।" मोटी की आँखों में तब हलके-से आँसू थे।

उसने उन्हें पोंछे। बोली, "नहीं।" लामू ने पूछा, "तब मुझसे क्या कहती है ?"

"यही कि कल घोटुल में मेरा ब्याह होगा।" मोटियारी ने मुसकरा दिया।

"ब्याह"—लामू फूल उठा, "मेरी अच्छी रानी, मैं जानता था····।" उसने मोटियारी के दोनों हाथ पकड़कर उसे अपने कलेजे से लगा लिया।

"हाँ, ब्याह लामू, वह भी रतीराम के साथ।" मोटियारी ने कहा।

लामू का मुँह फट गया। मोटियारी के मुँह पर तब घुँघचियों के लाल दानों-जैसी चमक थी। उसने आगे बढ़कर लामू की नाक दबा दी, बोली, "घबड़ाता है, पागल कहीं का। ब्याह रतीराम से करूँगी, शरीर पर रतीराम राज करेगा। पर शरीर और मन पर जो असल राज करेगा, वह होगा—लामू।"

"यह ढोंग किसलिए ?" लामू ने पूछा।

मोटियारी खड़ी हो गयी। जमीन से मिट्टी का एक ढेला उठाकर उसने कहा, "भाग, नहीं तो देती हूँ तेरे सिर पर। अरे, भाग रे लामू, तुझे देख लेंगे ये लोग····! वह शेर !····वह पटेल !···और यह धरती !" तब माटी का ढेला उसके हाथ से अपने आप छूट गया था और उसकी आँखें अपने ही शरीर के उन गुदनों पर अटक गयी थीं, जिन्हें उसने प्यार से चीखते-चिल्लाते बनवाये थे।

●

लमसेना

सरसों-सी फूली और उजली दुपहरी ढलकर स्याह पड़ गयी थी।

मंगरू कन्धे पर हल रखे और हाथों में बैलों की डोर थामे गाँव के गेंवड़े की ओर बढ़ा आ रहा था। फुलिया हाथ में गुलेल लिये आँगन में खड़ी थी। कभी वह खाली गुलेल चारों ओर हिलाती, तो कभी उसमें पत्थर लगाकर बाँसों के झुरमुट में दे मारती। सन्ध्या की हवा जैसे बाँसों के झुरमुट में छिपी गीत गा रही थी। फुलिया का पत्थर उसमें वेदना भर देता और सारा झुरमुट एकदम कराह उठता। पर इस कराह की फुलिया को चिन्ता कहाँ? वह एक नादान बच्चे की भाँति गुलेल और पत्थर के साथ खेल रही थी। अभी उसके दिन ही तो खेलने के थे। उमर कोई सोलह वर्ष से अधिक नहीं होगी। धुएँ की हल्की परत की तरह साँवले, गठे और ठिंगने बदन में बच्चों-जैसी अल्हड़ता और चपला-जैसी चपलता भरी थी। घुटने तक वह धोती पहने थी। सीने पर ओढ़नी का बचा छोटा-सा छोर पड़ा था, जिसमें से एक स्तन तो एकदम खुला और दूसरा आधा ढका था। किन्तु इस खुले और ढके का भेद फुलिया क्या जाने? यह भेदभाव तो किसी शहर की लड़की में ही देखने को मिलता है। गाँव की खुली हवा में पली फुलिया तन-मन दोनों से साफ थी।

वह आँगन में खड़ी गुलेल के साथ खेलती रही। पक्षियों के झुण्ड-के-झुण्ड आये, उसके सिर से उड़कर चले गये, पर उसका खेल खतम नहीं हुआ। उसे यह भी पता नहीं कि मंगरू ने बैलों की डोर छोड़ दी है। और वह कन्धे पर हल रखे गेंवड़े के पास पगडण्डी पर खड़ा उसे घूर रहा है। मंगरू आत्मविस्मृत था। खिरका पहले ही निकल चुका था। चरवाहों की भीड़ भी पीछे से निकल गयी, पर वह खड़ा रहा। अबकी वार फुलिया ने फिर गुलेल में पत्थर रखकर बाँस के झुरमुट का निशाना

लगाया, पर वह मंगरू के माथे से जा टकराया। मंगरू का तन-मन काँप गया और मुँह से एक हल्की चीख निकल गयी।

इस चीख ने फुलिया की मुद्रा भंग कर दी। उसका मुँह खुला और थोड़ी देर खुला रहा। अंगों में जाड़े-जैसी सिहरन उठी, पर वह अपनी जगह से नहीं हटी। मंगरू ने कपाल पर हाथ फेरा और हथेली को जोर से चूम लिया।

"क्यों रे, यहाँ खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है?" फुलिया को इस चुम्बन से जैसे जलन हुई।

"वाह री बुलबुल, सड़क पर बैठकर आँख दिखाना इसी को कहते हैं। पत्थर मार दिया मेरे माथे पर—कहीं भाग फूट जाते तो।"

"तेरे भाग और क्या फूटते रे मंगरू, वैसे ही फूटे हैं। रात-दिन पतंगे की तरह मेरे चक्कर काटा करता है। गाँववालों को खबर लग जाएगी तो किरकिरी मेरी होगी। तुझे क्या है, लोग कहेंगे····।"

"कि फुलिया मंगरू से आँखें लड़ा रही है—यही न?" उसके मुँह के शब्द छीनकर मंगरू ने पूरे कर दिये, "पर इसमें डर काहे का है? सब जानते हैं कि तेरी-मेरी लगी है।"

मंगरू ने कन्धे से हल नीचे उतार दिया और दो कदम आगे आकर खड़ा हो गया, "तू मेरे दिल का दर्द क्या जाने फुलिया। मैंने सुना है कि औरत बड़े नरम दिल की होती है—तू कैसी औरत है री।"

"देख रे मंगरू, दिल और दर्द का किस्सा किसी और को जाकर सुना। तूने सुनी होगी औरत के नरम दिलवाली बात, पर अब मैं दिखाये देती हूँ कि औरत का दिल पत्थर होता है। तू जाता है यहाँ से या नहीं।" फुलिया ने आगे बढ़कर जो दाँत पीसे, तो मंगरू दो कदम पीछे हट गया।

"काहे को आँखें तरेरती है, छोकरी! तू खाद पड़े खेत में पके गेहूँ की बाल है, फुलिया, न जाने किस दिन कहाँ से हवा का झोंका आये और तुझे उड़ाकर ले जाए। तू तो जानती है, मेरे बाप की बहिन की मँझली

लड़की तेरे भाई के साथ ब्याही है। तू सीधे-सीधे मुझसे ब्याह करने की हामी भर दे, वरना पंचायत भराऊँगा और दूध लौटाने[1] की बात करूँगा। दो बरस तेरे घर रहकर घास थोड़े छीली है। जाने उस कलूटे चैतू में क्या धरा है जो तू उस पर मरी जाती है।''

अब की बार फुलिया अपने गुस्से को नहीं सँभाल सकी। उसने एक बड़ा पत्थर उठाया और बोली, ''भागता है कि मारूँ? हरामखोर, तू कहाँ का दूध का धुला आ गया है।'' फुलिया मनमानी गालियाँ देती रही।

मंगरू दाँत पीसता वहाँ से चला गया, ''देखूँगा, आखिर घोटुल[2] छोड़कर जाएगी कहाँ?''

आधी रात को फुलिया की नींद खुली। उसने बाहर एक हल्की-सी थपथपाहट सुनी, जैसे किसी ने दरवाजा खटखटाया हो। उसने उठकर दरवाजा खोला, तो चैतू आँगन में खड़ा था। रात अँधेरी थी, आसमान की छाती पर अनगिनत तारे चमक रहे थे और सामने झुरमुट के आस-पास चमगादड़ों के झुण्ड चक्कर काट रहे थे।

'इत्ती रात को?''—फुलिया ने चैतू का हाथ थामा और उससे लिपटकर खड़ी हो गयी।

'''हाँ, फुलिया, चैन नहीं पड़ा तो चला आया अपनी गोरी से मिलने।''

फुलिया शरमा गयी। बोली, ''ऐसी रात को भी कोई बाहर निक-

---

१. भारत के अनेक आदिवासियों में यह प्रथा है कि यदि एक परिवार की लड़की दूसरे परिवार को दी गयी है, तो लड़की देनेवाले परिवार को अधिकार है कि वह उस दूसरे परिवार की लड़की से शादी कर ले—मरजी से नहीं तो जबरन ही, इस प्रथा को 'दूध लौटाना' कहते हैं।

२. घोटुल, अर्थात् कुमार-गृह जहाँ गाँव के कुमार युवक और युवतियाँ रात में विश्राम करते हैं। बस्तर, बिहार और उड़ीसा के गोंड़ों में घोटुल में सोने का आम रिवाज है।

लता है ? तू जानता है न, चैतू, कल नाले के पास वाघ पटेल के लड़के को उठा ले गया ?"

"मुझे भी उठा ले जाता तो कितना अच्छा रहता फुलिया ।"

फुलिया ने अपनी हथेली चैतू के मुँह पर रख दी—"ऐसा मत कह, तुझे वाघ ले गया तो मेरा क्या होगा ?"

"तू तो मंगरू के साथ जाएगी ।"

"क्या कहा, मंगरू के साथ ? उस कलमुँहे का नाम न ले चैतू । आज संझा को आया था । बड़ी देर खड़ा-खड़ा मुझे घूरता रहा । कहता था मेरे साथ व्याह कर ले, दईमारा कहीं का ।"

"ठीक तो कहता था फुलिया । तू उसकी धरोहर जो ठहरी । मेरे यहाँ भी आया था वह, और पञ्चायत भराने की धमकी देता था । कहता था, मेरी फुलिया का ख्याल छोड़ दे, नहीं, तो...।"

"नहीं तो क्या ?"—फुलिया ने व्यग्रता से पूछा ।

"कहता था पञ्चायत भराऊँगा और दूध लौटाने की वात तेरे बाप से करूँगा । फिर वह तेरे यहाँ लमसेना भी तो रहा है । कहता था, दो बरस तक छाती फाड़कर दिन-रात काम किया है और बाद में एक दिन तेरे वाप ने डंडा मारकर उसे निकाल दिया ।"

"निकाल न देता तो क्या उसका अचार बनाकर रखता ? हराम-जादा, बाजार गया तो बैलों की जोड़ी बेच आया । मैंने कहा था, मेरे लिए एक धोती और कंठी ले आना, तो कुछ लाना-वाना तो दूर रहा, शराब पीकर लौटा और लगा मुझे मारने, जैसे मैं उसकी रखैल होऊँ । मेरा खाता था और मुझे ही मारता था । जब अपनी कमाई खिलाएगा, तब तो शायद मेरे शरीर के ही टुकड़े-टुकड़े कर डाले !" फुलिया ने अपनी दायीं मुट्ठी बायें हाथ की हथेली से दबाकर दाँत पीसे—"नास हो जाए कलमुँहे का । मैं तो उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहती ।"

"नहीं फुलिया, गाँव के पञ्च उसका साथ देंगे । दो साल काम लेकर निकाल देना सहज नहीं है ।"

"सहज क्यों नहीं हैं ? देखा नहीं, पटेल ने चार बरस के लमसेना को लोहे की गरम-गरम सलाखों से पिटवाकर निकाल दिया।"

"उसकी बात छोड़ फुलिया। हम गरीब आदमी हैं। पटेल जैसे समरथ होते तो····।"

"तो क्या तू भी उसकी धमकी में आ गया। दिल तो गरीब-अमीर का एक-सा ही होता हैं न ? भरोसा न हो तो एक दिन मेरे साथ चल—छोटे पटेल का दिल तुझे दिखाऊँगी। वह मुझे बहन जो मानता है।"

"तू भी पागल-जैसी बातें करती हैं। हम दिल देखने चलेंगे ?"

तुझे भरोसा तो हो किसी तरह।"

"भरोसा क्या करूँ। एक दिन कह रहा था कि पञ्चों ने भी यदि ठीक फैसला नहीं दिया, तो नाले के किनारे मुझें और तेरे बाप को जिन्दा गड़वा देगा।"

फुलिया ने कान में हाथ लगा लिए—"ऐसा मत कह चैतू। त भी तो पिछले साल शेर से लड़ा था, और हाँ, कितना भारी सूअर था वह जिसे तूने अभी-अभी जंगल में पछाड़ दिया। अपनी भुजाओं पर भरोसा रख और यदि तुझे ऐसा ही डर हैं तो घोटुल का मुन्शी कहाँ गया है। कल हम उससे कह देंगे कि ब्याह करना चाहते हैं। बस, फिर क्या है, हमारा ब्याह हो जायगा।"

"कल मत कहियो फुलिया। मैं तो अपनी काकी के यहाँ जाने का वहाना बनाकर आज रात घोटुल नहीं गया।"

उसकी बात पर फुलिया ने कोई आश्चर्य नहीं दिखाया, बोली—"सो तो मुझे पता था इसीसे मैं भी घोटुल नहीं गयी, वहाँ मँगरू जो मिलता—पर मेरा करता क्या ?"

उसने भूखी शेरनी की तरह अपने दाँत पीसे, जैसे मँगरू को सामने पा ले तो कच्चा खा जाए।

"अच्छा फुलिया, तो मैं अब जाता हूँ। भुनसारा होने आया है, सीधे खेत चला जाऊँगा।"

फुलिया ने उसे रोका—"अभी तो अंधेरा है चैतू।"

"नहीं फुलिया, नाले में मुँह-हाथ धोने तक उजाला हो जाएगा।"

चैतू चला गया और फुलिया लौटकर खटिया पर लेट गयी, पर उसे नींद नहीं आयी। उसे वह दिन याद आ गया, जब दादरगाँव के मालगुजार का खेत काटने वह गयी थी।

बरस-भर पहले की बात है। मंगरू तब उसके यहाँ लमसेना था। वह उस पर मरा जाता था। शुरू-शुरू में फुलिया ने भी उसकी खूब आवभगत की। दोनों में बड़ा प्रेम रहा, पर एक दिन बाजार से लौटकर जब उसने फुलिया को मारा, तो फुलिया का मन फटे दूध-जैसा हो गया। अब वह मंगरू को देखते ही नाक-भौंह सिकोड़ने लगी। वह उसे लगातार मनाता रहा, पर वह नहीं मानी। इस बार खेत काटने जब वह दादरगाँव गयी, तो साथ में मंगरू को नहीं ले गयी।

गंगासागर बाँध गेहूँ की पकी बालियों से लदा था। हवा का झोंका जब उस भारी बाँध से गुजरता तो समुद्र की तरह सारे खेत में एक लहर-सी उठ जाती और लगता जैसे किसी ने सोने की चादर हिला दी हो। तब फुलिया का कलेजा कसक उठता था। उसकी हिरन की तरह खेलती-खाती जिन्दगी जैसे कराह उठती थी। वह खेत के चारों ओर नजर डालती। झुण्ड-के-झुण्ड औरत और मर्द उसे दिखायी देते, पर आँखों की प्यास न बुझती।

एक दिन चैत की धूप उस सोने के खेत में अचेत पड़ी सो रही थी और हँसिए की पैनो धार गेहूँ के पौधे को जमीन पर सुला रही थी। फुलिया भी एक हाथ से पौधों को थामती और दूसरे हाथ की हँसिया किसी कसाई की तरह उन पौधों पर चला देती। गीतों की धुन से सारा खेत गूंज रहा था। एक गीत खतम होता तो कोई खड़ा होकर दूसरा शुरू कर देता, इसलिए कि गीत उनकी जिन्दगी है और धूप तथा मेहनत से उन्हें बचाता है। फुलिया के मन में भी उमङ्ग उठी। हँसिया हाथ में लेकर वह खड़ी हो गयी। पुरवाई के झोंकों से उसका आंचल डोल उठा।

उसके हृदय के तार जैसे किसी ने छेड़ दिये । वह लचक-लचककर करमा की धुन में गा उठी :

ओ हो ! हाय रे हाय,
मोरा पयरी के साध,
लय दे, हीरा रुनझुन वाजै रे ।

गीतों को सारे साथियों ने दुहराया । इसी बीच मेंड़ पर खेत काटते एक युवक पर फुलिया की नजर पड़ी । वह पसीने से लथपथ था और जव सव लोग गीत गा रहे थे तो वह चुपचाप फसल काटने में लगा था । फुलिया के उमङ्ग-भरे मन ने यह सहन नहीं किया । उसे लगा, जैसे यह युवक उसके गीत के साथ विद्रोह कर रहा है । उसने मिट्टी का ढेला उठाकर उसकी ओर फेंका और फिर अपनी कमर पर लचक देकर हवा के साथ झूलती हुई आगे गाने लगी । अबकी वार उस किसान युवक का मन भी डावाँडोल हो गया । भर्राई-सी आवाज में उसने भी उत्तर के स्वर छेड़ दिये :

पयरी के तोरा साध गोरी,
हीरा मोर रुनझुन बाजै रे ।

गीत सुनकर फुलिया का तन-मन सूरजमुखी की तरह खिल उठा और इसी खुशी में उसने करमा की कई धुनें छेड़ीं, जिनका उस युवक ने बराबर जवाब दिया । यह रफ्तार चलती ही रहती, यदि फुलिया मालिक के लड़के को आते न देखती । उसे आते देखकर वह बैठ गयी और फिर तेजी से फसल काटने लगी । पर, मन उसका उस बाँके युवक ने हर लिया था । वार-बार वह उस पर नजर डालती और वह युवक भी नीची नजरों से उसे घूरता रहा ।

फुलिया ने फसल काटने की दिशा बदल दी और उसकी ओर बढ़ी । जव वे दोनों काफी पास आ गये, तो फुलिया ने वड़ो चपलता से पूछा—
"तुझे तो खूब करमा आते हैं रे ?"

"क्यों नहीं ! तेरी सूरत देखकर कौन न गा उठेगा !"

"सच,"—फुलिया खरगोश के बच्चे की तरह उचकी—"मेरी सूरत पसन्द है न ?"

उत्तर में मुँह बनाकर चैतू ऐसा हँसा कि उसकी हँसी फुलिया के कलेजे में तीर की तरह जा चुभी। वह एक हाथ आगे सरककर बोला—"तेरा नाम ?"

"फुलिया, और तेरा ?"

"चैतू"—वह बोला।

"इसी चैत में हुआ था ?"

चैतू ने उसकी शरारत भाँप ली—"हाँ, अभी घण्टे-भर पहले। कहाँ रहती है ?"

"कोटरवाही, और तू ?"

"कोटरवाही, वहीं तो मैं भी रहता हूँ। किसकी लड़की है ?"

"सुरूआ मेरा बाप है। तू कभी घोटुल नहीं आता ?" फिर फुलिया ने चुटकी ली। "हाँ, समझी—मिहरिया होगी घर में। मारती है कभी ?"

चैतू ने उसके जूड़े को पकड़कर घुमा दिया। फुलिया काँख उठी।

"देखा नहीं, अभी मिट्टी का ढेला उठाकर मारा था उस चुलबुली मिहरिया ने।"

फुलिया के साँवले गाल शरम के मारे गेहूँ-जैसे लाल हो गये। शरारतभरी आँखें नीचे झुक गयीं—"देख लेगी तो सिर के बाल न बचेंगें। परायी लड़की से आँखें लड़ाता है ?"

"देख लेने दे—तेरी बला से।" चैतू ने कहा।

फुलिया थोड़ा पास सरकी—"सच बता रे, चैतू, मिहरिया है ?"

"कहा तो—हाँ, है। अभी मिट्टी का ढेला मार रही थी। शायद वह नहीं जानती कि चैतू भी पत्थर है।"

"चैत का पत्थर किस काम का, जिस पर पैर रखो तो जल जाये। उसे तो पानी चाहिए, चैतू।"

"पर पानी देनेवाली हो, तब न।"

चैतू की इस बात से फुलिया का रास्ता जैसे साफ हो गया।

"समझी।" उसे जैसे किसी पहेली का सही हाल मिल गया—"पर तू घोटुल क्यों नहीं आता ? लमसेना है कहीं ?"

"मुझ गरीब को कौन लमसेना रखेगा, फुलिया" चैतू ने लम्बी साँस ली। फिर बोला, "बाप तो छोटे में परलोक सिधार गया, माँ अपने रखैल के साथ रहती है। अकेला हूँ घर में। सब काम-धाम करना पड़ता है। घोटुल आने की फुरसत ही नहीं मिलती। पर मुन्शी के रजिस्टर में नाम लिखा है मेरा।"

"सच ? तो मैं तुझे फुरसत दूँगी। रोज घोटुल आया कर।"

फुलिया और चैतू का यह प्रथम परिचय क्रमशः खूब बढ़ा और फिर यह हालत हुई कि फुलिया अपने लमसेना मंगरू के लिए नागिन बन गयी। अपने बाप से उलटी-सीधी चुगली खाकर वह दिन में दो-एक बार उसे पिटवा दिया करती, पर मंगरू ने फुलिया का पीछा नहीं छोड़ा।

शाम को गले में घुंघची की माला, चाँदी के सिक्कों का हार, हाथ में लाल-पीली चूड़ियाँ, रंग-बिरंगी लाखें तथा चाँदी के चूरा और पैरों में गिलट की पायल डाले और कौड़ियों के गुच्छों से सजी हवा में नागिन की तरह झूलती वनी लटकाए फुलिया घोटुल की ओर इस चाल से चली कि जो उसे देखे, एक बार छाती पर साँप लोट जाए।

घोटुल में उसका आज आखिरी दिन था। वह अपने मंगेतर को चुनेगी और फिर कल से घोटुल का प्रवेशद्वार उसके लिए सदा को बन्द हो जायगा। पयरी की उसकी साध पूरी होगी। यह एक ऐसा दिन होता है, जो कुमारी के जीवन का इतिहास बदल देता है, उसकी जिन्दगी की गाड़ी में बैल लग जाते है, तब उसकी चाल बढ़ जाती है।

घोटुल में सखियों ने फुलिया का दिल खोलकर स्वागत किया। छैल-छबीले बने-ठने नवजवान लड़कों ने भी फुलिया के हाथ चूमे। घोटुल के मुन्शी ने उसको आशीर्वाद दिया और फिर सब लोग आग की धूनी को

घेरकर बैठ गये। फुलिया ने देखा, चैतू एक कोने में बैठा हँस रहा है। वह खुशी में फूल गयी।

मुंशी की मरजी के अनुसार पहले एक-दो करमा की धुनें हुईं और फिर सारी सखियों ने मोटियारी (घोटुल की वह युवती, जो वर चुनने के लिए शृंगार करके आती है) के बालों में लकड़ी की कंघियाँ खोंसी। जब यह सब चल रहा था, तो मंगरू भी वहाँ आ धमका और धूनी के पास बैठ गया। मंगरू को देखकर मोटियारी का कलेजा काँपा, चैतू भी घबराया, पर किसी ने कुछ पता नहीं लगने दिया।

अन्त में आशा और उमंग से हाथ में कौड़ियों की माला लिये फुलिया उठकर खड़ी हो गयी। सारे चेलिकों (घोटुल के कुमार सदस्य) के मन में जैसे काँटा गड़ने लगा। वह सबको तम्बाकू बाँटेगी, और जिसे तम्बाकू नहीं देगी, वही उसका मंगेतर समझा जायेगा। इसी से सारे चेलिकों की आँखें फुलिया पर गड़ी थीं। मंगरू को भरोसा था कि फुलिया उसके साथ चाहे जैसा व्यवहार करे, पर फिदा वह उसी पर है। उसीको वह माला पहनाएगी। उसने अपने सारे मित्रों को दावत दे रखी थी। जो थोड़ा-सा संशय उसके मन में था, उसकी दवा भी मंगरू कर चुका था। आखिर दो साल फुलिया के साथ उसने काटे हैं, वह सहज ही उसे कैसे छोड़ देता। उसने गाँव की पंचायत के पंचों से भी बातचीत कर ली थी।

फुलिया ने तम्बाकू बाँटना शुरू किया। सबको तम्बाकू बाँटते-बाँटते जब वह मंगरू को भी देने लगी, तो उसकी सुषुप्त हिंसा जाग उठी। क्रोध से वह तमतमा उठा। उसने फुलिया का हाथ पकड़कर सारी तम्बाकू छीनकर फेंक दी।

घोटुल में हंगामा मच गया। मुंशी ने फुलिया और मंगरू को अलग-अलग किया और कहा, "भाई, इसमें झगड़े की क्या बात है। वह चैतू को चाहती है, तो तू क्यों बीच में आता है?"

मंगरू लाल-पीला हो रहा था, "यह नहीं हो सकता। मैंने पंचायत बुलायी है, फैसला पंचायत करेगी।"

बहुत चें-चें हुई पर मंगरू अपने साथ पलटन जो लाया था—फुलिया चैतू को माला न पहना सकी और मुंशी ने पंच-फैसला होने तक समारोह स्थगित कर दिया।

गाँववालों के लिए पंच परमेश्वर होते हैं। उनका न्याय भला-बुरा चाहे जैसा हो, सभी सिरमाथे चढ़ाना पड़ता है। इसीलिए फुलिया, चैतू और मंगरू पंचों की ओर आँखें लगाए थे। पंचों ने फुलिया के बयान सुने और फिर मंगरू की बारी आयी। मंगरू ने पहले दूध लौटाने की बात कहकर अपना रोब गालिब किया, पर फुलिया के बाप ने इस हक को स्वीकार नहीं किया। तब मंगरू ने लमसेना की बात उठायी। दो साल लमसेना रखने का हरजाना माँगा। फुलिया, उसके बाप नरसू और चैतू सभी ने अपनी सफाई पेश की।

फुलिया का बाप दुविधा में पड़ा था। उसके सामने विकट उलझन थी। मंगरू उसके यहाँ दो साल लमसेना रहा, पर दो सालों में दोनों के बीच खाईं पड़ चुकी थी। मंगरू ने उसका बड़ा नुकसान किया था और अपने चरित्र से उसका मन खट्टा कर दिया था। नरसू अपनी इकलौती बेटी की मरजी को भी नजरअन्दाज नहीं करना चाहता था। चैतू गरीब परिवार का सीधा-सादा मेहनती नवयुवक था। फुलिया और चैतू प्यार के धागे में बँध चुके थे।

समस्या यहीं खतम नहीं हो जाती। यदि मंगरू को उसने फुलिया नहीं दी, तो उसे हरजाना देना पड़ेगा और हरजाना भी पंच न जाने कितना लगाएँ। उतने पैसे देने की सामर्थ्य उसमें नहीं होगी ? क्या चैतू हरजाना दे सकेगा !

अन्त में जिसकी आशंका थी, हुआ भी वही। पंच-फैसला सुनाया गया। पंचों ने राय दी कि फुलिया चैतू से ब्याह कर सकती है, पर फुलिया के बाप को मंगरू के लमसेना का हरजाना देना पड़ेगा और दूध

लौटाने की या तो कीमत चुकानी पड़ेगी अथवा किसी दूसरी लड़की का ब्याह मंगरू से या उसके किसी भाई से करना पड़ेगा।

यह फैसला नरसू के लिए बड़ा कड़ा था। फुलिया उसकी इकलौती बेटी थी, और कोई लड़की होती तो नरसू वह भी कर देता। पंचों ने लमसेना का हरजाना दस रुपये महीने के हिसाब से दो सौ चालीस आँका था। दूध न लौटाने की स्थिति में उसे जातवालों को भोज देने और बड़े महादेव की पूजा का विधान बताया था। उसका सिर चक्कर खाने लगा।

फुलिया की आँखें जैसे पथरा गयी थीं। वह एकटक चैतू को देख रही थी। वह सोचती, पंचों को क्या अधिकार है कि वे उसका प्रेमी छीनें? पर कहने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। शायद वह जानती थी कि कहने से क्या होगा, समाज की अंध मान्यताओं में सारा गाँव जकड़ा है। फिर अकेले उसमें विद्रोह करने की शक्ति ही कहाँ है। सच तो यह है कि विद्रोह की भावना न तो फुलिया के मन में और न चैतू के ही मन में थी। युगों से चले आ रहे बंधनों में जकड़े हुए ये भोलेभाले युवा हृदय भला विद्रोह क्या जानें। वे सिर्फ पंचों को ईश्वर जानते थे और उनकी व्यवस्था को ईश्वर का न्याय मानते थे। इस न्याय को पलटने की हिम्मत वे नहीं कर सकते थे।

फुलिया घबरा रही थी—उसका चैतू आज उससे छिन रहा था। बीते जमाने की स्मृतियाँ उसकी आँखों के सामने नाच रही थीं। चैतू सिर नीचा किये चुपचाप बैठा था। वह सोच रहा था कि क्या करे? इतने रुपये कहाँ से लाए? घर-द्वार होता तो शायद वह उसे भी बेच देता, पर एक टूटी-सी झोपड़ी का मोल पचास रुपये से अधिक क्या होगा। और मंगरू? वह विजेता की तरह सीना ताने हँस रहा था। उसकी आँखें उस शिकारी की भाँति चमक रही थीं, जिसके हाथ मनचाहा शिकार लग गया हो। उसे विश्वास था कि पंच-फैसले की पूर्ति करना उनके लिए असम्भव है।

नरसू ने अपनी हताश दृष्टि चैतू पर डाली तो चैतू की आँखों में आँसू आ गये। वह वहाँ से उठकर चला गया। फुलिया फफक-फफककर रो पड़ी।

तभी घोटुल के मुन्शी ने घोषणा की कि शाम को फुलिया और मंगरू का घोटुल से सम्बन्ध-विच्छेद होने की खुशी में एक भारी समारोह होगा।

लाल झण्डा

चाहकर भी सुकली यह सब नहीं भूल पाता। भूले कैसे? हर फावड़े के साथ उसने एक सपना सँजोया था—एक नया सपना, जो फूलों के गुच्छों से उभरे रंग की गोलाई लिये था। बात कहाँ-से-कहाँ आ जाती है। जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की, वह सामने हो गया। कैसे देखे वह? और वह क्या, कोई देख सकता उसे?

वह पछताने लगा। गर्मी में उसने यह सब नहीं सोचा था। ऐसा जानता तो वह वहाँ झण्डा ही क्यों लगाता? पर—बाया ही उसे धोखा देगा—उसके सगे भाई से बढ़कर। हर दुःख-दर्द में दोनों ने अपनी छातियाँ पीसी हैं। दिन-रात साल और अर्मा के जंगलों में बिताये हैं। गूलर जब फूला है, तब भी दोनों सबेरे-सबेरे गये हैं और जब वन में उरवट[1] छायी, तब भी दोनों नंगे झाड़ों के साथ घूमे हैं। दाँत काटे का नाता, यहाँ आकर यूँ टूट गया......?

सुकली ने एक लम्बी साँस ली—लेकिन इसमें बाया का दोष क्या है? आदमी भला गलती करता है—जानकर?" यह सब तकदीर की बात है और कुछ नहीं!

"........बीर, बियारी कर ले।" भौजी अचानक आ धमकी, तो सुकली जाग गया। चौंककर बोला, "नहीं तंगे (भौजी), आज जी नहीं है।"

"जी का क्या पता है? कहने से आता-जाता है? आज मरैया (दोपहर का भोजन) में भी घर नहीं आया। खैर भाई, जाने क्या हो गया है तुझे? कल तक तो बछेड़े की तरह उचक रहा था। खरगोश-जैसा भागता था—इधर बुलाओ, उधर भागे। पानी-सा बहता था रे, सुकली

---

१. पतझड़।

और—और सुन तो वह भी बैठी है। उसने भी दोपहर को नहीं खाया।" भौजी ने बात बड़ी सहज कही थी, पर सुकली को वह भी गड़ गयी—सीधी कील जैसी। झुंझलाकार बोला, "तंगे जा अपना काम कर।"

भौजी ऐसी चौंकी कि उसकी चूड़ियाँ और पायजेवें एक साथ खनक उठीं। वह धीरे से वहाँ से सरक गयी। एक रस्सी जैसे सरक गयी हो।

सुकली की रीती आँखों में सपने उतर आये। परकी साल से वह जमीन खोदने में भिड़ा है। वैसाख का महीना रहा है वह—शायद। हाँ, वैसाख की तीज रही होगी। सुमवार—! सुकली ने अँगुलियों पर सारे दिन गिने—हाँ, सुमवार ही। उसी दिन उसका व्याह हुआ और उसी दिन नरमदा के पिछवाड़े फावड़ा और गेंती उठे। हरदौल की पूजा और गायता के दो-चार गीत और फिर काम। बस, काम। काम ही तो सब है। सरमन बाबू कहते हैं, "तीन सौ बरस राज किया अंगरेजों ने हमारे ऊपर। क्यों? किसलिए? क्यों कर सके राज वे?—हम कामचोर हैं, इसलिए।" ठीक कहते हैं सरमन बाबू, जमाना घूमे हैं, दूर-दूर सब देखा है। हम कामचोर हैं। दिन-भर मेंटा (जंगल) की खाक छानते हैं—उतियाते, आँखें लड़ाते और नंगे पखेरुओं से बातें करते। कब सबने मिल-कर कभी सोचा है? सरमन बाबू की बलिहारी है, न वह कहते, न कोई सोचता। बड़े-बड़े टोपदार साहबों को ले आये—नकशा बना, फीता चढ़ा, तम्बू लगे। नाप-जोख, हिसाब-किताब, और....... !

कित्ती बड़ी लकीर थी वह। इत्ता पैसा कि बोरों में समाये। कित्ता खर्च है इसमें। जै हो काँगरेज राज्य की, और कौन लगाता। सरमन बाबू ठीक कहते हैं, "अंगरेज तो बस पैसा ले जाते थे यहाँ से। खरचने की बात कभी की नहीं उन्होंने। करते तो भला ऐसा होता!" सर्रर से मोटर आती है: पोंप, पोंप, पोंप!

कित्ती धूल चक्कर काटती है पीछे, भूत ही भूत। सारे भूत मात खा गये जबसे मोटर आयी है।

पहली मोटर और पहला पिरेम।

किहें किहें किहें।

इधर काली माई समझकर लोगों ने नरियल चढ़ाये, फूल-पानी फिराया और गायता ने धूप-दीप जलाकर अगवानी की। उधर ब्याह के आठवें महीने शवद गूँज उठे। बेटा भागवान निकला। तीन पीढ़ी में इत्ती जल्दी भाग खुले। सब परताव महादेव का, सब असीस खरेमाई के, वरना····। वरना उसके बाप ने तीन ब्याह किये थे और दादा ने चार। तब वह हुआ था और उसका बाप। निपूतिन औरत की जात चुड़ैल से क्या कम होती है।

और—सरमन बाबू बलवान निकले, जो दिल्ली तक दौड़ लगायी और काम टंच करवा लिया। हिनौता के किसान कब से पीछे लगे हैं—छोटा-सा स्कूल ही खुल जाय। पर कौन सुनइया है वहाँ? कोउ सरमन होय तो·······!

सुकली सब भूल गया था। सारे जंगल-पहाड़ उसे काटने लगे थे। निरापद कुछ था, तो बस यही काम! शहर का अफसर उस दिन कह रहा था—यह बाँध बना और खेतों ने सोना उगला।

उसी रात सुकली ने एक सपना देखा था—रात का चाँद नीचे उतर आया है और उसकी मिहरिया की कलाई में चाँदी के कंगन पहना रहा है। गेहूँ के पौधे भार से झुके जा रहे हैं और चना की घेंटियाँ माला बनाने के लिए एकाएक नीचे झर रही हैं। पूरब से एक हलका-सा झोंका आया और उसके साथ अनगिनत लहरें सारे खेत में उठ-उठ आयी हैं। ऐसी ही एक लहर उसके भीतर उठी है—अपने-आप। वह बौरा गया है। मिहरिया कहती है, "आज क्या हो गया है तुम्हें? माँ ने तो आँखें फाड़ दी हैं, लड़का पागल हो गया! और यह क्या?—पकी फसल पर किसी ने हँसिया चला दिया : खचाखच्च!

"उई ई माँ"—ऐसे जोर से उसने चोटी दबायी कि दादा देखने आ गया। निर्लज्ज, जरा-सी शरम नहीं।

पिय के नेह में रात बीती, खेतों की देह में दिन निकला । न कुछ ठहरावा, न कुछ बातचीत । बस, काम—काम—काम । इसके सिवा है क्या ? दादा रामकिसन कहते हैं, "आखर कोई साथ नहीं देता, सुकली–घर की नारी को कहै, तन की नारी जाये । आदमी के साथ उसके काम जाते हैं । काम धरम है । वही काम बनाता है । सो जित्ते दिन जीना है, काम कर लो ! बस !"

सुकली के मन में दादा रामकिसन की बात गड़ गयी—धूप में बाल तो सुखाये नहीं । उमर का परताब भी होता है । नीचे से ऊपर चढ़ती है वह । हर चढ़न में एक फिसलन का सामना करना होता है । तो उससे बच जाय, वही ऊपर पहुँचता है । साठ बरस का दादा, रामकिसन झूठ नहीं बोल सकता—सरमन बाबू धोखा नहीं दे सकते ।

ओ हो हाय रे हाय !

हो हाय रे हाय ।

भइया हाय रे हाय । गेंतियाँ उठती गयीं । फावड़े चलते गये । फिर मशीनें आयीं : घर्र्र घर्र्र घर्र्र घर्र्र घर्र्र । मिल जैसे भोंपू बजने लगे : भों ओं ।

खट्खट् खट्र खट्र ।

ठाँय, ठाँय ।

दिन-दहाड़े बन्दूकें ।—अरे, बन्दूकें नहीं हैं रे, सुरंगें लगी हैं । पहाड़-के-पहाड़ खाक । तीन सुरंग में नागा पहाड़ी धरती चाटने लगी । एक सुरंग में भैरव बाबा की टौरिया चली गयी—। परतीली पहाड़ी । बमटा के टीहा । सीता पहाड़ी की टोंनी—वीरबहूटी कहीं देखना है, तो बस यही जगह थी । बरखा के दिन आये और मखमली चादर यहाँ बिछ गयी । गिनती कौन करे । कोई तो नहीं जानता । जहाँ देखो, बीर-बहूटियाँ । पैरों में जखम आये । उन्हें बचाओ तो काँटा चुभे । वह पहाड़ी भी नहीं रही । कहाँ रहेंगी ये बेचारी बीरबहूटियाँ ।

उसी दिन शाम को पंचायत हुई गाँव में। सरकार की यह ज्यादती है। क्यों हमें मारे डालती है वह ? कहते हैं अँगरेज सरकार चली गयी, हमारी सरकार हुई है अब। कैसी सरकार है यह ? अँगरेजों से बदतर। उसने तो कभी नहीं मारा ऐसा हमें। फिन—। सोचो मंगलू, तुम्हीं सोचो; सरासर अन्याय है कि नहीं ?

"हाँ भाई, सोचो।"

"तुम्हीं हमारे पंचतौर हो, मंगलू दादा।"

"अन्याय है, एकदम अन्याय है······।"

"मंगलू दादा ठीक कहते हैं। तो यह पंच फैसला हुआ।"

"हाँ आँ आँ आँ।"

दादा रामकिसन तब भी कुछ नहीं बोला। बस, हाँ की आवाज यहाँ हुई, वह उठकर वहाँ चला गया। क्यों उठ गया दादा रामकिसन ? अब बात क्यों नहीं करता ?

"·······नहीं।"

कौन है यह 'नहीं' कहनेवाला ! क्यों नहीं ? पंचतौर (सरपंच) का हुकुम है, "किसने ना कहा, खड़ा हो जाय।"

सुकली पहले ही तना खड़ा था—सीधा, जवान। कोई न देखे, तो वह क्या करे ?

"तू सुकली, तू।"

सुकली के ओठ नहीं हिले।

सबने पीछे लौटकर देखा। सबके ओठ मिच रहे थे : पंचतौर से मुँह-जोरी ! पंचायत से कमान ! हुआ है कभी !

सुकली धीरे से मुसकराया। उसकी मुसकराहट सब पर छा गयी : कुछ कहे न अब सुकली। जवानों की बाँछें खिल उठीं। कहे तो कुछ ? यह क्या ? जो मंगलू दादा कहे सो माना जाय। सुराज कैसा ? सरमन बाबू कहते हैं, "सुराज में सबको आजादी है। सब अपनी बात कह सकते हैं। दिल्ली में बड़ी पंचायत है। वहाँ हर आदमी अपनी बात कहता है

और नेहरू तक से मुँह लगाता है। अरे नेहरू क्या गाँधी बाबा होते तो उनसे भी मुँह लगाते। फिन—। फिन रामपुरा के लोग क्यों चुप रहते हैं! क्या मंगलू दादा, गांधी बाबा से बड़ा हो गया ?"

"बोल भाई सुकली, कुछ तो बोल।"

"धन्य है सुकली।"

सुकली ने ये सब आवाजें जैसे नहीं सुनीं। वह तो अपनी आवाज सुन रहा था—अपने मन की आवाज़। यह सब ढोंग अब नहीं चलेगा। देवी-देवताओं के नाम लेकर कोई आग नहीं उगल सकता। कोई आँख नहीं फोड़ सकता।

"भाइयो, मंगलू दादा की बात अपनी जगह ठीक है। पर जमाने के साथ वह ठीक नहीं है। सारी दुनिया बदल रही है। हमें भी बदलना चाहिए। छोटे-छोटे पहाड़ों को लेकर क्यों झगड़ते हो? ये देवी-देवता अब तक क्या काम आये? उन्हें कहीं और रख लो। पर, काम मत रोको। सिरकार अपनी है और सारे काम अपने लिए ही तो हो रहे हैं। भाइयो, तुम्हीं सोचो, जब यहाँ बाँध बँध जायगा, तो........।'

"हमें नहीं चाहिए बाँध-वाँध। हमें डूबना नहीं। पानी बाँधकर हमें देवता को दरद नहीं पहुँचाना। अरे, यह तो बाया है! बाया!"

"हाँ आँ आँ आँ।"

"फिर कौन बचायेगा गाँव? तेरा बाप?"

और दिन होता तो सुकली अपना तेलपिया डण्डा लेकर मैदान में कूद पड़ता—किसमें ताकत है, उसके बाप की दुहाई देने की। कोई क्यों दे? उसने किसका क्या खाया है?

आज वह कुछ नहीं बोला। उसी तरह मुसकराता रहा। उसने हाथ जोड़ लिये।

"गलते मत समझो, मंगलू दादा।" वह जानता है कि गाँव को मनाना है तो मंगलू दादा को मना लो।

"सिरकार यहाँ दो लाख रुपये खरच कर रही है। जानते हो, दो लाख कित्ते होते हैं ?"

"थू है···।"

"हाँ, थू है····।" सुकली काँप उठा। मंगलू दादा भी थू है, कहता है। पंचायत नहीं हुई, खेल हो गया। सुकली ने आँखें भरकर देखा, सब चुप बैठे रहे। कुछ सुरसुरी हुई, तो जवानों में। इस हलचल ने जवानों को जगा दिया। उसने एक लम्बा लेक्चर ही दे डाला। वह सब सरमन बाबू जो समझा गये थे। तोते की तरह पढ़ गया सब। और तब पंचायत ही टूट गयी। फैसला हो तो कैसे ? किसकी बात मानी जाये····दो घंटे झगड़ा चला, पर अब मंगलू दादा का कहा एक स्वर से किसी ने नहीं माना। बाया जवानों में बूढ़ा निकला। उसने हिम्मत दी मंगलू दादा को। पर···।

"धन्य है, सुकली। हीरा भया तो तू।····जै हो सुकली की····हमारा नेता सुकली।"

और, रात-भर में सुकली नेता बन गया। सरमन बाबू ने साथ दिया। तहसीलदार ने फौज मँगा ली····पुलस। दिन-दहाड़े पहरा ! कभी एक सिपाही नहीं आया गाँव में। आज सिपाही-ही-सिपाही। जम के दूत। रौंद डालेंगे गाँव-भर को। करम फूटते देर नहीं लगती। अपनी ही चिनगारी से जलता है। सुकली ने तीली खंच दी····खन्च।

"बाँध हम नहीं बँधने देंगे। कैसे बँधेगा ?"

"बँधेगा, बँधकर रहेगा।"

दो दलों का झगड़ा। फैसला कौन करे ? लट्ठ खिच गये : खट् खट् ठक् ठक्।

दो वहाँ टूटे, दो यहाँ। सुकली भी घायल। तब पुलस टूटी····सब तरफ खून। कई जिहल गये। कई महीनों घाव सेंकते रहे। सुकली तब भी पट्टी बाँधे गेंती चलाता रहा, बारूद में आग लगाता रहा। और दहाड़ मार पहाड़ बात-की-बात में जमीन पर गिरते गये। अब नेता रहा

तो सुकली । रामसरन बाबू भी कहते हैं, "हमारा नेता सुकली है। सारे गाँव के जवान उसकी फौज में हैं ।"

और सुकली सचमुच नेता ही हो गया । मंगलू का लड़का घायल था—उसी के लट्ठ से। उसे रोज जाकर वह खुद सेंकता रहा। बुधवा की मिहतारी से लिपटकर वह खूब रोया। ऐसा रोया, जैसे उसी के सगे भाई का सिर फूटा हो। दलपत की बारी भी सुकली सींचता रहा। एक-एक झाड़, एक-एक बौल—भुंटा, ज्वार बरबटी, मिरची और घुइयाँ। दलपत जिहल में हैं। फिर कौन देखे उसकी बारी।—सुकली नहीं तो कौन ?—नेता का धरम, और धरम है क्या ? रात को घर-घर जाकर सबेरे का सन्देशा देने लगा। उसकी मिहरिया तक तंग आ गयी। नयी दुल्हन वह भला क्यों यह सब जाने-समझे । आधी रात को आता है और कौआ बोले छू। सारी रात काँखता रहता है। पीठ ऐंठी रहती है, कमर टूट गयी है। हाथ नहीं उठते । दिन-भर जो फोड़ा पीठ पर रहता है, रात को सामने आ जाता है। सुकली का दर्द बढ़ जाता है। वह तो उतनी देर बेसुध सोता, पर सोते-सोते भी जैसे चीखता रहता था : बाँध बँधकर रहेगा, मंगलू दादा । अब सुराज हो गया है ।

"जै राम जी की भइया !"

"जै राम जी की। आओ सुकली भाई !"

सुकली बैठ गया। इंजीनियर अपने सामने नक्शा खोले था। नरमदा का पानी इधर बँधेगा। इधर खुलेगा। ये खेत पानी में होंगे—खेत पानी में होंगे ?

"हाँ भइया।"

"तब ? तब यहाँ के किसान क्या करेंगे ? यह तो अन्याय है...।"

"अन्याय नहीं होगा, सुकली ! यह देखो, इधर की जमीन उन्हें मिलेगी। यह खाद, ये बीज और ये रुपये।" कहते हुए एक सरकारी अफसर ने पीछे से आकर सुकली की पीठ ठोंकी ।

वह अचानक सिहर उठा। टोप बाबू, कौन ? मनीजर हैं ये, बाँध के।

"राम राम भाई।"

फिर घंटों बातें।—सुकली को मनाना अब सहज नहीं रहा। सब नक्शा दिखा दिया था इंजीनियर ने। टोप बाबू समझाए तो कैसे? सोन खाद में वह ताकत कहाँ, जो अमोनियम सल्फेट में हैं?—बात ठीक है, पर सुकली कैसे माने इसे? उसने देखी है कभी अमोनियम सल्फेट? क्या जाने वह?—नहीं, यह तो अत्याचार हुआ? सरमन बाबू ने भी धोखा दिया—सुकली का मन घूम-घूम गया—गोल, तिरछा और सीधा। गाँव-भर से वैर मोल लिया।····अब। उस रात सुकली सो नहीं पाया। रात-भर करवटें बदलता रहा—दायें, बायें। रह-रहकर चीखता रहा। मिहरिया पंखा झलती रही। क्या हो गया उसे? हरदौल की टौरिया टूटी है, बस उसी का शाप है। किसी का कहना मानता नहीं। हाय राम! उसने अपना करम पीट लिया। किसके पल्ले बँधी। अब क्या होगा?

सुकली रात-भर बेहोश रहा। कुछ सुरत नहीं, कहाँ है वह, कैसा है? सबेरे गाँववालों को कैसे मुँह दिखाएगा? परती जमीन कौन लेगा? जिसे बाप-दादों ने अपने खून से सींचा है, उसे कौन छोड़ेगा? वह भी न छोड़ता। उसका खेत तो नहीं जा रहा—और मुसीबत। गाँववाले कहेंगे, मिल-मिलाकर अपना खेत बचा लिया सुकली ने। सबको धार में छोड़ गया।

क्या यही है नेता का धरम? कदापि नहीं।

भोर की हवा उसे जगा गयी। सबेरे-सबेरे उसने सरमन बाबू के दरवाजे खटखटाये। और किसके दरवाजे खटखटाये वह?—अब क्या होगा, सरमन बाबू? है कुछ उपाय?

सरमन बाबू चुप।

"ऐं, चुप हैं सरमन बाबू। क्या होगा तब?"

तब·······।

वह शहर जाएगा। अफसरों से मिलेगा। यह अन्याय नहीं होने देगा। ऐसा बाँध नहीं चाहिए। खेत लेने हैं तो वैसे ही खेत बनाकर दो। हाँ···। क्यों सरमन बाबू, कोई उत्तर है?

सरमन बाबू की आँखों में एक चमक दौड़ गयी। मानो वे कह गयीं, हाँ उत्तर है अभी—। सरमन बाबू भीतर चले गये। दस मिनट में ही वापस आ गये।

दो दिन सुकली नहीं दिखा, तो गाँव-भर में रार पड़ गयी—नेता कहाँ गया? बाया भला यह अवसर छोड़ता? सारे गाँव में बात बो दी उसने—सुकली भाग गया। वह हमारे खेतों को नहीं बचा सका, इसलिए?

बात बढ़कर सूरज डूबे तक सुकली के घर पहुँची—सुकली ने डूँगर (जंगल) से कूदकर आत्महत्या कर ली। गाँव की जमीन बचा नहीं सका, इसलिए?

"हाय देवी, अब का हू हैं—।" उसकी मिहरिया ने सिर फोड़ लिया। माँ बेहोश हो गयी और बाप ने छाती पीट ली। बात गाँव-भर में हवा हो गयी थी। बाया सूरजमुखी बन गया था—फूला-फूला एक छोर से दूसरे छोर तक घूम गया।

एक फौज बनी थी, वह भी बिखर गयी।

मंगलू दादा ऊपर से रोया, पर भीतर-ही-भीतर जी खोलकर हँसा : महादेव का परताब बड़ा है। अन्याय कहीं हुआ है।—कभी नहीं।

गाँव-भर रोया, गाँव-भर हँसा। पर, मशीनें चलती रहीं। दनादन-दनादन!—गोले फूटते रहे और जिनके खेत जाने थे, वे किसान सिर धुनते रहे। पुलस में रपट—सुकली ने जान दे दी।

तीसरे दिन रपट लिखायी, वह भी बाया ने। पर यह क्या?—रपट लिखाकर लौट रहा था, तो सुकली मिल गया—साक्षात्, सीधा—वही तो है—सुकली ही—हाँ, वही तो है। उसने आँखें मींचीं, फिर हाथ की अँगुलियों से फाड़ीं—क्या हो गया इन्हें?—अरे, यह तो रामसरन बाबू हैं। बाबू रामसरन।

"पाँय लागौं मालिक।"

"खुश रहो।"

"मालिक⋯।"

"हाँ, कह⋯⋯कह तो बाया।"

"⋯⋯⋯⋯।"

बिना कुछ कहे बाया भाग गया। क्या कहता वह ?

सुकली गाँव पहुँचा, तो गली-गली उजागर हो गयी। सुकली की जै। हमारा नेता सुकली। जिनके खेत डूब रहे थे, उनने तो उसके पैर पकड़ लिये। उसने उन्हें बचा लिया। खेत नहीं डूबेंगे। बाँध थोड़ा आगे सरक जायगा। खेरमाई की पहाड़ी भी काटी जायगी।

खेरमाई की पहाड़ी⋯⋯।

अधर्म की सीमा हो गयी। बाया को दूसरा मौका मिला। फिर बात बोयी उसने, पर अब की वार कुछ न चला। सब ठण्ढा। सुकली शहर को आया था। बड़े-बड़े अफसरों से उसने बातें की थीं। एक-एक ने उसे हर बात समझायी थी—छोटी-से-छोटी बात। कैसे माने तब वह कि यह गलत है ? गाँव-भर को उसने सब समझा दिया। रामसरन बाबू को कुछ नहीं कहना पड़ा—एक शब्द भी नहीं। वह भी मान गये कि सुकली जनम से नेता है। उसे कोई सिखा नहीं सकता।

घर पहुँचा तो दरवाजे पर मिहरिया आरती उतारने खड़ी थी। उसका सुहाग कंकाली देवी ने वापस ला दिया। उसने बन्दना की है, आते ही उसकी आरती उतारेगी वह और फिर दण्ड भरते कंकाली की मढ़िया तक जाएगी। जरूर जाएगी वह। वह पहाड़ से कूदकर मरा कोई आदमी फिर जिन्दा लौटा है। धन्य हो देवी।

मुसीवत⋯⋯मुसीवत !

हर बात आड़े आयी। हर बात सामने आयी और ऐसा लगा कि सबको सुलझाने का काम यदि किसी का है तो वह है सुकली। किसी अफसर तक ने चीं न की। कहीं कोई बात नहीं। बस, सारी बातें हैं

सुकली के पास—गाँव की भी और अफसरों की भी। मंगलू दादा तक आता रहा उसके पास। अब तो एक बड़ी सेना है न उसके साथ जवानों की सेना और एक दिन वह बाँध भी पूरा हो गया। सुकली को वह समय भी याद है। हाँ, पूरी तरह याद है—चैत का महीना! वही सुमवार! वही तीज!

खर्रर खर्रर!

गाड़ियों पर गाड़ियाँ!!

भीड़—भीड़—भीड़ !!!

बलिहारी है ऐसी भीड़ की। अब तक कहीं नहीं हुई। शहरों के रास्ते उसी ओर दौड़ रहे थे जैसे। उद्घाटन होगा आज बाँध का। क्या नाम है, इसका?—रामसागर बाँध। राम की किरपा, रामपुरा में राम-सागर बाँध बँध गया। धन्य हैं यहाँ के लोग। कित्ता काम किया सबने मिलकर।

सुकली सेमल का फूल बन गया। उसकी मिहनत अकारथ नहीं गयी। सब सिरम सुफल हुआ। कहीं चीं तक नहीं। और जिस समय मंगलू दादा ने आगे बढ़कर सुकली के माथे तिलक लगाया, उस समय तो जैसे उसका ज़नम सफल हो गया। उसके रोयें-रोयें में खून भर गया।—बस, अब खून चुआ चाहता है। यूँ गिरा!

सूरज झुका का झुका रहा। पर, यहाँ का काम बिजली-जैसा सब हो गया। खेरमाई का लाल झण्डा सुकली ने बाँध की सबसे ऊँची नोंक पर लगा दिया और बराबर वह झण्डा फहराता रहा—बेखटके! बेहद!

मंगलू दादा की आँखें भी एक बार भर आयीं। व्यर्थ उसने सुकली का विरोध किया। एक मढ़िया गयी तो क्या, झण्डा तो उसने अपने ही हाथों लगाया है। वही झण्डा तो है यह। हाँ, वही। बाप-दादों से जिसे देखता आया है। सिंदूरी लाल झण्डा हवा में यूँ फहरा उठा, जैसे भरे खेत में किसी की साड़ी की चूनर लहरा उठती है।

"गँधी बबा की जय। जै गँधी मिहराज की।"

कोलाहल, भीड़-भाड़। भागो, भागो, भीड़ मत करो। पुलस के नव-जवानों ने रास्ता बनाया। मिनिस्टर साहब आये हैं। वही उद्घाटन करेंगे, बटन दबाकर इस बाँध का। इधर उन्होंने बटन दबाया और उधर छर्र छर्र छहछराते पानी की धार फूटी—एक तेज धार! फिर पानी-ही-पानी!

मिनिस्टर साहब मंच पर खड़े हो गये—और,''''कौन है यह? बाया? हाँ तो बाया ही तो है। क्यों गया वहाँ? कैसे गया? कैसे?

मिनिस्टर साहब की आँखें तन गयीं। लाल आँखों से उन्होंने उस फहराते झण्डे की ओर देखा। उनका इशारा न जाने कैसे अफसरों ने समझ लिया। वह झण्डा उतार दिया गया। मिनिस्टर साहब ने उसे लेकर गुस्से से फेंक दिया और एक बार अपनी भरी आँखों से सुकली की ओर देखा। उसी तरह गुस्से से उन्होंने बटन दबाया। पानी जोर से सरसराते बह गया।

सुकली का मन भी जैसे उसी धार के साथ वह गया। वह अपने-आप टूट गया। उसे छाती में गहरा दर्द-सा प्रतीत हुआ। यह सब कैसे हो गया? क्यों हो गया? आखिर क्यों? उसे क्या मालूम था कि मिनिस्टर साहब खेरमाई के झण्डे को कम्युनिस्टों का झण्डा समझ लेंगे और उसके सारे किये-कराये पर पानी फेर देंगे। काश, वह समझ पाता! वह एक बार तो कम्युनिस्टों का झण्डा देख लेता! एक बार''''!

अब भी वह उसी बाँध को देख रहा है—उसमें लगे उसी झण्डे को देख रहा है—लाल, लाल फहराता और लहराता झण्डा! हाँ, लहराता झण्डा ही तो!

कमर में बन्द एक गाँठ

सूरज ढल रहा था कमल के लाल-लाल फूल अपने-आप धीरे-धीरे बन्द होते जा रहे थे।

जयन्ती की नन्हीं आँखें उन फूलों पर अटक गयीं। उसने एक फूल तोड़ा। उसे बालों में खोंस लिया और ऊपर फुँदरा कस दिया। सिर हिलाया, फूल न हिला। वह जम गया था। जयन्ती ने तालाब के पानी में अपना मुँह देखा। दाहिने और बायें सिर हिलाया। उसका मटमैला चेहरा लाल फूल पाकर चमक उठा था, जैसे धुँआरी लकड़ियों में आग जल उठती है। उसकी खुशी की सीमा नहीं। चुल्लू में तालाब का पानी लेकर उसने अपना मुँह धोया। उसके सामने उसने अपना मस्तक झुका दिया। आँचुर के छोर से अपना चेहरा पोंछकर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर जैसे ही उसने एक अँगड़ाई ली कि वह चौंक पड़ी। उसका हाथ किसी ने पकड़ लिया था।

"कौन ?" चौंककर उसने पीछे देखा और मुँह फाड़कर रह गयी, "रतना तू ?"

"हाँ री, मैं रतना।"

"मैं तो डर गयी थी।"

"डरे क्यों न, उमर ही तो डरने की है। हमें अकेला छोड़कर यहाँ चली आयी और अब तालाब के पानी में अपनी सूरत देख-देखकर फूली नहीं समाती—अरे, यह क्या ? कमल का फूल ? बात क्या है जयन्ती ?" कहते हुए रतना ने उसके हाथ पकड़ लिये और वह उसके चेहरे को आँखें फाड़कर घूरने लगी।

"कुछ नहीं। वैसे ही रतना।"

"सच बता ?"

"अरी, सच क्या बताऊँ जब कुछ सच हो तब न ? तू तो भौंरा बन गयी है और मुझे ऐसे घूरती है। मेरी बात माने तो कहूँ। तालाब में फूल देखे तो जी मचल गया। बाजार तो हर गुरुवार को मिल जाता है, पर ऐसे फूल कब मिलते हैं ?"

"धत्तेरे की।" रतना ने उसके हाथ झटक दिये, "मैं क्या सोच रही थी ?"

"क्या ?" जयन्ती ने पूछा।

"कुछ नहीं।" रतना ने मुँह फेरा और जयन्ती का हाथ खींचती बोली, "चल अब बाजार। घूम लें।"

दोनों बाजार की ओर बढ़ गयीं। छोटा-सा गाँव, सब दूर फूस की टपरियाँ गेंवड़े के बाहर एक छोटा-सा मैदान। उसमें दो बड़े झाड़ हैं, एक पीपल का और एक बड़ का। यही दो झाड़ दो बड़े छाते की तरह मैदान को ढँके रहते हैं और इन्हीं के नीचे बाजार लगता है, हफ्ते में एक दिन। जब भी यह दिन आता है, सूना मैदान जाग उठता है। छोटी-छोटी दुकानें लग जाती हैं। कुछ पर कपड़े के पाल तने रहते हैं और कुछ नंगे सिर ही रहती हैं। दूर-दूर के व्यापारी यहाँ आते हैं, घोड़ों पर, गाड़ियों पर और पैदल भी। सब तरह के सामान यहाँ आते हैं। तरकारी-भाजी से लेकर सिन्नी-मिठाई और बरतन-भाँड़े तक। आसपास के गेंवड़े के मरद-औरत यहाँ आते हैं और अपनी जरूरत की चीजें ले जाते हैं। छोटा-सा बाजार, पर बड़ी भीड़, बड़ा कोलाहल।

जयन्ती और रतना बाजार के एक छोर पर थीं। उन्होंने अपनी नन्हीं आँखों से दूर-दूर तक देखा। सफेद, लाल रंगों के ऊपर काले सिर, जैसे किसी नदी की सतह पर अनगिनत कछुए तैर रहे हों।

"चल हिंडौला झूलें", रतना बोली। जयन्ती ने आँचुर के छोर को देखा। उसमें गाँठ बँधी थी। यह उसकी सम्पत्ति है। इस छोटी-सी गाँठ में जैसे अमूल्य हीरा बँधा है। उसने गाँठ खोली, सफेद रंग की दुअन्नी चमक उठी। "चल री रतना" खुशी से वह झूम उठी। दोनों एक साथ उचकती

आगे वढ़ीं और उनकी उचाट ने बाजार-भर की नजरें अपनी ओर खींच ली। दोनों ने हिंडौलेवाले को पैसे दिये। जयन्ती ने दुअन्नी दी और उसके बदले उसे सात पैसे वापस मिल गये। उन्हें फिर उसी तरह गाँठ देकर वे हिंडौले की पालकी में चढ़ गयीं।

"चररररचूँऊँऊँऊँ चूँऊँऊँ चररर," हिंडौला ऊँचे आसमान तक पहुँचने लगा। वह एक गोल चक्कर काट रहा था और जयन्ती रतना के साथ पालकी में बैठी हवा में उड़ रही थी। उसकी नजरें अब काफी दूर तक जाती थीं। उसके नीचे आदमियों का झुण्ड तैर रहा था, वह उन सबके ऊपर थी। दूर पहाड़ की हरी झाड़ियाँ, नीचे त.लाब का पानी और उसके आसपास कोलाहल ! इस कोलाहल में दूर के पेड़-पौधे भी जैसे डूबे थे। उसे लगा, जैसे सब उसके साथ झूल रहे हैं। सारी धरती और ऊपर का अछोर नीला आसमान भी उसके साथ झूल रहा है। वे सब जैसे उसके साथ ही पालकी पर बैठे हैं। पालकी बराबर घूमती जा रही है, घूमती जा रही है। उसके घूमने का अन्त शायद नहीं है। परन्तु वह और कुछ सोचती कि "चुंऊँऊँ-चररर-चूंऊँऊँ" की आवाज के साथ ही तुरन्त पालकी रुक गयी। अब जयन्ती जमीन पर थी। उस जमीन पर, जहाँ उसे छोड़कर बाकी सब थे। हिंडौलेवाले ने पालकी हाथ में थाम ली। वह उसको उतार रहा था और जो एक पैसे की कीमत पूरी हो गयी थी। वह उसको उतार रहा था और जो उतरने में देर करता, उसे वह जोर से चिल्लाकर डाँट देता था। जयन्ती को लगा, जैसे किसी ने उसके पर काट लिये हैं। बोली, "ऐ हिंडौलावाले, एक वार और घुमा दे।"

"चल हट, तेरे वाप की मशीन हैं क्या ? और घूमना है तो और पैसे दे।"

जयन्ती का हाथ अपने आप कमर पर चला गया। उसे लगा कि वह एक पैसा और दे दे और फिर आसमान में उड़ने का मजा लूटे, पर रतना तब तक नीचे उतर चुकी थी। उसने रतना की ओर देखा। रतना शायद अब घूमना नहीं चाहती थी।

"चल री, उठती है कि नहीं" जयन्ती अपना पैर नीचे रख ही रही थी कि हिंडौलेवाले ने जोर से उसका हाथ झटककर उसे नीचे उतार दिया।

उसे बड़ा खराब लगा। उसने लाल आँखों से एक बार हिंडौले-वाले को देखा और फिर मुँह फेरकर, बिना बोले आगे बढ़ गयी।

दोनों साथ थीं। जयन्ती इधर-उधर देखती जा रही थी। "चल जलेबी लें" रतना ने कहा।

जयन्ती ने देखा, पीपल के झाड़ के नीचे खोंचा लिये जलेबीवाला बैठा है। गुड़ की, तेल में सिकी जलेबी—कितना रस रहता है उनमें, कितना मीठा उनका स्वाद है। दो-दो पैसे की जलेबी दोनों ने ले लीं और वहीं खड़ी होकर वे खा भी गयीं। पास में पानवाला था। एक पैसे का एक बीड़ा उससे भी दोनों ने खरीदा। गाल में पान भरकर दोनों प्रसन्न हुईं। काली देह में लाल होंठ, मिर्च की तरह तेज चमकने लगे। जो उनके फेर में आ जाए, अपरी गति वही जाने।

डुग डुग डुग डीं डीं डीं—एक मदारी बन्दर नचा रहा था। भारी भीड़ वहाँ जमा थी। जयन्ती भी वहाँ चली गयी और बन्दर का तमाशा देखने लगी। 'ओ हो, चल बन्दर रानी, तू ससुराल कैसे जाएगी ?' मदारी ने उसके हाथ में एक लकड़ी पकड़ा दी थी और वह ससुराल की ओर रवाना हो चुकी थी। डुगडुगी की आवाज जब तक होती रही, वह बरा-बर ससुराल की ओर चलती रही।

"घर जाकर तू अपने प्रेमी से क्या कहेंगी ?" मदारी के प्रश्न पर बँदरिया सिर मटका कर उचकने लगी। "बस, बस, ज्यादा प्यार मत दिखा। चल बैठ यहाँ।" बँदरिया तुरन्त सीधी बैठ गयी। मदारी की डुग-डुगी बजती रही और बँदरिया का नाच बराबर चलता रहा और जयन्ती भी न जानें कहाँ खो गयी। उसे अपने घर की याद आ गयी थी, माँ कहती थी, "जब तू ससुराल जाएगी जयन्ती, हमें तो न भूल जाएगी ?"

जयन्ती शरमा जाती है। इस प्रश्न का वह क्या उत्तर दे, वह नहीं समझ पाती। एक बार पलक उठाकर माँ की ओर देखकर वह वहाँ से चली गयी थी। शायद माँ से यह कह गयी कि माँ, इसका उत्तर तू ही दे सकती है। माँ के पहले हर लड़की दुलहिन ही तो होती है। उसे क्या मालूम था कि उसकी माँ दुलहिन के पहले माँ वनी थीं।

बुधवा का चेहरा उसके सामने आया। खेत की मेंड़ पर वह उस दिन मिल गया था। उसने जयन्ती के हाथ पकड़े थे। कहता, विवाह-भर हो जाए, वँदरिया-जैसा नचाऊँगा।

"चल हट।" जयन्ती ने अपने हाथ झटके थे और कहा था, "मैं नाचूंगी, क्यों रे? अभी से यह कहता हैं तो जा, तुझसे विवाह नहीं करूँगी!"

"करेगी कैसे नहीं।"

"नहीं करूँगी जा।" और उसे छोड़कर वह आगे वढ़ गयी थी, तो पीछे से बुधवा ने उसे पकड़ लिया था, कहा था "सच जयन्ती, जब तू चिढ़ती है तो तेरे गदराए गाल सेमर के फूल बन जाते हैं। तब तू कितनी सुन्दर लगती है। अरी, तुझे मैं क्या नचाऊँगा, मैं तो तेरे इशारे पर नाचूंगा री।" तव बुधवा सचमुच नाचने लगा था। जयन्ती ने अपने मुँह में कपड़ा ठूंसकर हँसी रोकी थी और दोनों खेत की मेंड़ के नीचे उतर कर जुनरी की भीड़ में खो गये थे।

एकाएक जयन्ती काँप उठी। उसने नीचे देखा, वँदरिया उसके पैर छू रही है। मदारी अव भी अपनी डुगडुगी पीट रहा था। जयन्ती ने उस नन्हीं-सी बँदरिया को गौर से देखा। वह उसे बड़ी प्यारी लगी। उसने गाँठ खोली और दो पैसे उसके हाथ में रख दिये। उसे पैसे देकर जयन्ती को जैसे वड़ा संतोप मिला। रतना ने गाल दवा दिये बोली, "बड़ी खुश हो गयी। ससुराल की वात करती थी न।"

"हाँ, आँ-आँ-आँ" जयन्ती अपनी खुशी को न रोक सकी।

"चल जयन्ती, भूख लग रही है।"

"कहाँ ?"

कुछ ले लें।"

"कैसी है री, घर से क्या बिना खाये आयी थी ?"

"नहीं, आयी तो खाकर थी, पर उसे देखकर भूख लग आयी !"

"किसे ?"

"वही···वही···तू तो उसे जानती है।" कहती हुई रतना शरमा गयी।

"कौन ? मंगलू, आया है क्या ?"

"हाँ, वह······।" और रतना दौड़ गयी। जयन्ती भी भला क्यों पीछे रहती। रतना जब रुकी, तो सामने मछलियों की दुकान थी। तालाब की छोटी-छोटी मछलियाँ भुनी हुई और स्वाद में सोंधी। रतना ने यह वहाँ देखा, शायद मंगलू भीड़ में खो गया था।

"दो पैसे की मछलियाँ।" जयन्ती ने बची हुई अधन्नी फेंकते हुए कहा। मछलियाँ बेचनेवाली ने एक पत्ते में मछलियाँ रख दीं। तब तक रतना आगे भाग गयी थी। जयन्ती ने देखा, वह मंगलू के साथ थी। मंगलू ने उसका हाथ पकड़ लिया था और दोनों हँस रहे थे। दोनों के दाँत उस भीड़ में भी चमक उठते थे। जयन्ती ने पत्ते पर से एक मछली उठायी और मुँह तक ले गयी, पर मुँह में वह न रख सकी। उसने सारी मछलियाँ आँचुर के छोर में बाँध लीं। उसकी जो सम्पत्ति लुट गयी थी, मछलियों ने जैसे वह भर दी थी। पर न जाने क्यों मंगलू को देखकर उसका मन बिगड़ गया। अब वह अकेली थी। रतना ने उसका साथ छोड़ दिया था। अब वह लौटकर भी नहीं देखेगी। काश, बुधवा वहाँ होता। वह भी तब रतना को जलाने का मजा चखाती। पर, बुधवा यहाँ कहाँ ? वह तो पाँच मील गाँव में निंदाई कर रहा था। उसने कितना कहा, पर वह न आया।

"अरी मोरी वऊ री, मोरी खबर न छोड़ियो।"

दो औरतों के रोने के स्वर सारे बाजार में गूँज उठे। जयन्ती ने देखा, दो औरतें भेंट कर रही हैं। एक दूसरे को गले लगाये वे रो रही हैं। जरूर उनमें एक नयी दुलहिन होगी। बाजार में उसकी माँ मिल गयी तो जैसे ममता का बाँध फूट पड़ा। जयन्ती उस ओर देखने लगी। थोड़ी देर दोनों रोयीं और फिर एक साथ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। माँ अपनी बेटी के गले में हाथ फेर रही थी। बेटी गले में रुपयों की हवेली पहने थी। माँ की खुशी का वह मंगलसूत्र था।

"उसने बनवायी है माँ ?"

"इसे वह बहुत चाहता है हिनौतावाली।" एक दूसरी अधेड़ औरत बोली, "दिन-भर अपनी नजरों में बन्द रखता है और यह भी तो"—"चल हट दीदी," बेटी ने शरमा कर घूँघट तान लिया था और पीठ दे ली थी। जयन्ती ने अपना आँचुर ऊपर खींचा, शायद वह भी घूँघट डालना चाहती थी, पर आँचुर और घूँघट घुटनों तक ही तो वह मुश्किल से पहुँचते हैं। जयन्ती रह गयी। पर, उसे दुःख नहीं हुआ। बुधवा भी तो उसे खूब चाहता है। जब उसका ब्याह हो जाएगा, तब वह कहेगी कि उसे आँचुर पसन्द नहीं। वह पूरी साड़ी पहनेगी। पर.......।

"बचाओ, बचाओ, बचाओ, दौड़ो ओओओ !" बाजार के एक कोने में हलचल मच गयी। एक साँड़, एक गाय के पीछे दौड़ रहा था। वह एक दुकान पर से निकल गया था और एक बच्चे को भी कुचल चुका था। सारे दुकानदार अपनी-अपनी दुकानें छोड़कर भाग रहे थे। तभी पीतल के बर्तनों का दुकानवाला उठा। उसने अपना डंडा सम्हाला और साँड़ का पीछा किया। साँड़ भी आखिर गरूर में था। उसने लौट-कर उसका सामना किया और इस मुठभेड़ में जैसे साँड़ और जयन्ती पास खिचते चले आये। साँड़ की रीढ़ पर जब बर्तनवाले का जोरदार डंडा पड़ा, तो साँड़ घबड़ा गया और पूँछ उठाकर भागा।

मरी री ई ई !—जयन्ती गिर पड़ी। साँड़ उसे छूता हुआ भागा था।

दो-चार लोग उसकी ओर दौड़े। हाथ पकड़कर उन्होंने उसे उठाया। उसके घुटने छिल गये थे और जयन्ती का खून सूख गया, उसके आँचल के छोर की गाँठ खुल गयी थी। सारी मछलियाँ जमीन पर बिखर गयी थीं और कुत्ते उन्हें उठा-उठाकर खाने लगे थे। उसकी आँखों के सामने जैसे अँधेरा छा गया। उसकी सारी सम्पत्ति लुट गयी थी। उसके अपार वैभव को साँड़ लूट चुका था। बुधवा के लिए उसने मछलियाँ बाँधकर रखी थीं। उसे भुजी मछलियाँ बहुत भाती हैं। जयन्ती की आँखें भर आयीं। वह वहाँ से चुपचाप चली गयी। उसे वही जान सकता है, जिसने प्यार किया है। जिसने प्यार की पीर नहीं पहचानी, वह भला इन सूखी मछलियों का मोल क्या जाने ?

जयन्ती का मन भारी हो गया था। उसके घुटनों में दर्द था और उससे भी ज्यादा पीड़ा उसके मन में थी। उसने देखा, सामने एक दुकान लगी है। वह चूड़ियाँ बेचता है। और साथ ही डगरपोल[1] भी। उसकी नजर डगरपोल पर अड़ गयी और वह अनजाने ही उस दूकान के सामने आकर खड़ी हो गयी। उसने देखा, दो जोड़े वहाँ खड़े हैं। एक लड़की ने लाल और पीले रंग की चूड़ियाँ पहनी हैं। उसके साथी लड़के ने पैसे दिये और दोनों हाथ-में-हाथ डाले चले गये। दूसरी लड़की लाख पहन रही थी। लाखें पहनने के बाद जब लड़का पैसे देने लगा, तो उस लड़की ने एक डगरपोल उठा लिया और अपने हाथ से लड़के के गले में बाँध दिया। दोनों एक साथ हँस पड़े और तब जयन्ती की आँखें भी चमक उठीं। वह भी बुधवा के लिए एक डगरपोल ले जायेगी। जब वह बाजार आने लगी थी, तो गँवड़े में वह मिला था, कहता, था "आज खेत में काम न हुआ तो फसल बरबाद हो जायगी, जयन्ती तू बाजार हो आ और देख पिछले महीने तू डगरपोल लायी थी, वह टूट गया है।"

"अच्छा, आज दूसरा ला दूँगी ?"

जयन्ती ने तुरन्त हाथ बढ़ाकर दुकान से लाल-पीली गुरियों का एक

---

१. मरदों के गले में पहनने की एक माला। बस्तर में इन्हें 'डगरपोल' कहा जाता है।

अच्छा-सा डगरपोल उठा लिया। उसे लौटा-पौटा कर देखा। बाजार में घूमते ऐसे लड़कों को देखा, जो बुधवा की उमर के थे। डगरपोल सामने रखकर उसने तौला, कितना सुन्दर लगेगा उसे। और तब वह दुकानदार से पूछ बैठी, "कितने का है वीर[1] ?"

"सिर्फ एक आने का।"

"बस, एक आने का!" जयन्ती अपना हाथ कमर के पास ले गयी तो जैसे उसके सारे सपने चूर हो गये। वहाँ गाँठ ही कहाँ थी। वह तो कब की खुल चुकी थी। उसमें मछलियाँ थीं, सो अब वे भी नहीं रहीं। जयन्ती को मर्मान्तिक पीड़ा हुई। वह अब क्या करे? जब वह लौटकर जायगी, तो बुधवा गेंवड़े पर खड़ा मिलेगा—तब वह डगरपोल माँगेगा।

"वीर, पैसा अगले बाजार दे दूँगी···" जयन्ती अपनी बात पूरी भी न कर पायी थी कि दुकानदार ने लाल-पीली आँखों से उसकी ओर देखा और एक झटके से डगरपोल उसके हाथ से छीन लिया, "चल हट, पैसा न धेला, डगरपोल खरीदने आयी है। हराम का माल है। बाप की दुकान है न, हरामजादी।"

जयन्ती के मन का बाँध टूट गया, वह दुकान से दूर आ गयी और सिसकने लगी। यह सब एक लड़का देख रहा था। बीड़ी का धुआँ छोड़ता वह वहाँ आ पहुँचा। बोला, "क्या बात है री?"

उसकी हमदर्दी जयन्ती को अच्छी न लगी। लड़के ने कहा, "तेरे पास पैसे नहीं हैं?"

"नहीं", जयन्ती ने सिर ऊपर उठाया तो उसकी दोनों आँखें आँसुओं से डबडबायी थीं। वे हीरों की तरह चमक उठीं।

लड़के ने पूछा, "तुझे पैसे चाहिए?"

जयन्ती चाह कर भी 'नहीं' न कह सकी। उसने सिर हिलाकर हामी भर दी।

---

१. भाई।

वह बोला, "तो चल, नरवा के तीर मेरी गठरी रखी है, उसमें पैसे बँधे हैं।"

"सच !" जयन्ती का चेहरा कनेर की फूल की तरह चमक उठा।

"हाँ सच, बिल्कुल सच, मैं तुझे खूब पैसे दूँगा।"

"खूब नहीं, बस एक आना डगरपोल के लिए। अगले बाजार तुझे वह लौटा दूँगी।"

लड़का कुछ बोला नहीं। दोनों आगे चल दिये।

नरवा दूर नहीं था। तालाब के दूसरे किनारे पर नरवा की ढाल थी। ढाल से नीचे उतर कर वे नरवा के तीर पहुँच गये। वहाँ और कोई था नहीं। चारों ओर शांति थी। बाजार का हल्का-सा कोलाहल-भर वहाँ सुनायी दे रहा था।

"मैं तेरा बड़ा एहसान मानूँगी रे....।"

"एहसान की क्या बात है गोरी। बाजार में कितनी लड़कियाँ आयीं पर तू ही है जिसने मेरी आँखें पकड़ लीं। क्या चेहरा पाया है !"

लड़के ने जयन्ती के हाथ पकड़ लिये और बोला, "तो चल अब।"

"कहाँ ?"

"जैसे कुछ नहीं जानती। पैसे क्या मुफ्त में मिलेंगे ?"

जयन्ती पलक मारते सब कुछ भाँप गयी। परन्तु, तब तक लड़के ने उसे अपनी बाजुओं में पूरी तरह समेट लिया था। उसने प्रतिकार करने की कोशिश की, पर वह कुछ काम न आया। वह मुँह खोलना चाहती थी, पर लड़के ने अपने गले का डगरपोल उसके मुँह पर रखकर उसे भी बन्द कर दिया। थोड़ी देर के बाद उस लड़के के साथ वह बाजार में लौट आयी। उसके मन पर जैसे एक बहुत बड़ा पत्थर था। लड़के ने एक आने की मछलियाँ ले दीं और उसी ने वे मछलियाँ लड़की के छोर में बाँध भी दीं। फिर वे डगरपोल की दुकान पर पहुँचे। जयन्ती अब यन्त्रमात्र रह गयी थी। दुकानदार ने देखा तो मुसकरा

दिया। लड़के ने अपने हाथ से डगरपोल का गुच्छा उठाया और जयन्ती के सामने कर दिया, "निकाल ले जितने चाहिए।"

जयन्ती की आँखें हिलते पानी की तरह घूम गयीं। उसे लगा, ये डगरपोल नहीं, साँप के बच्चे हैं। ये रंगबिरंगे साँप हैं, जो उसे डँसने आये हैं।

"नहीं, मैं डगरपोल नहीं लूँगी।" उसने जोर से कहा।

दुकानदार हँस पड़ा, "अभी तो उसी के लिए मरी जा रही थी।"

लड़के ने उसके सिर पर हाथ फेरा, "ले ले, जयन्ती, ले भी ले।"

जयन्ती के हाथ उन्हें लेने बढ़ न सके, परन्तु जब लड़के ने गुच्छे में से दो डगरपोल उसे निकालकर दिये, तो वह लेने से इन्कार भी न कर पायी। उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया और अब उसके हाथ में एक की जगह दो डगरपोल थे। उसकी कमर की गाँठ भी अब पहले से ज्यादा बड़ी हो गयी। परन्तु उसने अनुभव किया कि अब उसके घुटने के दर्द से भी ज्यादा उसकी छाती की धड़कन बढ़ गयी है।

आकाश में बादल घिरने लगे थे और साँझ बाजार में उतर आयी थी। वह महिषासुर की तरह सूरज की सारी किरणों को पी चुकी थी।

●

भाई-बहन का ब्याह

आसमान की छाँह ने जब नीचे उतरकर धरती और आकाश को एक में मिला दिया, तो सारा गाँव खिरके की धूल से सराबोर हो गया। सोता बालक जैसे एकदम चौंककर जाग उठे, गाँव-भर में चहल-पहल मच गयी। जानवर भी आदमी से बातें करने लगे।

सारे जानवरों को गेंवड़े में छोड़कर जेठिया ने सन्तोष की साँस ली और अपने जुड़वाँ बैलों को पास के नाले से पानी पिलाकर घर की ओर बढ़ी। यह उसका प्रतिदिन का नियम था। लेकिन, आज न जाने क्यों, उसे सब तरफ एक अजीब परिवर्तन-सा नजर आ रहा था। गाँव-भर के स्त्री-पुरुष जैसे आँखें फाड़-फाड़कर जेठिया को निहार रहे थे। सबकी आँखों की पुतलियाँ एक ही तरह से तनी थीं, जैसे उन सबका एक ही प्रश्न हो। जेठिया यह परिवर्तन बड़े आश्जर्य से देख रही थी। उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि उसकी सहेली—ढुलिया भी आज उससे क्यों नहीं बोली ? जब वह पीपल के पेड़ के नीचे पहुँची, तो ढुलिया ने जेठिया को देखकर केवल मुसका दिया और उँगलियों से कोई अनजाना-सा इशारा कर अन्दर चली गयी। जेठिया उससे आकर लिपट जाती थी, जंगल की बातें बड़े प्यार से पूछती थी और उसके आँचल में बँधे चार, करौंदा, महुआ या तेन्दू के फलों को छिना लेती थी। उन्हें जब वह बड़े प्यार से चखती तो जेठिया मुसकाकर कह देती, "देख ढुलिया, तू अकेले सारे फल न खा जाना, उन्हें भी देगी न ?"

ढुलिया लाल हो जाती और छुई-मुई होकर भीतर भाग जाती थी। आज सब कुछ बदला था, न उसने कुशलता पूछी और न पास आकर फल ही छीने। इससे जेठिया का चिन्तित होना स्वाभाविक था। कुछ सोचती वह थोड़ा आगे बढ़ी ही थी कि उसके पड़ोसी ताऊ ने रोककर कहा,

"बेटी यह अच्छी बात नहीं है, जमाना खराब है, पैर सम्हालकर रखना चाहिए।"

वह इन शब्दों का अर्थ क्या समझे, रुककर उसने पूछा, "तुम्हारा मर्म नहीं समझी ताऊजी।"

बूढ़े ने अपनी काँपती गरदन हिलाकर कहा, "हाँ, मेरा मतलब काहे को समझने चली है, पर जो निकल आये।" और आगे बढ़ गया। जेठिया ने चाहा कि वह लौटकर ताऊ से इस उपेक्षा का कारण पूछे, पर वह काफी आगे निकल चुका था, वह भी आगे बढ़ गयी।—यह सब देखते-सुनते जब वह घर पहुँची, तो सन्न रह गयी। उसकी माँ दुलारी दालान में बैठी सिसक रही थी। जेठिया ने दोनों बैलों को सार में बिना बांधे ही छोड़ दिया और माँ के पास जा पहुँची। देखते ही दुलारी उससे लिपट पड़ी और अपनी गोद में भरकर जोर-जोर से रोने लगी। पर, यह सब जैसे जेठिया की समझ के परे था, वह भौंचक्की तमाशा देख रही थी। थोड़ी देर यही चलता रहा—माँ रोती रही और बेटी फूस के घर का छप्पर एकटक निहारती रही। इसका भी अन्त हुआ, जेठिया ने माँ के आँसू पोंछे। माँ बोली, "बेटी, कल भुनसारे सारा गाँव डण्डा लेकर बड़े सरकार की बखरी में धावा बोलनेवाला है। बड़े वीर के घर अभी पंचायत भरी थी, उसमें यह बात सब लोगों ने मिलकर तय की है।"

"बड़े सरकार की बखरी में!"—अनजाने ही जेठिया का मुँह खुला, "उसने गाँव का क्या बिगाड़ा है माँ?"

जेठिया की इस अनावश्यक हमदर्दी ने माँ की ममता को सतायी हुई नागिन की भयंकर फुत्कार में बदल दिया। धक्का देकर गोद से उसे अलग करती हुई बोली, "अब तू दूध पीती छोकरी नहीं है, जेठी, इसका जवाब तो तू खुद अपने आप से पूछ। सारे गाँव की आँखों में धूल झोंककर बड़े सरकार के साथ नाले के किनारे चुहल करते तुझे शरम नहीं आयी। रहती है फूस की झोपड़ी में और सपना देखती है महलों का। कुछ अपनी और अपने बाप-दादों की इज्जत का भी तो खयाल किया होता।"

सुनकर जेठिया के होश फाखता हो गये। रास्ते-भर की सारी बदलाहट का मर्म वह बात-की-बात में समझ गयी। नाले के किनारे की वह रंगीन दुनिया उसकी आँखों के सामने झूलने लगी। उसे याद आया, बड़े सरकार के साथ जब वह नाले के किनारे आँखमिचौनी खेल रही थी, तो आम के बगीचे के सूखे पत्ते एकाएक इस तरह सरसराये थे, जैसे कोई भारी अजगर उनके ऊपर से निकल गया हो। उन दोनों ने चौंककर देखा तो वहाँ कोई आदमी नजर नहीं आया था, तब वह खूब खिलखिला कर हँसी थी और बड़े सरकार को न जाने कितने ताने दे रही थी, "डरपोंक कहीं के, बस इतने-से ही घवड़ा गये। मेरे बाप ने तो घने जंगल में अकेले एक नरभक्षी शेर को अपने हाथों से मार डाला था और तुम सूखे पत्तों की सरसराहट से डर गये!"

बड़े सरकार ने कहा था, "ऐसी बात नहीं जेठी, यह सरसराहट साधारण नहीं हो सकती। देख न सामने के झाड़ का एक पत्ता भी नहीं हिलता, जरूर कोई जासूस हमारे पीछे है।"

जेठिया ने अँगूठा दिखाते हुए कहा था, "लगा रहे, कलमुँहा क्या बिगाड़ लेगा हमारा?" पर बड़े सरकार तभी सहम गये थे और सिर-दर्द का बहाना कर वहाँ से भाग खड़े हुए थे।

"अब क्या होगा माँ?" जेठिया ने भय और उत्सुकता-भरे शब्दों में पूछा।

माँ ने कहा, "होगा क्या, या तो गाँव-भर मारा जायगा या बड़े सरकार मारे जायँगे। आंज तो जंगी भी खार खाये बैठा है। न जाने बड़े सरकार से कौन-सा बदला लेना चाहता है। तू तो जानती है, कितना खूँखार आदमी है वह। उस दिन झरों का हाथ, कालपी के पटवारी ने अकेले में क्या पकड़ लिया, उसे जान से हाथ धोना पड़ा। जंगी ने अपनी टंगिया (कुल्हाड़ी) से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे और खुद पुलिस में जाकर अपना खून कबूल कर आया था। अपनी इसी ईमानदारी के कारण सरकार ने उसे जमानत पर छोड़ा है, मगर आजकल

तो वह बौरा गया हैं। उस पर खून चढ़ा है। कहता था, सुबह होते ही बड़े सरकार की बखरी में जाऊँगा और बाहर निकलते ही कुल्हाड़ी की चोट से उसका काम तमाम कर दूँगा।"

"माँ...." जेठिया के मुँह से एक लम्बी चीख निकली और उसका सिर नीचे झुक गया। दुलारी ने उसके बालों को सहलाते हुए कहा, "अब पछताने से क्या बेटी...." इसी समय उसके गले में जब दुलारी की नजर पड़ी तो खून सूख गया। बोली, "सोने का हार।....यह तूने क्या किया बेटी? अपने गले में यह साँप पहनते तुझे डर नहीं लगा? कौड़ियों और घुँघचियों की माला ने तेरा क्या बिगाड़ा है। इनकी कीमत भले ही माटी हो, पर साँप का जहर तो नहीं है।" वह जेठिया के कुम्हलाये चेहरे को बैठी-बैठी देखती रही। उसके झुके मुख पर अभी भ लाल घुँघचियों-जैसी आभा चमक रही थी और बड़ी-बड़ी आँखें नीली सरसों की भाँति कोमल तथा लुभावनी लग रही थीं।

दुलारी की आँखों से मोती-जैसे बड़े-बड़े आँसू ढुलक रहे थे और पिछली जिन्दगी की तस्वीर एक के बाद एक उसकी आँखों की पुतलियों के सामने से गुजरती जा रही थी। कितनी मुश्किल से उसने जेठिया को पाला है। उसी के पीछे उसने तीन-तीन घर बदले और यह चौथा साथी भी बुढ़ापे में छोड़कर चला गया। कहने को तो दुलारी ब्याही है, पर कभी उसके शरीर में ब्याह की हल्दी नहीं लगी। पिछले पचास सालों की जिन्दगी में न जाने कितनी बार उसे जानवरों की तरह पीटा गया है, न जाने कितने घाव उसकी पीठ पर अभी भी बने हैं। बार-बार घर बदलने के सिलसिले ने उसे कितना तड़पाया है। कई बार उसने गले में फन्दा लगाने की बात भी सोची है, नाले में डूब मरने की इच्छा भी उसने की है, पर इस लड़की के मोह ने यह सब नहीं करने दिया। इन सब मुश्किलों के लिए जिम्मेदार कौन है, जमाने का इतना रंग देखने के बाद भी दुलारी जान नहीं पायी थी। और जब कोई चीज समझ के परे

होती है तो भाग्य और भगवान का भरोसा ही जी को समझाने का एक-मात्र रास्ता रह जाता है।

वसन्त का वह अल्हड़ महीना जब दुमकुरिया[1] के कुमार सदस्यों का दल 'फागुसेंगरा'[2] के बाहर गया था। दलसिंह उस दल का मुखिया था। उस नौजवान के रूप-सौन्दर्य पर दुलारी मोहित हो गयी थी। दोनों ने खूब खुलकर पहाड़ियों में शिकार खेला था—खमैर, गूल्हर और महुआ के पेड़ों के नीचे, चकौड़ा और पथरचटा की आड़ में प्रेम के गीत गाये थे। 'फागुसेंगरा' के बाद जब यह दल वापस लौटा था, तो गाँव-भर ने उसका खूब स्वागत किया था। उसी रात को खुले वातायन के नीचे गाँव के जमींदार ठाकुर प्यारेलाल के आँगन में एक जलता हुआ दीया और थोड़ा पका चावल रखा गया था। पण्डा ने पहले तेल में हाथ डुबाकर फिर चावल में हाथ डुबाये और प्रत्येक सदस्य के माथे पर टीका लगा-कर आशीर्वाद दिया था। इसी समय ढोलिए मैदान में कूद पड़े थे, उनके पीछे दो-तीन आदमी गले में माँदर लटकाये खड़े थे। उन्होंने वहाँ थाप दी और यहाँ दलसिंह दुलारी का हाथ पकड़कर मैदान में कूद पड़ा। उस दिन रात-भर खूब करमा हुए। दुलारी का मन बेहद फूला था, उसने दिल खोलकर खूब करमा गाये। इसी नाच के बीच दलसिंह ने उसकी एड़ियों को दबाकर जब अपना प्रेम जताया था, तो वह पलाश के फूलों की तरह लाल हो गयी थी। तब सीना तानकर केचुए की तरह अपने शरीर को मोड़ते-मरोड़ते उसने इतने पैंतरे दिखाये, प्रेम-भरे गीतों के स्वरों में मगन होकर वह इस तरह लहरायी कि जिसने उस दिन उसका नाच देखा, उसकी आँखों में वह कांटा बनकर चुभ गयी थी। ठाकुर साहब का दिल-दिमाग भी, हिरनी की तरह उचटती दुलारी पर अटक गया था। अभी उनकी उमर ही क्या थी—बस कोई २५ बरस, कमल

---

१. दुमकुरिया, जिसे 'घोटुल' भी कहते हैं, कुमार युवक-युवतियों का रात्रि के लिए शयन-केन्द्र है। बस्तर, बिहार और उड़ीसा में ऐसे घर पाये जाते हैं।

२. फागुसेंगरा वसन्त के महीने में मनाया जानेवाला एक उत्सव है।

की तरह खिला चेहरा और कदम्ब की तरह छिटका यौवन! दुलारी उनकी नजरों से न बच सकी। दूसरे दिन किसी वहाने उसे बखरी में बुलाया गया और एकान्त में न जाने कितनी झूठी दिलासाएँ देकर उसका कौमार्य भंग कर दिया गया था। तव ठाकुर ने उसे सोने का एक हार भेंट किया था। उन्होंने अपने मस्तिष्क का भार तो हलका कर लिया, पर वह दुलारी के लिए मुसीबत बन गया था। वही दलसिंह जो एक दिन उसके पीछे अपनी जान भी देने को तैयार था, अब उसे देखते ही नाक-भौंह सिकोड़ लेता था। और सिकोड़े भी क्यों नहीं—दुलारी ने उसे धोखा जो दिया था।

दलसिंह ने ठुकरा दिया तो क्या? दुलारी के भाग्य ने साथ दिया और धरमू के साथ उसका 'भूलविहाव'[1] हो गया। विवाह के दो महीने वाद ही वह एक लड़की की माँ बन गयी थी। लड़की पाकर दुलारी खुश थी, उसका सूना घर किलकारियों से गूँज उठा था, परन्तु पुरुष का मन भला कब इस वहकावे में आ सकता है। धरमू को लगा कि इस लड़की के आते ही दुलारी का प्यार छिन गया है, वह वदल गयी है। एक रात उसे दमयन्ती की तरह अकेली छोड़कर वह भाग गया और फिर आज तक उसका पता नहीं चला। उसके बाद उसी घर में वह अपने देवर के साथ रहने लगी। डेढ़-दो वरस चैन से गुजरे। देवर ने उसका बड़ा ख्याल रखा, ऐसी सुन्दर पत्नी पाकर वह खुश था, लेकिन एक दिन अचानक वीड़ के पास काले साँप ने उसे डँस लिया। गाँव के गुनियाँ ने खूव झाड़-फूँक की, पर दुलारी के 'भाग खोटे' थे, वह न वच सका।

दुलारी ने पांच साल मुसीवत में काटे। बनी-मजूरी से जो मिलता उसी से वह किसी तरह अपना और अपनी वेटी का पेट भरती रही।

१. जब कोई कुमारी गर्भवती कन्या ऐसे व्यक्ति के साथ ब्याह करे, जिसका वह गर्भ नहीं है, तो ऐसे ब्याह को 'भूलविहाव' कहते हैं।

तभी बिल्ली के भाग्य छींका टूटा—दसरू की दूसरी मिहरिया क्या मरी, दुलारी के भाग्य पलट गये। दसरू के घर में तीन छोटे-छोटे बच्चे थे, उनकी देखभाल के लिए उसे एक औरत की जरूरत थी। यह जरूरत पूरी करने के लिए दुलारी को सहारा मिल गया। बच्चों से भरा-पूरा घर और नया-नया पति—दुलारी जैसे अपने अतीत को भूल गयी। पर नयी जिन्दगी की यह चमक थोड़े दिन तक ही चली। दसरू ने उसके और उसकी लड़की के साथ मनमाना दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया था। वह दसरू के सिर पर बैठकर खाती हो, सो बात नहीं। दिन-भर मजूरी करती थी और रात को बच्चों के बीच में सारी मिहनत भुलाने में लग जाती थी। इस पर भी दसरू किसी-न-किसी बहाने उसे मारता-पीटता और परेशान करता था। दुलारी अपने ऊपर होते अत्याचारों को तो सह लेती, पर जब दसरू उसकी भोली-भाली लड़की पर हाथ उठाता, उसे खाने को न देता और कभी-कभी रात को घसीटकर घर के बाहर कर देता, तो उसका कलेजा मुँह को आ जाता था। उसके तन-बदन में दवाँर लग जाती और उसका मातृत्व चीख उठता। आखिर खून, खून पर ही गिरता है। कितना भी हो वह पराये बाप की लड़की थी, दसरू को उसकी सुख-सुविधा की फिकर क्यों हो? जब कभी अपनी लड़की का पक्ष लेकर, धोखे से भी दुलारी अपना मुँह खोल देती, तो जैसे उस पर पहाड़ टूट पड़ता था।

वह भयानक रात! याद आते ही दुलारी का कलेजा थर्रा उठता है और हिचकी आ जाती है। कटकटाती और ठिठुरती ठण्ढ में आधी रात को बेतों की मार के बाद दस बरस की उस लड़की को घर के बाहर निकाल दिया गया था और वह भी उस समय जब गाँव के बाहर जंगल से रह-रहकर चीते की भयानक आवाज सुनायी दे रही थी। दुलारी का ममता-भरे हृदय को भला यह कैसे सहन कर सकता था। उसी कटकटाती रात को वह भी घर के बाहर चली गयी। इसके सिवाय उसके पास चारा ही क्या था। उसके सामने दो रास्ते थे—या तो अपनी कली-जैसी

लड़की को इस कच्ची उमर में ही अपने हाथ से मसल दे; क्योंकि उस
दिन दसरू का दानव प्रबल रूप लिये खड़ा था, अथवा दसरू का आसरा
छोड़ दे। दुलारी ने दूसरा रास्ता ही अपनाया और तभी से वह एकाकी
जीवन बिता रही है। ऐसे झूठे सौभाग्य से उसे वैधव्य पसन्द है और
इसीलिए उसका मन फिर किसी की छाया में आसरा ताकने का
नहीं हुआ।

जिन्दगी की इतनी लम्बी और इतनी ऊबड़-खावड़ तस्वीर देखकर
दुलारी चीख उठी। उसे लगा, जैसे कोई उसकी बेटी का गला घोंट रहा
है, वह काँपने लगी—"नहीं, यह नहीं होगा, मैं अपनी बेटी की जिन्दगी
को राख में नहीं मिला सकती।"

तव रात की काली चादर ने सारे गाँव को ढ़ँक लिया था। तारे-
जैसे टिमटिमाते दीपक, उसमें खो गये थे, ढोलक और टिमकी की
आवाज सो गयी थी। केवल गाँव के कुत्ते भौंक रहे थे और गेंवड़े से किसी
पागल स्यार के रह-रहकर चिल्लाने की दर्दभरी बेहूदी आवाज आ
रही थी।

दुलारी चुपचाप उठी और अपना डण्डा लेकर मालिक की बखरी में
जा पहुँची। यहाँ की एक-एक जगह उसकी पहचानी थी। ठाकुर साहब
जिस कमरे में सोते थे, वही कमरा बड़े सरकार का शयन-कक्ष था और
यह कमरा भी बैठक की बाजू में सड़क पर ही था। उसने दरवाजे की
साँकल खटखटायी। बड़ी देर तक किसी ने आवाज नहीं दी, लगभग
१५-२० मिनट के बाद बड़े सरकार की नींद खुली। लैम्प जलाकर जब
उन्होंने दरवाजा खोला, तो दुलारी को लाठी लिये बाहर खड़ा पाया।
गुस्से से उन्होंने नाक-भौंह सिकोड़ी, आखिर इतनी रात को उसे क्या
काम अटका था जो परेशान करने आयी थी, वे झल्ला पड़े—"तेरी इतनी
हिम्मत, इतनी रात को मुझे उठाने की जरूरत ?" दुलारी घबड़ायी थी,
उसी तरह अटपटे और अस्पष्ट शब्दों में बोली—"तुम्हारे पैर पड़ती हूँ

बाबू, सिर्फ दो मिनट—तुमसे बात करूँगी लेकिन बाहर, परछी में नहीं।"

"तो क्या मेरे घर में घुसेगी ?" बड़े सरकार का रोष अभी भी शान्त नहीं हुआ था।

"हाँ बाबू, भगवान् के लिए, मेरे लिए और अपने लिए, दो मिनट इतना भी कर लो।" दुलारी गिड़गिड़ायी। इस गिड़गिड़ाहट के सामने बड़े सरकार को झुकना पड़ा।

दोनों अन्दर गये, तो दुलारी ने कहा, "सरकार, आज तुम पर एक भारी मुसीबत आ पड़ी है, उसी से तुम्हें सचेत करने आयी हूँ।"

"मुसीबत और मुझ पर !" बड़े सरकार ने, ठहाका मारकर हँस दिया। इतने अधिक ऐश-आराम में पले बड़े सरकार मुसीबत क्या जानें, वह तो जैसे उनसे भय खाती और दूर भागती थी। फिर जवानी का ताजा खून उनकी रग-रग में दौड़ रहा था, एकाएक मुसीबत का पहाड़ भी टूट पड़े तो मुँह से 'उफ्' न निकले। अभी उन्होंने जिन्दगी ही क्या देखी थी और जो कुछ थोड़ी-बहुत देख पाये थे, उससे जिन्दगी का एक बेहद रंगीन और खुशनुमा रूप ही उनके सामने आया था। दुलारी की इस गम्भीर बात का उन पर कोई वजन नहीं पड़ा। कमरे में यहाँ-वहाँ घूमते हुए वे बोले, "अपनी मुसीबत देख दुलारी, हमारी चिन्ता तुझे क्यों ?"

"आज यही तो बताने आयी हूँ बाबू, काश, तुम जान पाते कि तुम्हारे लिए, मेरे मन में कितनी ममता है, कितना स्नेह है, लेकिन····।"

"लेकिन क्या ?"—बड़े सरकार गरजे, "हमारे पास पहेलियाँ बुझाने का समय नहीं है, तुझे क्या कहना है, जल्दी से कह दे। यदि पैसे चाहिए तो वह····।"

दुलारी ने सरकार के पैर पकड़ लिये। बोली, "मुझे पैसे नहीं चाहिए बाबू, मैं अपनी लड़की की इज्जत और तुम्हारे प्राणों की रक्षा के लिए आयी हूँ।"

सुनकर बड़े सरकार को जैसे काठ मार गया। उनकी आँखों के सामने नाले की रेत, भरे हुए मटर की फली-जैसी जेठिया की फूली देह और उसका टमाटर-जैसा खिला चेहरा झूलने लगा। प्रेम के जो दास्तान सरई के जंगलों, ज्वार और मक्का के खेतों तथा नदी-नालों के किनारे वीते थे, सब उनकी आँखों के सामने एक-एक कर झूलने लगे। सहसा क्रोध और घृणा-भरी कुछ रेखाएँ उनके चेहरे पर उभरीं। वे सोचने लगे, जेठिया रंग-रूप में खूबसूरत है तो क्या, है तो एक गरीब गोंड़ की लड़की, जो चाँदी के चन्द टुकड़ों के सामने अपनी इज्जत हर कहीं लुटा सकती है। वह एक ऐसे नाले से कम नहीं है, जो हर ढाल पर अपनी लगाम ढीली कर सकता है, भला उसकी भी कोई मर्यादा है। वे बोले, "तुम मुझ पर लांछन लगाने आयी हो दुलारी? तुम्हारी इतनी हिम्मत! मैं नहीं जानता था कि दादा के मरते ही तुमलोग हमारे सिर चढ़ जाओगे। मालगुजारी नहीं रही तो क्या हुआ, गाँव के एक-एक आदमी को आज भी जिन्दा जलवा सकता हूँ।" वे आवेश में काँप रहे थे और दुलारी नीचे सिर झुकाये कह रही थी, "जानती हूँ मालिक, अच्छी तरह जानती हूँ। फिर भी इतनी रात को अकेली आयी हूँ, तुम पर लांछन लगाने नहीं। यह तो मेरी ही गलती है सरकार, नहीं तो जहाँ पालने में ही ब्याह हो जाते हैं, वहाँ सोलह वरस की जवान लड़की अनब्याही क्यों फिरती? इसमें तुम्हारा क्या दोष, पर गाँववाले जब मानें तव न?"

"क्या मतलव"—बड़े सरकार ने गरजकर कहा, गाँववाले हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकते।"

"ठीक है हुजूर, मैं तो यह बताने आयी हूँ कि गाँव के सारे गोंड़ तुम्हारी जान लेने पर उतारू हैं। मुर्गे की बाँग होते ही वे तुम्हारी वखरी घेर लेंगे और तुम्हारे बाहर निकलते ही जान ले डालेंगे। शायद तुम नहीं जानते मालिक, आज जंगी भी खार खाये बैठा है।"

"क्या जंगी !....."बड़े सरकार के सामने उस हत्यारे का खूनी चेहरा झूलने लगा। पर वे विचलित नहीं हुए। हार मानने के लिए उनका मन तैयार नहीं था। बोले, "तुम जानती हो इसका अंजाम ? मैं गाँव के सारे गोंड़ों को गोली से उड़वा दूँगा, उनकी खालें खिचवा लूँगा।"

"यह भी जानती हूँ सरकार"—दुलारी ने बड़ी शान्ति से कहा, "लेकिन आज़ उन्होंने अपने तरकस भी खाली कर लिये हैं और दिन-भर से बाणों की नोकों को पैना कर उनमें माहुर[१] लगा रहे हैं। यह जिद्द छोड़ दो बाबू और जो कहती हूँ, सुन लो।"

बड़े सरकार तब भी कमरे में गर्व के साथ आगे-पीछे घूम रहे थे। अपनी मुद्रा कुछ नरम करते हुए बोले, "खैर, इतनी रात आयी हो, तो सुन लेता हूँ, बोलो, क्या कहना चाहती हो ?"

'सिर्फ यही कि जेठिया तुम्हारी बहन है। स्नेह की आँखों में शान्ति बढ़ जाती है, आज अपनी आँखों में यही स्नेह भरकर लायी हूँ। तुम क्या जानो, तुम्हारा और मेरा क्या सम्बन्ध है ! जिस मर्म को जिन्दगी-भर अपनी कोख में छिपाये रही, आज तुम्हें बताती हूँ"—दुलारी के गले में वेग था और आँखों में आँसुओं की अविरल धारा। बोली, "काश ! आज ठाकुर जिन्दा होते !.....जवानी अंधी होती है बेटा, इसमें किसी का दोष नहीं, एक समय ठाकुर की नजर भी मुझ पर उठी थी और...और, यही जेठिया उसका परिणाम है।"

दुलारी ने जमीन पर माथा टेक दिया और सिसक-सिसककर रोने लगी। बड़े सरकार का मन तब भी न पसीजा, सिंह-गर्जना के स्वर में बोले, "मेरे बाप पर इतना बड़ा लांछन, तेरी जीभ नहीं कट गयी दुलारी ! हम नहीं जानते थे कि गाँव के जो लोग हमारे टुकड़ों पर पले

---

१. माहुर एक प्रकार का जहर है जिसे आदिवासी अपने शिकारी बाणों की नोक में लगाते हैं। यह इतना जहरीला होता है कि इसके खून में स्पर्श मात्र से बड़े-से-बड़ा जानवर मर जाता है।

हैं, वे ही एक दिन हमारे ऊपर आँख उठायेंगे। तू अवला है, दुलारी कोई आदमी होता तो उसकी जवान निकाल लेता !···तू जा सकती है।"

"जाती हूँ बेटा, रहने नहीं आयी" कहती हुई दुलारी उठकर खड़ी हो गयी। पर, जाते-जाते बोली, "माँ के प्यार को पहचानो वावू, मुझे तुमसे कुछ लेना नहीं है, जो मुसीवत तुम पर आनेवाली है, उससे अगाह कराने आयी थी, सो करा दिया। अव तुम जानो। आदमी के किये होता क्या है, होगा वही जो परमात्मा चाहेगा। भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।" और बखरी के वाहर हो गयी। वड़े सरकार ने क्रोध और उपेक्षा से दरवाजे लगा दिये।

जब वे विस्तर पर गये, तो नींद नहीं आयी। उनकी आँखों के सामने कभी दुलारी का रोता-सिसकता चेहरा झूल रहा था, तो कभी जेठिया की नाजुक देह उनके शरीर में हलचल मचा देती थी। वे सोच रहे थे—इतनी रात को दुलारी का आना, वह भी कुछ लेने नहीं—जरूर उसकी वातें सत्य होंगी—पर मेरे पिता, नहीं, वे ऐसा नहीं कर सकते। मरते दम तक उन्होंने नैतिकता और सत्यता का पाठ पढ़ाया है। ईश्वर पर उनकी अटूट आस्था रही है।

उनकी बौद्धिकता अनेक तर्क-कुतर्कों में उलझी थी। कभी दुलारी पर उन्हें क्रोध आता, तो कभी उसकी सौम्य और सरल मूर्ति के सामने उनका हृदय विनत हो जाता। वे सोचते—हो कैसे नहीं सकता, पूजा-पाठ तो बुढ़ापे का ढोंग है। जैसे आज जेठिया की खूबसूरती ने मुझे छल लिया, क्या पता यही दादा पर वीती हो। आखिर औरत एक जादू है, न जाने कव किसे कहाँ उलझा ले। औरत एक काँटा है, जो उसे छुये उसी को वह चुभ जाय। आदमी का खून गिरता है और औरत उसे अपना सौभाग्य समझती है।

वड़े सरकार न जाने क्या-क्या सोच रहे थे कि मुर्गे ने वाँग दी। यह आवाज सुनते ही उनका मन सम्भावित आशंका से काँप उठा। उन्होंने अपनी दुनाली बंदूक निकाली और उसमें गोलियाँ भरने लगे।

तभी बाहर कोलाहल सुनायी दिया। वह क्रमशः तेज होता गया। उनके कमरे के चारों दरवाजों को नौकर जोर-जोर से खटखटा रहे थे—"मालिक, मालिक, गाँव के सारे-के-सारे गोंड़ धनुष-बाण और कुल्हाड़ी लेकर बखरी पर हमला करने आये हैं।"

हंगामा बढ़ता ही जा रहा था और बड़े सरकार—किंकर्तव्यविमूढ़ हाथ में वन्दूक लियें कमरे में यहाँ-वहाँ घूम रहे थे।

एकाएक न जाने क्या हुआ कि उन्होंने वंदूक से गोलियाँ निकाल दीं और खाली वन्दूक दीवाल के एक कोने में लटका कर, बरामदे का दरवाजा खोलकर बाहर निकल आये। ताजे खिले हुए गुलाब की तरह अपने हँसमुख चेहरे से उन्होंने सारे उत्तेजित गोड़ों का अभिवादन स्वीकार किया और बोले, "आज यह हंगामा कैसा? अरे—जंगी, तू तो बखरी का सच्चा सेवक था, जमानत पर तुझे इसी बखरी ने छुड़ाया है रे। फिर····?"

"फिर क्या?"—जंगी की आँखों से खून चू रहा था, "यह एहसान जताकर आज तुम नहीं बच सकते बाबू, तुमने गाँव की इज्जत पर हमला किया है, हमारी भी कुछ मान-मर्यादा है, हम गरीब हैं तो क्या हमने अपने सारे उसूल बेच खाये हैं। हमें भी आदमी समझो, तुम्हारी सार में बँधनेवाली गाय हम नहीं है। जेठिया की सुन्दरता यदि काँटा बनकर तुम्हारी आँखों में गड़ सकतीं है, तो उस काँटे का दर्द सहने की ताकत भी तुममें होंनी चाहिए। आदमी हम तुम्हें तब जानें, जब तुम उससे ब्याह करने को तैयार हो जाओ····।"

"ब्याह, जेठिया से ब्याह"—उसी सरल मुद्रा में हँसते हुए बड़े सरकार ने उत्तर दिया, "हम वह भी कर लेते जंगी, यदि हमारीं जात में भाई-बहनों का ब्याह होता।"

"भाई-बहन! इस नाटक से काम नहीं चलेगा सरकार।" कहते हुए जंगी ने जमीन पर जोर से लात मारी।

"चलेगा क्यों नहीं"—बड़े सरकार के कुछ कहने के पहले ही दुलारी ने भीड़ से रास्ता बनाते हुए आगे आकर कहा, "यदि दुनिया में भाई-बहन का मिलना पाप है तो निश्चय ही मालिक ने अपराध किया है। नहीं तो अपराधी तुम लोग हो, जो बिना जाने-बूझे अपना काम-धंधा छोड़कर यहाँ इकट्ठे हुए।"

सारा उत्तेजित समुदाय सन्न रह गया। गाँव के सबसे बूढ़े भोई ने तभी आगे आकर कहा, "दुलारी सच कहती है, ये दोनों भाई-बहन हैं।"

सुनते ही सनसनी फैल गयी। जंगी ने तो आगे बढ़कर देहरी पर माथा टेक दिया। बिरजू ने दुलारी को उठा लिया और कहा, "तूने गाँव की इज्जत बचा ली दुलारी, वरना मालिक भी जाते और गाँव भी तबाह हो जाता।"

बड़े सरकार परछी में खड़े मुसकरा रहे थे। उनकी मुसकान दूर से आती जेठिया की अल्हड़ और भोली हँसी के साथ होड़ लगा रही थी और पूरब की खिड़की खोलकर सूरज की सुनहली किरणें उस गाँव में सोना बरसाने लगी थीं। सूरज-किरण की छाँह में सूरजमुखी की तरह सारे चेहरे खिल उठे थे, आज गाँव के नाते बदल चुके थे।

●

ऊसर खेत

दन्तेवाड़ा की घाटियों पर पूरा खिला चाँद औंधे लटका हुआ था और उसकी चाँदनी में जंगल के सारे झाड़ चाँदी के पायजेव की तरह चमक रहे थे।

घाटी के नीचे एक नाला था। नाले की हल्की-सी किलकारी दूर-दूर तक गूंज उठती थी, मानो वह चाँद की गोद में जाने का हठ कर रहा था। घाटी के एक ओर से खेतों की सोंधी-सी हवा आ रही थी, तो दूसरी ओर से गरम, किन्तु समतल और सुन्दर जमीन से विचरता अल्हड़ पवन सी-सी कर रहा था। इनके बीच खड़ी सुन्दरी चारों ओर देख रही थी। हवा की लहरों से जब कभी सूखे पत्ते थोड़ा खड़खड़ा उठते, तो वह चौकन्ना हो जाती और अपने आँचल के छोर को सम्हाल लेती थी। उसे किसी जंगली जानवर का भय नहीं था, वह तो उज्जी पोदा का रास्ता हेर रही थी। उसने आने को तब कहा था, ज़ब चाँद पहाड़ी की बराबरी से आ जाय लेकिन, अब तक वह सिर पर चला गया था, और वह नहीं आया।

मुन्दरी की चिन्ता का अन्त नहीं था। एक तो इतनी रात गये इतने बड़े जंगल में अकेले आना, फिर गाँववालों का भय और अपने पति पिन्ना के व्यवहार की चिन्ता। उसने घाटी के छोर पर आकर देखा। सामने कबूतर के पर-जैसी सुफेद चाँदनी में नकलनार के सरसों के फूल-जैसे छोटे और सुन्दर मकान तैर रहे थे। गाँव में कहीं कोई हलचल नहीं, सिर्फ कुछ कुत्ते यहाँ-वहाँ भूँक-भूँककर अपने ही साथियों के साथ विद्रोह कर रहे थे। उसने देखा, परगना माझी का झाबुआ कुत्ता पड़ोस के पिद्दी कुत्तों पर रोब जमा रहा है। वे बेचारे भूँकते हैं पर जब झाबुआ उन पर चढ़ बैठता है, तो वे पूँछ दबाकर अपनी हार मान लेते हैं। मुन्दरी सोचती है, पशुओं में भी कितनी मर्यादा है। झाबुआ समरथ हैं, चाहे जिसे दबा

सकता है, पर शक्ति और सामर्थ्य होते हुए भी वह प्रकृति के बन्धनों को नहीं तोड़ पाता।

मुन्दरी को तभी पिन्ना भेज्जी की याद आ गयी। पिन्ना उसका पति है, आठ-नौ बरस पहले वह उसे अपना समर्पण कर चुकी है। जिस ढंग से उसने समर्पण किया, वह भी गाँव के इतिहास में निराला है। बीरा गाँव का माझी था। उसके पास धन-दौलत की क्या कमी। चार छोटे खेत, जिसमें चालीस मन कोदों और सोलह मन कुटकी होती थी। गाँव के किसी किसान की धरती ने इतना सोना नहीं उगला। मुन्दरी इसी बीरा की लड़की थी, अकेली। पिन्ना उसके यहाँ लमहादा था। आमतौर पर लमहादा होते हैं लड़की का कर्ज चुकाने के लिए, पर पिन्ना अपने बाप का कर्ज पटाने के लिए लमहादा[1] बना था। कहते हैं, पिन्ना भेज्जी के बाप ने चार-पाँच कोरी रुपये उधार ले लिये थे। वह रुपये न पटा सका और इसलिए पंचायत के निर्णय पर पचास बरस की उमर में बीरा के यहाँ भगेला[2] बनकर रहने लगा था। दो साल बाद वह मर गया था, तो उसके लड़के को भगेला बनना पड़ा। वह जिन्दगी-भर काम करेगा, पर अपने बाप का कर्ज कभी नहीं उतार सकेगा। उसका श्रम ब्याज-भर चुका सकेगा और क्या यही कम है।

पिन्ना तेल पी हुई लाठी की तरह चिकना, सुन्दर, सुडौल, लम्बे तन का, घुँघराले बाल और भूरे रंग का देहवाला सुन्दर जवान था। उसके व्यक्तित्व पर मोह जानेवाली मनचली छोकरियों की कमी नहीं थी। गाँव की हर गदराई लड़की अपने अरमानों की झोली उसके सामने पसारती, पर पिन्ना ने कभी किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा और उस

---

१. अनेक आदिमजातियों में प्रथा है, जो वर लड़की की कीमत नहीं चुका सकता, उसे कीमत पटाने के लिए पाँच से सात वर्ष तक लड़की के घर रहकर काम करना पड़ता है, इस अवधि में उसे लमहादा या लमसेना कहा जाता है।

२. जो आदमी कर्ज़ के बदले साहूकार के घर रहकर श्रम करता है—यह प्रथा केवल माडिया गोंड़ों में है।

गाँव की न जाने कितनी छोकरियाँ विफल प्रेम की धूप में मुरझा गयीं। वीरा ने एक दिन संझा को मुन्दरी को बुलाया था और कहा था,—"बेटी, साल-भर हो गये, जवान सूखी थान से चिपका है।"

"हाँ बापू"—मुन्दरी ने अनजाने ही जब कहा तो उसकी माँ उसे खींचकर भीतर ले गयी थी, बोली,—"मुन्दरी, तुझे क्या हो गया है। तेरे मन का पंछी अब तक क्यों नहीं जागा? अरी, सम्हल जा पगली, वरना तेरे प्रेम का हर कोई तिरस्कार करेगा। प्रेम की ठुकराई औरत वज्र बन जाती है। देखा नहीं दल्लो को? न जाने कितने जवान उस पर मरते थे, पर किसी ने उसे नहीं जगाया। उसका मन सोता रहा तो अन्त तक वह रोती रही और आज उसका मन पत्थर बन गया है। जानती है, वह गाँव की सोधन है, न जाने कितनों को खा चुकी है।"

मुन्दरी जैसे सब कुछ समझ गयी थी। उसने सिर हिलाया और बाहर देखा, द्वार के बाहर सार की बाजू में पिन्ना खड़ा था। छलाँग भरते वह दौड़ गयी और उस दिन से ही दोनों एक हो गये। दोनों का व्याह कर दिया गया। पर पिन्ना अब भी वीरा से घबड़ाता है। वह उसका दामाद है, पर आज भी जब कभी वीरा जोर से बोल देता है, वह काँप उठता है। वह जानता है कि वह रिश्ते में भले ही दामाद हो पर है अब भी उसका कर्जदार, उसका गुलाम, उसकी सेवा पिन्ना का कर्त्तव्य है। उससे मुकरेगा, तो भूमसरियादेवी की तेज आँखों का शिकार होगा।

पिन्ना और मुन्दरी की जिन्दगी ने धीरे-धीरे एक नयी करवट ली और साल-भर के भीतर ही उनका घर किलकारियों से गूँज उठा। किलकारियों की याद आते ही मुन्दरी का कलेजा हिल गया। वह घाटी की किनार से हट गयी। सारा जंगल अब भी नाले की कल-कल से भरा था। उसे लगा, जैसे उसके प्यारे बच्चे की किलकारियाँ चारों ओर गूँज रही हैं और जब उसका मातृत्व जागा, तो वह थर्रा उठी। उसने नीचे देखा। वहाँ पत्थरों के खम्भों के ढेर थे। देखकर उसके मन में हलचल

हो गयी। यहीं कहीं उसका नन्हा-सा बेटा उरसा गया (गाड़ा गया) होगा।

आठ साल हो गये यह सब हुए। फिर उसकी गोद अब तक नहीं भरी। वह सोचती है, आज वह होता तो भला इस पहाड़ी पर वह अकेली आती। उसकी हरी-भरी जिन्दगी उजाड़ होती ! पिन्ना मुंदरी को जी-भर प्यार करता था, पर उसके मरते ही उसकी नजर बदल गयी। अब वह अक्सर इस मेंड़, उस मेंड़ घूमा करता और मुंदरी को हर वक्त सौत लाने की धमकी देता है। मुंदरी का बाप बीरा भी उससे बिगड़ गया है। गाँव-भर में कहता रहता है कि अकेली लड़की, वह भी डाइन निकली। माँ जब कभी उससे मिलती है, कहती है, "बेटी, औरत एक खेत है। यदि खेत ऊसर हो जाय तो उसकी जगह नया खेत तैयार कर लेना चाहिए।" मुंदरी यह सुनकर माँ से लिपट जाती है और बिलख उठती है। कहती है, "तू भी यह कहती है माँ ?"

माँ कहती है, "मुंदरी, स्त्री का धरम यही है। यदि वह अपना धरम न धर सकी, तो स्त्री कहाँ रही ? वैसे तो हर स्त्री रेत का ढेर होती है पर उस ढेर को सींचकर हरी जगह बनाने में ही जीवन का रस है।"

मुंदरी सुनती है और एक कड़वा घूँट पीकर रह जाती है। क्या उसे मातृत्व की साध नहीं है ? क्या वह नहीं चाहती कि उसकी गोद भरे, उसके आँगन में भी सुन्दर-सुन्दर फूल खिलें और हर ओर से माँ ऽ ऽ ऽ ऽ की सुख-भरी किलकारी उसे सुनने को मिले ? उसका बायाँ आँचल अक्सर भारी हो जाता है और अपने-आप कसकने लगता है। तब वह वेदना से सिहर उठती है, पर वह करे क्या ? बाँझ होती तो क्या उसकी कोख से वह फूल-जैसा कोमल पिण्ड जनमता, जिसकी उसने अपने हाथ से हत्या कर दी।

हत्या की बात सोचते ही मुंदरी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

एक माँ ने अपने बेटे की हत्या कर दी। विज्जा पाण्डुम (अप्रैल के महीने में मनाया जानेवाला त्योहार) का वह मजमा, गाँव-भर के स्त्री-पुरुष, ढोल, मांदर और टिमकी बजानेवालों के साथ जुड़े थे। फसल के पहले देवता को खुश करना जरूरी है, इसीलिए इस नाच का आयोजन किया गया था। मुँदरी को सामने नंगे खड़े झाड़ नाचते-से दिखायी देने लगे और बरसों पहले की याद ताजी हो गयी। उसे लगा कि सारा नकलनार नाच में मगन है। वह भी उनके बीच है। नाचते-नाचते हुंगा ने उसके पैर दबा दिये। मुँदरी गुस्से से लाल हो गयी। उसे हुंगा के अनाड़ीपन पर तरस आया। वह यह भी नहीं जानता कि नाच के उस मजमें में पिन्ना भी शामिल है और वह यह देख लेता, तो उसका हरा-भरा चमन बरबाद हो जाता। पिन्ना उसकी खाल खींच लेता और उसे घर के बाहर निकाल देता। गाँव-भर में मुंदरी की हँसी होती। हुंगा उस दिन लाँदा में मस्त था। वह इतने से ही नहीं माना। नाच के बीच उसने मुँदरी से तम्बाकू माँगी (किसी स्त्री के प्रति बुरी नीयत प्रकट करने को तम्बाकू माँगना कहते हैं)। फिर क्या था, मुंदरी का चेहरा जलते अंगारों-जैसा तमतमा उठा। उसने नाच के बीच ही हुंगा के गाल पर कसकर दो थप्पड़ जड़ दिये। थप्पड़ के पड़ते ही वहाँ हंगामा मच गया। न जाने कितने किस्म की बातें हुईं। मुँदरी ने उन बातों पर ध्यान नहीं दिया और घर भाग गयी। हुंगा की औरत तब घर के बाहर बैठी थी। उसका आठ महीना का पेट था, इसलिए नाच के मजमे में वह भाग नहीं ले पायी थी। मुंदरी ने जाकर उससे उल्टी-सीधी बातें कहीं और बातों की लेन-देन में तनातनी बढ़ गयी। मुँदरी गुस्से में थी। बोली, "अरी, तू अपने मरद को सुख नहीं दे पाती, तो दो-चार सौत बुला ले। तू जाने काहे की बनी है। तेरे रहते, मेरा मरद परायी औरत से तम्बाकू माँगे।"

हुंगा की औरत का इसमें दोष नहीं था, पर मुंदरी अपने मन का मवाल उतारती भी कहाँ? हुंगा की औरत ने दो-चार कसमें खायीं।

यह भी कहा कि वह घर आयेगा तो वह उसकी खबर लेगी पर मुंदरी लड़ती रही। उसने आरोप लगाया कि उसकी ही गलती के कारण आज हुंगा ने ऐसा किया है। वह यह भी कह गयी कि हुंगा के इस काम में उसका भी हाथ है और दोनों मिलकर मुंदरी की सुखी जिन्दगी को उजाड़ना चाहते हैं। निश्चय ही तब मुंदरी अपना विवेक खो चुकी थी। वह यह भूल गयी थी कि औरत सब कुछ कर सकती है, पर अपने सुहाग पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं देख सकती।

बात काफी बढ़ गयी और तब जैसा कि उसके समाज में अब तक होता आया है, हुंगा की औरत ने अपने सवा साल के लड़के की गरदन मुंदरी के सामने तोड़ दी और अपने पवित्र होने का प्रमाण दिया। रात बीते जब सब घर आये और हुंगा ने यह देखा, तो पंचायत को खबर दी गयी। परगना माझी ने सब बातें सुनीं। पंचायत में गाँव के सिरहा (गुनाई करनेवाला), पेरमा (धार्मिक कृत्य करानेवाला) और हनगुण्डा (मृतक संस्कार करानेवाला) भी थे। सबने बात सुनकर मुंदरी को दोषी ठहराया। उनका यह न्याय वाजिब था। स्वयं मुंदरी ने अपना दोष स्वीकार कर लिया था। इसके बदले पिन्ना भेज्जी को भरी पंचायत के बीच अपने इकलौते लड़के की भी गरदन तोड़नी पड़ी।

मुंदरी अपने-आप चीख उठी। वह सोचती है, सचमुच वह डायन है। अपने लड़के को वह खा गयी और फिर आज तक वह दूसरा लड़का पैदा नहीं कर सकी। यदि उसका पति उससे आँखें तिरछी रखता है, तो उसमें उसका क्या दोष है?

सामने महुआ के झाड़ की एक डाल पर एक सनसनाता तीर आकर चुभ गया। मुंदरी ने देखा, तो भय से काँप उठी। यह क्या हुआ? क्या यहाँ कोई शिकारी है? यदि किसी ने देख लिया तो। वह सोच ही रही थी कि उज्जी पोदा ने पीछे से आकर उसकी कमर जोर से पकड़ ली। वह चीखकर रह गयी और जब दोनों की आँखें मिलीं, तो दोनों एक-दूसरे से लिपट गये और खिलखिलाकर हँस पड़े।

मुंदरी ने उज्जी की नाक दवायी, कहा, "कहाँ रहा रे ? कब से तेरे लिए तड़प रही हूँ।"

उज्जी बोला, "क्वाँरापन भी कितना विकट होता है, रानी। रात भर से कोसलनार में पंचायत जुड़ी है और पंचों के सामने एक मजेदार मामला आया है। मुझसे दो छोकरियाँ ब्याह रचाना चाहती हैं। मैंने कह दिया है कि मैं उनमें से एक से करूँगा, तो दोनों ओर खींचतान मची है।"

मुंदरी ने सुना तो धतूरे के फूल-जैसी अपनी बतीसी निकाल दी, "बड़ा भागवान है रे—"

"क्यों नहीं !" उज्जी ने मूँछों पर हाथ फेरा, "आखिर ऐसा पट्ठा किसे मिलेगा। तू भी—।"

मुंदरी ने उसके मुँह पर हाथ धर दिया—"धत्तरे की—।" और तभी उसकी चमकती आँखें अनजाने मुरझा गयीं। वह उज्जी से सटकर खड़ी हो गयी और सिसकने लगी। उज्जी ने उसके आँसू पोंछे, बोला, "क्या वात है री ?"

मुंदरी का मन भारी हो गया था। बोली, "वह लड़ाई दो क्वाँरी लड़कियों की है, सो वाजिव है। मैं तो पाप कर रही हूँ और इस पाप में तुझे भी भागीदार बना रही हूँ।"

"कहाँ का पाप ? कैसा पाप ? में उन दोनों का तमाशा देख रहा हूँ। ब्याह उनमें से किसी से नहीं करूँगा।" उज्जी बोला।

"क्या जनम-भर क्वाँरा रहेगा ?" पूछते हुए मुंदरी ने ऊपर आँखें उठाकर देखा, तो उज्जी की पलकों में उसे प्यार का अपार सोता झरता दिखायी दिया। उज्जी ने मुंदरी को और समेट लिया और एक गहरा चुम्बन लेते हुए वोला, "ऐसे फूल के सामने—।"

मुंदरी के मन पर जैसे किसी ने भारी पत्थर पटक दिया। उसे अपने को छुड़ाकर वह अलग हो गयी। सब कुछ होते हुए भी वह पिन्ना को जी-जान से चाहती हैं। पिन्ना भी तो उसे भरपूर प्यार देता है। वह

सोचती है कि यदि वह प्यार न करता होता, तो न जाने कब का सौत ले आता। आदमी तो जंगल-जैसा आजाद है। औरत उसका कर ही क्या सकती है ? इसी समय उसे अपने पति की वह वात याद आ गयी—"छः माह की मुहलत देता हूँ। माँ वनने के लच्छन न दिखे, तो सौत ले आऊँगा और तुझे उसकी दासी बनकर रहना होगा।"

मुन्दरी को पुरा-पड़ोस की दासियों की याद आ गयी और साथ ही उसमें फिर माँ बनने की लालसा भी जाग उठी। वह सोचने लगी—माँ का कहना ठीक है, दुनिया में उसी स्त्री का जीवन सार्थक है, जो माँ है। इसके वाहर जीवन एक छल है, एक पाप है। उसमें ववूल और करौंदे के काँटों की तरह चुभने के सिवाय और कुछ नहीं है।

मुन्दरी के मुँह से एकाएक निकल गया—"नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं माँ वनूंगी।"

उज्जी चौंक उठा। बोला, "क्या नहीं होगा मुन्दरी।"

मुंदरी लजा गयी। ये शब्द तो अकस्मात् उसके मुंह से निकल गये थे। वोली, "कुछ नहीं रे।"

दोनों बड़ादेव की मढिया के पास गये। उज्जी पोदा ने एक मुर्गी की गरदन तोड़कर उसका खून बड़ादेव को चढ़ाया। फिर एक बूँद खुद पीकर, उसने दूसरी वूंद मुन्दरी के मुंह में डाल दी। खून को मुश्किल से गले के नीचे उतारते हुए मुन्दरी ने कहा, "उज्जी, तू उनमें से एक से व्याह कर ले। तुझे मेरी कसम है।"

उज्जी ने मुन्दरी को खींचकर अपनी छाती से लगाते हुए कहा—"नहीं मुन्दरी, यह नहीं होगा। मैंने तुझे प्यार किया है और तुझे ही अपनी रानी बनाऊँगा। मैं तेरे घरवाले को मुँहमाँगा हरजाना दे दूँगा।"

"नहीं उज्जी, यह नहीं हो सकता"—मुन्दरी ने आवेग में कहा, "बुरा न मान तो कहूँ, मैंने तुझे केवल अपने मातृत्व की भूख मिटाने के

लिए यहाँ बुलाया है। मैं अपने प्यारे पिन्ना के साथ छल नहीं कर सकती। पर मैं पिन्ना को यह भी बता देना चाहती हूँ कि दोष उसमें है, मैं पूरी औरत हूँ। मेरा स्त्रीत्व नष्ट नहीं हुआ है।" उज्जी ने सुना तो दंग रह गया। उसने मुन्दरी की ओर देखा, उसकी आँखों में नन्हें बच्चे-जैसा भोलापन और अपराध करने के लिए विवश अपराधी की भाँति दयनीयता थी। मुन्दरी ने झुककर अपना सिर उसके पैरों पर रख दिया और अपने गर्म तथा खारे आँसुओं से वह उन्हें धोने लगी। तब चाँद पहाड़ी की दूसरी ओर जा चुका था और उसकी कपास जैसी सुफेदी फीकी पड़ने लगी थी।

●

एक प्यास पहेली

एक आवाज उठती है—'वीर बोल हक्कड़े'! फिर कई आवाजें शामिल हो जाती हैं और दल-का-दल आगे बढ़ जाता है। एक नौजवान तेलपिये डंडे की तरह चिकना और काला, दोनों मुट्ठियों में मोरपंखा थामे आगे बढ़ता जाता है। उसकी चाल अटपटी है। उसकी छाती में कपड़े की दो रस्सियाँ बँधी हैं, जिन्हें पीछे दो आदमी थामे हैं। उस पर नियंत्रण आवश्यक है। आज वह, वह नहीं है जो है। उस पर काल्हादेव चढ़ा है और सब उसे ही मनाने जा रहे हैं।

सबेरे-सबेरे गाँव के हर घर सुपारी घुमा दी गयी थी और सारा गाँव जान गया था कि आज काल्हादेव की सवारी निकलेगी। गाँव का सबसे नौजवान युवक जंतरी इस साल दूल्हे की तरह सजाया गया था—पैरों में महावर, कमर में तूस का पायजामा, गले में हार और सिर पर सफेद पगड़ी। गीतों की धुनों और ढोल-मांदर के सुरों के साथ गाँव-का-गाँव जाग उठा।

गेंवड़े में काल्हादेव[1] है। उसके पास साज के दो खम्भों से मण्डप बनाया गया है। सब-के-सब वहीं जा रहे हैं। हर औरत और मरद के चेहरे पर मुसकान है। हर किसी के ओठ खुलते और बन्द होते हैं। जवान छोकरियाँ अपने-आप उचटती हैं। जंतरी से उन्हें प्यार हो या न हो, उसके आज के रूप-रंग से भला कौन प्यार न करेगा। हर कोई उसके पास जाना चाहती है—मनिआरो, टिटरी, चँदिया, जंगली, रूपी और कौन नहीं?

दल गेंवड़े के पास पहुँचा, तो काल्हादेव के सामने जंतरी ने माथा टेक दिया और फिर आसमान की ओर आँखें उठाकर एक ही उचाट में

---

१. चैगाओं का प्रमुख देवता।

चिकने साज के लट्ठे पर चढ़ गया । अब वह आसमान में था । साथी उसे घेरे खड़े थे । दोनों 'सबासे' अभी भी रस्सी पकड़े थे । जंतरी मण्डप पर लेट गया, तो उसे घुमाया गया—सात आदिवार । देवार[1] ने काल्हादेव को हल्दी लगायी । अकरी[2] कुदई छोड़ी और जैसे ही धूप दी कि जंतरी की मुट्ठी खुल गयी । उसके हाथ के मोरपंख जमीन पर आ गिरे और इसके साथ ही जंतरी, जंतरी रह गया । मण्डप से उचट कर वह नीचे आया, तो उसे लड़के-लड़कियों ने घेर लिया, जैसे हर कोई उससे सट जाना चाहती है । देवार ने दो बकरे देवता के सामने बाँध रखे थे । एक-एक करके उनके गले धड़ से अलग हुए, तो सब-के-सब नाचने लगे । गीतों ने उनका साथ दिया । गीत और मांदर की धुमक ने वहाँ जीवन का रस बहा दिया । ढोल और टिमकी के साथ सींगों का घर्राता स्वर—सीं सीं सीं ऽऽऽ !!!

सुनकर पेड़, पौधे और नदी-नाले तक झूमने लगे । हर साल यह परब आता है । हर साल गाँव का एक युवक काल्हादेव बनता है । इस साल पहली बार जंतरी को यह पद मिला था । जंतरी गाँव का हीरा है । हर लड़के पर वह शासन तो करता ही है, हर लड़की भी मानो उसकी एक नजर की प्यासी है । इसी से गाँव के अधेड़ और बुड्ढे भी उससे डरते हैं । जंतरी गाँव की सतह पर मनमाना तैरता है—निर्भय, निरापद ।

परब आया और चला गया । परब रोज ही आते और रोज ही चले जाते हैं । उनकी एक टीस कभी मन में रह जाती है और कभी काँटे की तरह चुभ जाती है । जंतरी के करतब चँदिया के मन को घायल कर गये । वह उस दिन से घायल हिरनी की तरह तड़पने लगी । जंतरी के प्रति उसके मन में प्यार बढ़ गया । अब वह पुन्ना से भी ज्यादा उसकी फिकर करने लगी । पुन्ना रोज सबेरे उठता है और जंगल चला जाता

---

१. गुनियाँ । २. अधकुटी ।

है। जब साँझ उतर आती है, तब वह थका-माँदा वापस लौटता है। चालीस बरस के इस आदमी ने अपनी इतनी बड़ी जिन्दगी सिर्फ कांटों पर बितायी है। चँदिया उसकी चौथी औरत है। पहिली तीन आयीं और चली गयीं। सब एक के बाद एक काई की तरह पुन्ना को छोड़ गयीं। सो क्यों, कोई नहीं जानता। पुन्ना पुरुष, है। पूरा पुरुष, हट्टा-कट्टा जवान, जंगल में निर्भय घूमता है। दो बार जंगली सुअर के दाँत उखाड़ चुका है और दो शेरों को भी उसने पछाड़ा हैं। जंगल के अफसर उसे 'जंगल का राजा' कहते हैं, परन्तु न जाने क्यों, इन तीनों में से कोई भी रानी उसे अपने 'मन का राजा' मानने को तैयार नहीं हुई। पहली दो बरस रही। दो लड़के उसने पैदा किये—एक दो महीने जिन्दा रहा, दूसरा वह अपने साथ ले गयी।

कहते हैं करईपानी के किसी नौजवान पर उसका मन आ गया था। दूसरी पाँच बरस रही और एक लड़के को जन्म देकर एक हाट से ही गायब हो गयी। कौन सौदागर उसे खरीद ले गया, आज तक पता नहीं चला। उसकी निशानी है यही जंतरी, इकलौता बेटा, जो आज भी पुन्ना के साथ रहता है और अब बराबरी का हो गया है। तीसरी मिहरिया की बात न की जाय, वही अच्छा है। पुन्ना जब उसके बारे में सोचता है, तो अपने-आप छटपटाने लगता है। वह तो उसकी हत्या करने को तैयार हो गयी थी। उस रात पुन्ना की आँखें एकाएक न खुलतीं, तो गँड़ासा उसके पेट में होता। पुन्ना ने उठकर गँड़ासा छीन लिया था और जैसे ही उस पर चलाना चाहा था कि दल्लू कूद पड़ा था—एक सोलह बरस का बैंगा छोकरा। पुन्ना समझदार था। जब उसकी मिहरिया ही उसकी नहीं, तो छोकरे से क्या लड़े! उसने लात मारकर दोनों को बाहर कर दिया। फिर न पंचायत भरायी और न दल्लू से उसने हरजाना माँगा।

चौरादार के बाजार में उसे चँदिया मिली। बीस बरस की छोकरी, शरीर का एक-एक अंग गुदने से गुदा। राई-भर की जगह नहीं। गले के नीचे गुदने की हँसली उसके अधगोरे शरीर पर दूर से चमकती। उसकी

माँ जनम देकर मर गयी थी और बाप शेर के पेट में सो चुका था। कोई और था नहीं। गाँव का एक छोकरा उसके चक्कर काटता था। उसे वह चाहती नहीं थी। सो क्यों? शायद वह भी नहीं जानती। प्यार को भला किसने पहचाना है? कब किस पर आ जाय, वह भी नहीं जानता। प्यार के पंख विचित्र होते हैं। वे कभी बेतरतीब हवा में उड़ते हैं और कभी चाह कर भी नहीं उड़ सकते। चँदिया का मन भी कुछ इसी तरह पुन्ना पर आ गया। शायद इसलिए भी कि वह उस मनहूस छोकरे के पंजे से बचना चाहती थी। वरना बीस बरस की छोकरी चालीस बरस के आदमी से भला क्यों मन रमाये?

चँदिया आयी और उसने आते ही पुन्ना के घर को हरा-भरा कर दिया। पुन्ना की सूखी जिंदगी में फूल खिल गये। जंतरी को भी सहारा मिला। उसे माँ मिल गयी थी—सौतेली, पर चँदिया ने कभी उसे सताया नहीं, थकाया नहीं। दोनों उमर में बराबर थे। दोनों में लगन थी। दोनों के मन एक हो गये। माँ-बेटे का अन्तर जब मिट गया, तब सौतेली माँ की ताकत कहाँ रही? चँदिया उसे अपने पूरे मन के साथ प्यार करने लगी। पुन्ना को यह देखकर बेहद खुशी हुई। उसने बड़ेदेव के सामने माथा टेका और कुल की देवी की बंदना पूरी की।

पुन्ना और चँदिया जब रात के अँधेरे में मिलते तो उनकी चर्चा में जंतरी का नाम ही सबसे ज्यादा होता। पुन्ना तब कहता, "मेरे भाग हैं चँदी, तेरा जैसा मन मिल गया मुझे, वरना........।"

चँदिया उसके मुँह पर अपनी हथेली रख देती थी और उसके कलेजे से कहती, और सिमिट जाती। "मेरे राजा, तुम तो मेरी जिंदगी हो। जंतरी मेरा बेटा है और उससे ज्यादा मेरा साथी।"

पुन्ना खुशी से उसे अपनी बाहुओं में समेट लेता, तो उसके घने काले लच्छेदार बाल उसके सारे चेहरे को ढँक लेते। तब वह पीछे मुड़कर बाहर परछी की ओर एक बार देख लेती, जहाँ जंतरी सोया हुआ रहता। रात में खुर्राटे भरती पर चँदिया की नींद को खटका लगा

रहता। सुन्दर और जवान जंतरी अकेला परछी में पड़ा है! गाँव में लड़कियों की कमी तो है नहीं। कोई रात के अँधेरे में आकर उसके इस साथी को न लूट ले!

रात बीतती। चँदिया का मोइदो[1] तव अपने घर के वाहर जंगलों में पहुँच चुका होता। वह जंतरी को उठाती। कभी उसके सिरहाने वैठकर उसके सिर की उस जगह पर अँगुलियाँ फिराती जहाँ वाल नहीं थे। अस्तुरे से जहाँ के बाल साफ कर दिये गये थे। काले वालों के चारों तरफ एक इंच की यह पट्टी नदी के पाट-जैसी सपाट और सुन्दर दिखती थी। बीच के बाल टापू-जैसे लुभावने लगते थे। उनमें खुँसी कंघी और काँटे मानो उस छोटे-से साम्राज्य के विजय-चिह्न थे। हाँ, चँदिया उसके वालों को सहलाती। उनमें गाँठ बाँधकर उन्हें वायें कान पर टिका देती। जंतरी को यह फैशन बेहद पसंद है। यह जवानी का फैशन है। और इसी बीच जब जंतरी आँखें खोलता, तो उसकी बिल्ली की तरह तेज और चमकीली आँखें चँदिया को चकाचौंध कर देतीं। वह मुँह पलटाकर खड़ी हो जाती। कहती, "उठ रे, क्या आज पहाड़ नहीं चलना?"

"ऊँऽ ऊँऽऽ ऊँऽऽ", जंतरी हाथ खींच लेता।

अरे उठ रे,—प्यार-भरी मनुहारों से वह उसके हाथ पकड़ लेती। तव वह एक अँगड़ाई लेता और उठकर उसकी छाती में लिपट जाता। चँदिया की सारी देह काँप उठती। उसके रोयें-रोयें में एक अजीव सरसराइट दौड़ जाती। उसका मन इस धरती को छोड़ देता।

मधुप गुनगुनाये। कलियाँ संगीत के मतवालेपन में झूमने लगीं। उनका आँचल अनजाने खिसक गया। पर यह शायद किसी ने नहीं देखा। न जाने कब से ये इसी तरह के खेल चुपके-चुपके से खेलती चली आ रही हैं। चँदिया आज यह देख रही थी। उसके साथ जंतरी था। दोनों इस बियाबान जंगल में चार तोड़ने आये थे। बियाबान साँय-साँय करता

१. पति।

जंगल ! वृक्षों से उसका अंग-अंग भरा था—वृक्ष जो कुछ झुके हैं, कुछ झूमे हैं, कुछ बैठे हैं और कुछ घूमे हैं। पास ही एक झरना बहता है। उसके तराने हवा की लहरों में सब ओर तैरकर एक मादक संगीत बिखेर देते हैं। कभी बुलबुल बोलती है और कभी कोयल कुहुक उठती है। एक बाँसुरी-सी सारे सुनसान जंगल में बज उठती है, वह न जाने किस मान-भरी राधा को रास के लिए आमंत्रित करती है।

"जंतरी।"

"हाँ।"

"वह देख, सब कुछ कितना सुहावना है ! कितना अच्छा !"

"हाँ बहुत अच्छा ! चारों[1] से झाड़ लदा है—सिर से पैर तक ! चलो वहीं चलें।"

जंतरी उस ओर दौड़ गया तो चँदिया को अच्छा न लगा, पर वह काफी आगे निकल गया था। चँदिया को भी दौड़ना पड़ा। जंतरी खुश था। एक ही झाड़ में मनमाने चार लगे थे। इसी झाड़ को दिन-भर तोड़े तो खाली न हो। चँदिया सोचती थी—यह धन्धा तो रोज का है। जिन्दगी में चैन कहाँ है ? कभी तो पल-दो-पल बैठकर बातें भी कर ली जायँ। पुन्ना से उसे यही शिकायत है। वह कभी उसके साथ बैठकर बात नहीं करता। वह समझती है, पुन्ना बूढ़ा हो गया है। उसे अपने काम से मतलब। जंगल के अफसर आते हैं, उनके साथ वह हँसता चला जाता है। वह क्या करे, गाँव-भर में वही सबसे अच्छा शिकारी माना जाता है। जंगल का हर अफसर उसे साथ रखना चाहता है। वह नाहीं करे भी तो कैसे ? एक तो वे अफसर हैं—जंगल के मालिक। दूसरे उसे भी तो शिकार में मजा आता है। जब वह किसी शेर या सुअर को चित कर देता है, तो अपने हाथों में लगे खून को बड़े स्वाद के साथ अपनी जीभ से चाटता है और गर्व-भरी आँखों से अफसरों की ओर

१. एक प्रकार का जंगली फल, जिससे चिरौंजी निकलती है।

देखता है। बड़े-से-बड़े अफसरों ने उसकी पीठ ठोंकी है और उसे मुँहमाँगा इनाम दिया है।

चँदिया उसकी बहादुरी को जानती है। गाँव-भर उसके किस्से कहता है, पर वह फिर भी औरत है। वह औरत, जिसे केवल प्यार चाहिए। जो केवल प्यार की बातें सुनकर अपनी भूख-प्यास भुला सकती है। वह जिन्दगी-भर प्यार के किस्से सुनती रहेगी, कभी ऊबेगी नहीं। उमर का बन्धन उसे नहीं सतायेगा। पर आदमी, वह भला क्या करे ? जानकर भी काश कर पाये ! फिर पुन्ना, वह तो आदमी से ज्यादा मशीन है।

"जतरी ?"

"हाँ।"

"मुझे प्यास लगी है।"

"वह रहा नरवा। मैं यहाँ से देख रहा हूँ, तू पानी पी आ।"

चँदिया बिगड़ गयी, "मैं अकेली जाऊँ ? क्यों न ?"

चँदिया की नजरों में गूलर घूम गया। जंतरी खड़ा न रह सका। उसने दौड़कर हाथ पकड़ लिये, "बुरा मान गयी, चल मैं पानी पिला देता हूँ।"

दोनों एक साथ खिलखिला उठे।

नरवा के तीर जाकर चँदिया ने पानी पिया। कित्ता पानी पिया, यह भी पूछने की बात है ? पानी पीकर अपना मुँह धोया और आकर रेत में बैठ गयी। वहीं जंतरी बैठा था। बोली, "थक गयी हूँ, जंतरी ! जरा आराम कर लूं !"

जंतरी चुप रह गया, पर उसकी आँखें उठ गयी थीं। चँदिया उसकी गोद में सिर रखकर रेत पर सीधी लेट रही। तब सूरज सीधा सिर पर और उसकी किरणें चँदिया की देह पर तीर की तरह पड़ रही थीं। चँदिया को उन किरणों के तीखेपन का जरा भी भान नहीं था। जंतरी उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ कह रहा था, "आज दादा फिर शिकार पर जानेवाला है।"

"कोई नयी वात है?" चँदिया ने प्रश्नसूचक मुँह वना लिया।

"नहीं तो, पर आज जंगल का अफसर उस शेरनी का शिकार करने-वाला है, जिसने पिछले चार महीनों में आठ आदमी खा डाले हैं। नर-भक्षी शेरनी खाल तक खींच लेती है। दादा को वहाँ नहीं जाना चाहिए।"

"हूँ—चँदिया ने कुछ कहा नहीं। वह आँखें वन्द कर चुप हो गयी। जंतरी समझ गया था, चँदिया भर उठी है। वह सहज ही बोल गया, "तू तो व्यर्थ चिंता करती है, मैं क्या तेरा साथी नहीं?"

चँदिया चौंककर एकदम उठ बैठी और जंतरी के गले में हाथ डालकर झूले की तरह झूल गयी। जंतरी हक्का-बक्का खड़ा देखता रहा। चँदिया बोली, "मेरे अच्छे जंतरी, तुझ पर ही तो भरोसा है।"

"भरोसा रख माँ, पूरा भरोसा।"

"हाँ रे मेरे अच्छे साथी, जंतरी। जब तू माँ कहता है तो मेरे कान ही मुझे काटने लगते हैं। सोचने लगती हूँ—बूढ़ी हो गयी हूँ, मरघट पास है और यम की वैतरनी पार उतरना मुश्किल हो रहा है।"

जंतरी ने झटके के साथ हाथ छुड़ा लिया, "गलत कहा? पर सच है, तू मेरी माँ है। बहुत समय के बाद मुझे माँ मिली है, इसलिए तुझसे बेहद प्यार हो गया है। तुझे जो अच्छा लगे, वही समझ। बेटा नहीं तो साथी ही सही।"

अब दोनों नरवा की घाटी पर थे—एक ओर गहरा गड्ढा था, दूसरी ओर चढ़ाई चढ़ने में पैरों को सहारा चाहिए, जरा-सा वह फिसला कि खैर नहीं। जिंदगी की चढ़ाई भी कुछ ऐसी ही है।

एक दल आया और उसने वह भारी शेरनी जंतरी के घर के सामने पटक दी। वह चित्त-शून्य पड़ी थी और उसका मुँह फटा था। दाँत खून से लाल थे और आँखें फट गयी थीं। उसके खुले मुँह और फटी आँखों से मानो पुन्ना का नाम बाहर निकल रहा था। इस दिलेर बैंगा ने खूँखार शेरनी के दाँत उखाड़ दिये थे। जब शिकारी अफसर पर घायल शेरनी टूट पड़ी थी, तो उसका सारा साहस हवा हो गया था। यदि पुन्ना तब न दौड़ता, तो

यहाँ अफसर की लाश आती। पुन्ना ने शेरनी की गर्दन पकड़ ली और घण्टों की लड़ाई के बाद माहुर-भरे तीर को उसके मुँह में घुसेड़कर उसका काम तमाम कर दिया !

चँदिया वेहद खुश हुई। जन्तरी ने अपनी वाजुओं को ठोंका। दोनों के चेहरे फूल उठे। परन्तु, यह क्या ? शिकारी-दल प्रसन्न नहीं था। क्यों ? आखिर क्यों ? सब चुप क्यों हैं ? जन्तरी ने सिपाही को झकझोर डाला। तभी एक डोली उतरी। एक खटिया पर चारों तरफ से परदा पड़ा था। चँदिया ने देखा। जन्तरी आगे वढ़कर उसें देखना चाहता था, पर तभी डोली खोल दी गयी। उसमें खून से लथपथ दिलेर पुन्ना सोता हुआ मिला। चँदिया उस पर टूट पड़ी। अफसर ने उसे पकड़कर अलग कर दिया, चँदिया का रोदन हर आदमी के कलेजे में तीर की तरह चुभ गया। जन्तरी आँखें फाड़े देखता रहा। उसके आँसू सूख गये थे। अफसर कुछ देर खड़ा रहा। फिर उसने साथियों को इशारा किया। पुन्ना का शव शेरनी की बाजू में लिटा दिया गया। अफसर ने कैमरा खोला, 'क्लिक, क्लिक।' दो-तीन चित्र उतारे और सबको समझाकर अपने साथियों सहित चला गया।

चँदिया कब तक कलपती ? मौत पर भला किसका वश है ? जाने-वाला चला गया। हंसा उड़ जाय तो देह मिट्टी है। हीतुरढोल[1] पीटा गया। वहाँ सारा गाँव जमा हो गया और पुन्ना को गाँव के बाहर लकड़ियों के वीच रखकर जला दिया गया। जन्तरी ने उसे आग दी। जिसका उसने जिन्दगी-भर प्यार पाया, उसी को अपने हाथ से उसने राख वना दिया।

रात आयी और चँदिया सो न सकी। जन्तरी की भी यही स्थिति थी। दोनों का एक विश्वस्त सहारा चला गया था।

"मैंने कहा था, एक दिन शिकार उसकी जान लेकर जायगा।" चँदिया वोली।

---

१. मरने पर वजाया जानेवाला वाजा।

जन्तरी ने कोई जवाव नहीं दिया। घण्टे-पर-घण्टे बीतने लगे। चँदिया की वेचैनी वढ़ती गयी। बोली, "यहाँ तो अकेले वड़ा डर लगता है, रे।"

"तो यहाँ आ जा।"

वह उठकर वरामदे में आ गयी। जन्तरी उठ बैठा और बाहर टहलने लगा।

"तू कव तक टहलेगा?"

जन्तरी ने आसमान की ओर देखा, रात शायद अभी आधी ही बीती थी। वह चुपचाप भीतर आ गया और चँदिया के पास बैठ गया। चँदिया काँप रही थी। जन्तरी ने उसके सिर पर हाथ फेरा तो वह उससे लिपट गयी और विलख-विलखकर रोने लगी, जैसे किसी ने सहारे की रस्सी एक साथ तोड़ दी है, "अब मेरा क्या होगा जन्ती?"

जन्तरी को दुःख की उस असीम काली चादर के वीच भी एक विचित्र प्रकार की अनुभूति हुई। उसके शरीर का तार-तार काँप उठा। चँदिया के स्पर्श ने इसके पहले कभी उसे इतनी बेचैनी नहीं दी थी। जन्तरी ने उसे अपनी भुजाओं में कसकर एक वार छाती से लगाया और फिर तुरन्त अलग हो गया। चँदिया चुप हो गयी थी और अपनी पथराई आँखों से उसे देख रही थी। इसी तरह बेचैन रात ढल गयी और भुनसारे की हवा बहने लगी। जन्तरी नरवे की तरफ चला गया।

समय के पङ्ख उड़ते गये। पुन्ना को मरे दस दिन हो गये। मरनेवाले के जीव को स्वर्ग में शान्ति देना जरूरी है। इसलिए जातिवालों को खिलाया। लाँदा[1] ढाली गयी और नाच-गाना हुआ। कोई किसी का शोक भला क्या जाने? सव नाच-गाने में ऐसे खो गये, जैसे कोई बड़े हर्ष की वेला हो। जन्तरी के पैर नाच के मैदान में नहीं उठ सके। चँदिया मैदान में उतरी। कुछ देर उसने नाचा, पर अकेलेपन ने उसके पोर-पोर वहा दिये। वह अधूरा नाच छोड़कर बाहर आ गयी।

---

१. चावल की शराब।

आधी रात गये सब अपने-अपने घर चले गये। रोज की तरह आज की रात भी भयानक थी। चँदिया ने आँख लगायी तो सपने की दुनिया में चली गयी। पुन्ना उसके पास आया था। उसने चँदिया के सिर पर हाथ फेरा, "मेरी साइगुती, जिन्दगी की इतनी लम्बीं डगर तू अकेले कैसे काटेगी ? देख, जंतरी को तो देख, वह मेरी ही तों छाया हैं"

"हाँ, चँदिया बोली।

"तो फिर....पुन्ना जाने क्या हुआ, बाहर खटका हुआ तो चँदिया का सपना गायब हो गया। वह बाहर आ गयी। चारों तरफ देखा। शायद वह चीता था। उसके आते ही वह भाग गया। चँदिया को उस पर गुस्सा आया। सपने का सुख भी इन्हें सहन नहीं! ऐसे छन आते कब हैं! जंतरी परछी में करवटें बदलता रहा। चँदिया पुन्ना की बातों की थाह लेने लगी। वह ठीक कहता है....। उसके पैर अनायास वहाँ पहुँच गये। उसने जंतरी के सिर पर हाथ फेरती हुई बोली; "हम कब तक इस तरह चिंता करते रहेंगे, जंती। वह तो चला ही गया।"

"हाँ, जंतरी ने चँदिया की बाजुओं में अपना हाथ रखा, तो उसे लगा, जैसे उसने कटार की धार पर हाथ रख दिया है। बोला, "तू बाजू में फट्टा बिछा ले और सो रह।"

"नहीं रे," चँदिया बोली, "मैंने एक सपना देखा है। वह आया था। कहता था, कब तक तुम दोनों अलग...।"

एक सनसनाता तीर आया और जंतरी के कलेजे से लग गया। उसने अपनी फटी आँखों से देखा। चँदिया की आँखें उस अँधेरे में भी चमक रही हैं। उनमें जैसे पानी उतर आया था।

"हाँ जंतरी, तूने ही तो कहा था, मुझ पर भरोसा रख, मैं जो हूँ.... कहा था न ?"

जंतरी पथराई आँखों से चुप देखता रहा।

"मेरा और कौन बैठा है, जंती । क्या ये भयावनी, काटती रातें ही मेरी वाजुओं की छाया बनकर रहेंगी ? मैंने तुझे कब देखा था, तू भूल गया होगा।....तेलपिये डंडे की तरह तेरा मुस्तैद रूप ! काल्हादेव गाँव के किस जवान पर इस तरह आया ! तेरी छवि बिसरती नहीं जंती, बिल्कुल नहीं ! एक गहरा काँटा चुभा है और आज भी उसका दर्द मेरे पूरे शरीर को साल रहा है। हाँ, जंतरी.... ।"

जंतरी ने देखा चँदिया की वँधी सफेद आँखें मकई के खेत में लालटेन की तरह चमक रही हैं। कोशिश करने पर भी वह अपनी नजर वहाँ से उठा नहीं सका।

●

सिरदार

सागौन, महुआ, गोटमरे और छतनार इमली के झाड़ों से छाया गाड़ादान नीचे उतर कर एक नाले पर समाप्त हो गया। नाले को पार करते न करते हवा के झोकों के साथ कुछ अटपटे-से शब्द मेरे कानों में पड़े, तो पैर अपने-आप अड़ गये। गाँव का कोटवार मेरे साथ था, बोला, "यही आवाज है हुजूर, जहाँ हमें जाना है।"

घाटी चढ़ने की देर थी कि—"रे रे रेला, रे रेला रे, रेलो रे···" की संयुक्त आवाज साफ सुनायी देने लगी। यही था गढ़बंगाल का घोटुल-राई जैसी छोटी-छोटी झोपड़ियों से भरे गाँव के एकदम बाहर, खजूर, छिवला और कटीली की झाड़ियों से घिरा फूस का एक कच्चा-सा झोपड़ा। हम उसके द्वार पर जब पहुँचे, तो सारे लड़के-लड़कियाँ आग को घेरे, हाथ में हाथ डाले, गोल दायरे में नाच रहे थे। नृत्य के साथ गीत के बोल बराबर गूंज रहें थे—

पूना गीकी जोड़ी, जोड़ी गीकी
सिंगार न गीकी ते दोये
बदेना गीकी ते दोये
झलकोना गीकी ते दोये
बरा बरा सिलिंगदार
गीकी तेहलाय·····················।[1]

गीत में घोटुल की जिन्दगी जैसे बोल रही थी, चेलिक और मोटि-यारी गीकी (चटाई) से बँधे हैं, वही रात काटती है, इसलिए उसकी उन्हें चिन्ता थी। द्वार पर जब हम पहुँचे, तो सिरदार ने (घोटुल का मुखिया) जो नाच के बाहर था, दरवाजे पर आकर हमसे जुहार की। कोटवार ने

१. दो नयी चटाई लाओ।

मेरा परिचय कराया। सिरदार के चेहरे पर खुशी की लाली, अँधरी रात में अलाव के हलके-से उजेले में भी देखी जा सकती थी। उसने खटिया नीचे डाल दी और हाथ जोड़कर मुझने वैठने को कहा। फिर एक आवाज उसने लगायी। आवाज सुनकर सारे पैरों ने यंत्र की तरह काम किया। थिरकना और हकारना एकदम बन्द हो गया। सारे सदस्यों ने मुझे आकर घेर लिया। मैं अपने साथ मुरमुरा, वीड़ी और घुइंगा (तम्बाकू) ले गया था। कोटवार ने सबको ये चीजें बाँट दी। मोटियारियों ने बीड़ियाँ तो ले लीं, पर पी नहीं। मैंने एक से पूछा,—"पीती क्यों नहीं ?" उसने शरमा कर कहा,—"पीऊँगी।" कोटवार ने वताया कि वह बीड़ी अपने चेलिक (घोटुल का पुरुष सदस्य) को देगी।

गले में नेर्क, कान में किवला, पैर में पड़ी और बालों में पड़िया खोंसे एक लड़की सामने आयी। घुटने तक वह छोटा-सा दुपट्टा पहने थी। छाती आधी खुली थी, पर उसकी उसे चिन्ता नहीं थी। उसकी आँखों में चमक थी, लगता था वे शराब से धुली हुई हैं। मैंने उसके बालों से पड़िया (बालों में खोंसने की कंघी) निकाली। वह खिलखिलाकर हँस दी। अँधेरी रात में भी उसके दाँत चमक उठे। मैंने पूछा,—"किसने दी है यह ?"

वह बोली,—"साइगुती (साथी) ने।"

"वह कौन ?"

"सिलिगदार।"

"कहाँ है तेरा सिलिगदार ?"

सिलिगदार बाजू में ही खड़ा था। उसी ने हमसे सबसे पहले जुहार की थी। वही इस घोटुल का सिरदार था। ठिंगना पर गठे बदन का सिलिगदार इस बार कुछ शरमाया। मैंने उसकी पीठ ठोंकी। वह नीचे

सिंगार नाम की लड़की की चटाई अभी तक क्यों नहीं उठायी गयी।

झलकोना की चटाई भी अभी बिछी है (भुनसारा हो रहा है, लोग क्या कहेंगे) आओ सिलिंगदार, सारी चटाइयाँ उठाकर रख दो।

सिर झुकाकर मुसकरा दिया। मैंने जब उसके गले की रंग-बिरंगी मालाओं को देखा, तो उसने तिरछी आँखों से अपने पास खड़े साथी की तरफ निहारा।

मैंने पूछा,—"यह किसने दी है?"

"झलकोना ने।"

"कौन झलकोना?"

उसने उसी लड़की के गले में हाथ रख दिया। ये दोनों घोटुल के जोड़े थे—दिन-भर जाँगर तोड़कर जंगलों में काम करते हैं और रात को एक-दूसरे से अपना दुःख-सुख कह लेते हैं, फिर एक साथ सो जाते हैं। वे एक-दूसरे के सच्चे साइगुती होते हैं। सिलिंगदार के लिए झलकोना काडाली (शहद की मक्खी) है तो झलकोना के लिए वह गोटमरा (मेंहर का झाड़)।

कोटवार ने कहा,—"साहब तुम्हारा नाच देखेगा।"

सिलिंगदार सुनकर खुश हो गया। उसने 'इंगे' कहा, जिसका-मतलब है—हाँ अवश्य। मैंने पूछा,—"क्यों सिलिंगदार, हमारे यहाँ थानागुड़ी (अतिथियों के ठहराने की झोपड़ी) है?"

"हाँ हुजूर, पर।"....

"पर क्या?"....

"पर....पर", वह हिचक रहा था। मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखा, "हिचको मत, सिलिंगदार, बोलो क्या कहना चाहते हो?"

उसने दोनों हाथ जोड़े, बोला,—"साहब पहले यहाँ गोरे अफसर आते थे, पिछले कुछ सालों से नहीं दिखते, क्या सब-के-सब छुट्टी पर चले गये हैं?"

सुनकर मैं रह गया, बोला, "नहीं सिलिंगदार, वे छुट्टी पर नहीं हैं, यहाँ से भगा दिये गये हैं।"

"कहाँ?" वह आश्चर्य में था।

"इस देश के बाहर। उनका देश अलग है। अब यहाँ तुम्हारा राज है, अंग्रेजों का नहीं।"

वह बड़ी दीनता से मुसकराया, "हमारा राज? हम आपके नौकर हैं मालिक, कैसी बात करते हैं।" मैंने उसे बहुत समझाया, पर वह मेरी बातों को मेरी उदारता और सरलता का प्रतीक ही मानता रहा। उसे कल्पना भी नहीं हो सकी कि इस देश का वह राजा है।

बोला, "सरकार, मजाक छोड़ो। जब छुट्टी से गोरे लौट आयें, तो उन्हें यहाँ फिर मत भेजना।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

उसकी चमकती आँखें झुक गयीं। वे अब नम थीं। उनसे आँसू की बूंदें ढुलककर बिरौनी में आकर उलझ गयी थीं।

घोटुल के कुछ सदस्य हमें घेरे खड़े थे। कुछ आग के पास बैठे बीड़ी पी रहे थे और कुछ जोड़े सामने दालान पर एक साथ औंधे लेटे गर्दन उठाये हमारी ओर देख रहे थे। कोटवार ने बेलोसा (घोटुल की एक सदस्या) को बुलाकर थानागुड़ी साफ करने का इशारा किया, तो मैंने उसे रोक दिया, "ठहरो, अभी जल्दी क्या है?"

सिलिंगदार के आँसू अनजाने ही मुझ पर चोट कर गये थे। मैं उनका रहस्य जानना चाहता था। मैंने कहा, "सिलिंगदार, घबड़ाओ नहीं, अब वे गोरे अफ़सर कभी तुम्हारे यहाँ नहीं आयेंगे। पर, तुम्हें उनसे इतनी चिढ़ क्यों है?" सिलिंगदार अब सिसकने लगा था। काफी देर वह सिसकता रहा। मैंने झलकोना से पूछा—"यह क्यों रो रहा है?"

वह बोली, "आप थानागुड़ी में रात ठहरेंगे न, इसलिए।"

मैंने कहा, "वह तो इसी के लिए बनी है।"

"हाँ—पर—।" कहते वह रुक गयी। उसने अपनी अँगुली दाँतों के बीच रखकर काट ली थी और उससे जो दर्द हुआ था, उसे सी-सी कर सहला रही थी। सिलिंगदार ने गर्दन ऊपर उठायी और अपने आँसू

पीकर वोला—"मालिक, जब तक चाहें इस गाँव में ठहरें, पर थानागुड़ी अब हमने वन्द कर दी है।"

"सो क्यों ?"—मैंने उससे कहा, "मैं विझली की थानागुड़ी में दो रात ठहरा था। वहाँ के घोटुल के चेलिक और मोटियारी मुझसे नहीं कतराये। उन्होंने मुझे खूब गीत सुनाये, नाच दिखाये और मेरी सेवा की।"

"की होगी मालिक, पर हम नहीं करेंगे। वुरा न मानें तो बताऊँ" और सिलिगदार ने अपनी रामकहानी अपने-आप सुनानी शुरू कर दी।

\+ \+ \+

कई बरस पहले, एक ऐसी ही रात को एक गोरा इस घोटुल में आया था। तब सारी रात साँय-साँय कर रही थी और आसमान की छाती पर अनगिन तारे इधर-उधर दौड़ रहे थे। मैं तव वहुत छोटा था। सुलकसाये इस घोटुल का सिरदार था और ज़लियारी और सरसारो पर उसकी नजरें सीधी थीं। घोटुल के सिरदार कीं नजर जिस मोटियारी पर सीधी हो, उसके भाग बड़े होते हैं।

गोरा रात को थानागुड़ी में ठहरा। आधी रात तक वह नाच-गाने देखता रहा। उसने हर मोटियारी के गले के हार देखे, छातियों को छुआ और उनकी भरपूर प्रशंसा की। जलियारो को जब उसने देखा, मुंह फाड़-कर रह गया। अंग्रेजी में अपने-आप उसने न जाने क्या कहा और थाना-गुड़ी में जाकर सो गया।

काफी रात गये घोटुल सूना हो गया था। वहाँ की चहल-पहल नींद के खुर्राटों में समा गयी थी। तव तमंचा दिखाकर वह जलियारो को सुलकसाये की बगल से उठाकर घोटुल के बाहर ले गया। सुलकसाये उसे देखता रहा। वह मुँह से कुछ न कह पाया। तमंचा का उसे डर था। जव गोरा घोटुल के बाहर हो गया, तव उसने धीरे-धीरे घोटुल के सारे सदस्यों को जगाया। उसकी दूसरी वाजू में पड़ी सरसारो भी जाग गयी थी। अव क्या था, सारे घोटुल में सनसनी फैल गयी। मुखवान तव बेल-

दार था। वह गठे बदन का भरा-पूरा जवान, झमको जिसके हाथ से 'गियाभन' हो चुकी थी और दो दिन बाद ही दोनों का ब्याह होनेवाला था। उसने सुना तो लूघर लेकर बाहर भागा। सुलकसाए ने उसे रोका। घोटुल का कानून था, उसे सिरदार की आज्ञा माननी पड़ी, पर वह फन-फना गया था। गुस्से से उसका सारा शरीर काँप रहा था। वह बराबर घोटुल के दरवाजे के पास खड़ा था। गोरा थोड़ी देर में जलियारो के कंधे में हाथ डाले नरवा के तीर से हँसते हुए चला आ रहा था। बेलदार ने लूघर को हवा दिखाकर कंधे पर सीधा रख दिया था। गोरा अब पास आ गया और वह शायद बेलदार का मतलब भी समझ गया था, इसलिए उसने तमंचा दिखाया और ऊपर एक 'फेर' किया। उसकी आवाज़ सुनकर सब दहक गये। वह हँसा, खूब हँसा। जलियारो लाल रंग की सुनहरी किनारवाली धोती पहने आयी थी। घोटुल की सारी लड़कियों ने उसे इस नये लिबास में देखा, तो देखती रहीं।

गोरा बोला, "हम रोज तुम्हारी थानागुड़ी में आएगा और हर रोज एक-एक पैंकी को ऐसी ही सुन्दर साड़ी देगा।"

सुलकसाए ने हाथ जोड़कर कहा था, "नहीं मालिक, यह पहनकर हम कहां रहेंगे ? हमें यह नहीं चाहिए।"

गोरा हँसा और चला गया।

दूसरे दिन गाँव-भर में यह बात फैल गयी। घोटुल के पञ्चायत ने इस बात पर विचार किया—बाहर का आदमी हमारे यहाँ आये और हमारी इज्जत लूटकर चला जाय, यह कैसे हो सकता था। हम किसी से कुछ लेने नहीं जाते, फिर दूसरे लोग क्यों हमारे पीछे पड़े हैं—सिलिगदार की आँखों में आँसू थे। वह,कहता गया—जंगल हमारा जीवन है बाबू। हम किसी से कुछ माँगने नहीं जाते। महुआ, आम, चार और तंदू के झाड़ हमारे लिए काफी हैं। थोड़ी-बहुत मिली कनकिर जाजी, लाँदा और चपुड़ा (लाल चीटों का अचार), ढोंयका (बड़े मेंढक), पन्ने (छोटे मेंढक) और घमघा साँप हमारे स्वाद को बदल देते हैं। कपड़े हमें नहीं चाहिए।

जंगल के पेड़ हमारे कपड़े थे, पर न जाने कब किसने आकर हमें यह लंगोटी दे दी और उसी दिन से गैल से नीचे गिरा दिया। अब जितने गिर गये हैं, उससे नीचे तो न जाएँ। हमें कपड़े नहीं चाहिए, पैसे नहीं चाहिए—हमें अपनी इज्जत चाहिए बाबू, जो एक जानवर भी चाहता है—बाघ के रास्ते से हट जाओ, उसका सामना करने की कोशिश न करो, उसकी इज्जत उसे दो, वह कभी तुम पर धावा नहीं बोलेगा—पर, पर वह गोरा नहीं माना। उसने अपने मन की की। उसने हमारी सोयी नसों को उभार दिया। पञ्चायत ने उस रोज दिन-भर इस पर चर्चा की। उस दिन गाँव का एक भी आदमी काम पर नहीं गया था।

फिर रात आयी। फिर तारे जगे और फिर एक घरघराती मोटर नाले के तीर आकर रुक गयी। वह गोरा आज आया, तो उसी ने सबसे जुहार की। उसने सबसे घुल-मिलकर बातें कीं। सबको मनमानी महुए की शराब पिलायी और रात गये जब सब अचेत हो गये तो आज सरसारो पर उसने जाल फेंका। उस रात सारा घोटुल बनावटी नींद में था। वह उसका हाथ पकड़कर बाहर ले गया। सरसारो जब चिल्लाने के लिए मुँह खोलती, तो वह तमञ्चा दिखाकर उसे बन्द कर देता। वह उसे खींचकर नाले के किनारे ले गया और थोड़ी देर के बाद उसे नयी धोती पहनायी। फिर वहाँ से वापिस ले आया। जैसे ही वह घोटुल के दरवाजे पर पहुँचा कि दीवान ने उसका स्वागत किया। गोरे ने खुश होकर चाँदी के कुछ रुपये ऊपर फेंके और जैसे ही वे नीचे आकर गिरे, उनकी आवाज गूँजी कि पीछे से सुलकसाए ने पीठ पर टँगिया का गहरा हाथ दे मारा। उसने शायद तमञ्चा निकालने के लिए जेब में हाथ डाला था, पर सुलकसाए ने दूसरा हाथ उसकी कलाई पर देकर, हाथ को शरीर से अलग कर दिया। देखते-देखते वह गोरा मछली की तरह तलफने लगा।

सारा घोटुल और सारा गाँव काँप उठा था। पुलिस ने सबको घेर लिया था। हमारा नेता जिहल भेज दिया गया। थाने में उसे नंगाकर खूब कोड़े लगाये गये और अंत में वह सूली पर लटका दिया गया।

इसमें हमारा क्या दोष था, बाबू ? क्या हमारी कोई इज्जत नहीं ? क्या हम आदमी नहीं हैं ? कहते हैं, दुनिया में पापी केवल पेट है, वह भूख से भी बड़ा है और भूख को भी पचा डालता है, पर हमने न कभी भूख को पहचाना और न पेट को बड़ा माना। हम बस अपने को जानते हैं या अपने जंगल को पहचानते हैं। हम सब मिलकर जिंदगी बिता देते हैं, वह जिंदगी जो लिंगो ने अपनी मरजी से हमें दी है।

मैंने देखा सिलिंगदार का तन-बदन काँप रहा था। उसने मेरी दी हुई बीड़ियाँ फेंक दी थीं। उसकी देखादेखी घोटुल के सारे सदस्यों ने भी यही किया था। सिलिंगदार उठकर खड़ा हो गया था। सिर की पगड़ी उतारकर उसने अपने आँसू पोंछे थे और सिसकते हुए कहा था, "ऐसा सिरदार फिर इस घोटुल में आज तक नहीं हुआ, सरकार। पर मैं भी उसके नाम पर धब्बा नहीं लगने दूँगा।"

उसने गरदन झुका ली थी, जैसे अपने नेता की याद में उसका रोयाँ-रोयाँ फूट-फूटकर रो रहा था।

●

डूबते हुए क्षण

एक भ्रम था, जो नहीं रहा।

लेकिन, सूमा अब भी सिहर जाता है। बूढ़े वाप की खाँसी उसे हिला जाती है। रोज वह यूँ ही खाँसता है। खाँसते-खाँसते उसकी साँस कई बार टँग जाती है। तव वह आँखें फेर देता है। उसकी आँखों के लाल डोरे न जाने कहाँ गायव हो जाते हैं और पूरी आँख धतूरे के फूल की तरह सफेद हो जाती है। तव सूमा की आँखों का खून भी पानी वन जाता है। वह घबरा उठता है और अपने-आप चिल्लाता है—"दद्दा, ओ दद्दा, अब कैसा लगता है?"

दद्दा सुध में हो, तव तो सुनें। वह छटपटाता है। उसे लगता है, मन के पिंजरे को छोड़कर सुआ अव उड़ा, अव। पर, सुआ नहीं उड़ पाता। छाती का पसीना ठण्ढा हो जाता है। धतूरे के फूल तुरइया के लाल फूल वन जाते हैं। साँस किसी भटके और थके हुए राही की तरह आराम करने लगती है। सूमा तव खुश होकर वाप के सिर पर हाथ फेरने लगता है—बड़े प्यार-दुलार से, बड़े दुःख-दर्द से। थोड़ी देर बाद उसका वाप सो जाता है। झोंपड़ी का फटका धीरे से लगाकर वह बाहर आ जाता है और पिंजरे से छूटे पंछी की तरह खुलकर साँस लेने लगता है। उसे फिर यह फिकर नहीं रहती कि वाप की नींद फिर भी खुल सकती है, उसे खाँसी का दौरा फिर भी आ सकता है, और···।

यह रोज का नियम है, इसलिए आज जब फिर उसने बूढ़े वाप की खाँसी की आवाजें सुनीं, तो वह अपनी जगह से नहीं हटा। बड़े आराम से धीरे-धीरे वह अपने सिर की पगड़ी को बाँधता और खोलता रहा और अपनी थकी पिंडरियों को खटिया के पाट के सहारे पीटता रहा। थोड़ी देर खाँसकर उसका वाप चुप हो गया और सूमा ने फिर उस दर्द-भरी,

दहलानेवाली आवाज से छुट्टी पा ली। सूमा ने अपनी कमर का कर-डोरा ढीला किया और उसी खाट पर चित लेट गया।

परकी साल से चिरईडोंगरी में डेवलपमेंट ब्लाक खुला है। ढेर-से अफसर और ढेर-सी मोटरगाड़ियाँ। बेकारों को काम मिल गया है और कहते हैं, कुछ ही सालों में यह गाँव बदल जायेगा। सरकार ने यहाँ जादू की मशीनें लगा दी हैं और जादूगर अफसरों को तैनात कर दिया है। उनके चाहने की बात है और बस, गाँव का नकशा बदल गया! सामने की टौरियाँ काटी जा रही हैं। इसे सीधे धार की तरह काटा और तराशा जायेगा और फिर नीचे का सूखा मैदान लहराता तालाब बनेगा।

तालाब में जवानी की अंगड़ाइयाँ लेती लहरें होंगी। पहाड़ियाँ उसका मुकुट बनेंगी। तालाब उन पहाड़ियों का चन्दनहार होगा। ऊपर नील-गगन का चन्दोवा होगा और हरी झाड़ियों के बीच की पगडंडियाँ साड़ी के किनारों की तरह चमकने लगेंगी। सूरज दिन में आरती उतारेगा। चाँद हिचकोले दे-देकर रात को सुलाया करेगा। बाँध उस गाँव की जिंदगी होगी। आज जो सूखे से परेशान हैं, पानी पाकर खुश हो उठेंगे। सूमा ने एक बार अपनी जीभ अपने ही होंठों पर फिरायी।

ब्लाक का अफसर कहता था—"सूमा, हम तुम्हारे दिन बदल देंगे। तुम्हारी बहनें कल तक घास काटती थीं, अब वही स्कूल में पढ़-लिखकर मिडिल पास करेंगी।"

सूमा हँस पड़ा था। यह सब उसके लिए सपना है। उसने कहाँ सोचा था यह। सोचता भी है तो एक ही बात—बहनें पढ़-लिख लेंगी तो क्या होगा? घास काटना छोड़ देंगी तो क्या होगा? तब भी अफसर की बातें उसे सहला जाती हैं। थोड़ी देर के लिए वह अपना सूनापन भूल जाता है। बाप का दर्द उसे नहीं सालता। डेवलपमेंट अफसर कहता था—"यहाँ जल्दी ही एक अस्पताल खुलेगा। उसमें सबसे पहले तेरे बाप का इलाज होगा।"

चलो अच्छा है, एक बार इलाज हो जाये तो रोज-रोज की यह किल्लत मिटे। दर्द बाप को होता है, टीस सूमा को उठती है। ऐसे दर्द से मौत भली—हे हरदौल, इसे उठा ले अब। कब तक यूँ तड़पेगा!

सूमा के सिवा उसका और कौन है? इसलिए भी सूमा को लगता है, जैसे उसे किसी ने रस्से से बाँध रखा है। वह जब बाँध में काम करता है, तब भी उसे लगता है जैसे बाप को खाँसी आ रही है। उसकी आँखों के लाल रेशे सफेद हो गये हैं और उसकी छाती पसीने से सराबोर है। वह जैसे सूमा को बुलाना चाहता है, पर उसके मुँह से एक भी शब्द बाहर नहीं आ पाता। उसका मन तब वहाँ नहीं लगता। वह उचाट-उचाट-सा अपनी बँधी नजरों से अपने घर की ओर जानेवाली गैल को देखता रहता है। कभी-कभी उसके मन में बड़े भयावने विचार आते हैं—कहीं ऐसा न हो कि खाँसते-खाँसते····।

सूमा ने करवट ली। दद्दा सचमुच परेशान है। सूना घर कटा खेत होगा, यदि····।

"सूमा, ओ सूमा।" एक खाँसती कराहती आवाज उसे सुनायी दी। यह आवाज उसके बाप की थी। उसकी खाट एक बार जोर से चरमरायी और वह उठकर बाप के पास चला गया।

"हाँ, दद्दा।" उसने अपनी विवश और बँधी नजरों से बाप की ओर देखा। बैठ जा, आ!

सूमा बाप की खाट पर बैठ गया। बाप ने बड़े प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा। सूमा को लगा, जैसे उसके हाथ फेरते ही उसके सिर का वजन एकाएक उतर गया है। वह फिर हलका हो गया है। उसे चिन्ता ही किस बात की है।

"अब तबीयत कैसी है, दद्दा?"

बाप ने कराहते हुए करवट बदली और कहा, "अब तबीयत का क्या है, सूमा! साँस की पतली डोर हो तो एक सहारा है। कब टूट जाये, क्या पता? पर···।"

वह कहते-कहते रुक गया। उसके शब्द अपने आप भीतर-ही-भीतर घुल गये। वह चाह कर भी कुछ नहीं कह सका। सूमा ने अपने बाप के चेहरे को देखा और देखता रहा। वह जैसे पूछना चाहता था—दद्दा, पूरी बात कहो न। अब मैं सयाना हो गया हूँ, समर्थ हूँ, नौकरी करता हूँ। मुझे डेढ़ रुपये दिन मजूरी मिलती है, कमी काहे की है। पर, वह कुछ नहीं बोला। बाप ने सहमी नजरों से सूमा को देखा और कहा, "बेटा पानी पिला दे।"

सूमा ने पानी लाकर पिला दिया।

बाप ने झिझकते हुए पूछा, "एक बात कहूँ, सूमा।"

"कह, दद्दा।"

"तू बार-बार टाल जाता है। मेरी सुनता नहीं। अब तू सयाना और समझदार हो गया है। इस साल ब्याह कर ले—हाँ, मुझे भी नाती का मुँह···।"

सूमा ने मुँह फाड़ दिया। दद्दा कितनी आगे की बात सोच गया। अभी ब्याह ही होना बाकी है, वह नाती देखने की बात करने लगा। फिर कहेगा—उसका ब्याह भी देख लूँ और फिर···! सूमा ने लम्बी साँस ली। यह तृष्णा भी कितनी विचित्र होती है! उसने कोई जवाब नहीं दिया। जवाब न पाकर बाप क्षुब्ध हो उठा बोला, "तू हर बार यही करता है। मैं कहता हूँ और तू सुनकर चुप रह जाता है। यदि तेरी माँ होती तो···।"

माँ की याद आते ही सूमा पिघल गया। वह भी बहू के लिए तड़प उठी। बार-बार कहती थी, "बेटा ब्याह कर ले। मैं बहू का मुँह देख लूँ।" पर सूमा ने ब्याह नहीं किया। कहता था, "औरतें अच्छी नहीं होतीं, अम्मा! तुम अभी उसके लिए तरसती हो, आते ही तुमसे झगड़ेगी।"

माँ हँस देती थी। कहती थी, "झगड़ा-फिसाद तो चलता ही रहता हैं। जहाँ दो बरतन होते हैं, आपस में भिड़ते ही हैं।"

पर, सूमा का विचार औरतों की तरफ से अच्छा नहीं है। वह इन्हें जहर की पुड़िया समझता है। वह अपने दो दोस्तों को जानता है—एक की औरत ने अपनी सास को जहर दे दिया था और दूसरी दिन-रात इतना लड़ी कि उसका बाप वैसे ही परेशान है। शादी कर लेगा, तो उसकी परेशानी बढ़ ही जायेगी, लेकिन वह यह भी जानता है कि उसकी माँ अन्त तक कितना तड़पती रही है, उसकी साँस जा-जाकर लौटी है। वह जैसे बहू का मुँह देखने के लिए बेहद व्याकुल रही है। वह नहीं चाहता कि उसका बाप भी इसी तरह छटपटाये और फिर उसके मरने के बाद वह अपनी शादी करे। इसलिए इस बार उसने अपने बाप को ढ़ाढस दिया, "दद्दा, अब तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारी बात टालूँगा नहीं।"

सुनते ही उसका बाप उठकर बैठ गया, जैसे वह बीमार नहीं था, बीमारी का बहाना बना रहा था। अपने बाप का यह संकल्प देखकर सूमा खुश हुआ। उसे लगा, हो सकता है, यदि वह व्याह कर ले तो उसके बाप का मनोबल और बढ़ जाये और वह अच्छा हो जाये। वह असल में नहीं चाहता था कि उसका बाप किसी तरह की परेशानी उठाये।

सूमा जिस बात को टालता रहा था, वह पूरी हो गयी। धूमधाम से उसका व्याह हो गया। ऐसे लड़के के लिए लड़कियों की कमी नहीं रही। ज्यादा खोज नहीं करनी पड़ी। सूमा को लगा जैसे न जाने कितने शिकार वैसे ही तीर-कमान साधे निशाना लगाये बैठे थे। उसने 'हाँ' कहा नहीं कि सब चढ़ दौड़े। अपने मन से उसने शादी कर ली। बाप ने कह दिया था, "जिसे तू चाहे, चुन ले। जिन्दगी तेरे साथ कटेगी।"

सूमा के लिए इतनी छूट बहुत थी। कौन बाप इतनी छूट देता है। वह तो कहते हैं कि अपने लड़के का अच्छा-भला हम खुद जानते हैं। क्या जानेंगे ? जिन्हें साथ रहना है, वे नहीं जानते, ये जानते हैं ! सूमा

के सामने ऐसी स्थिति नहीं आयी। यह भी हरदौल बाबा का परसाद है। जय हो बाबा हरदौल की!

शादी हुई और जंगल में आमों के झाड़ों ने अंगड़ाई ली। फागुन के दौरों के साथ डोलती अलमस्त बौरायी हवा ने धरती के रग-रग में कम्पन पैदा कर दिया, खेतों ने धानी साड़ी पहन ली। सवेरे का सूरज उनके साथ मिलकर एक रंग हो जाता, तो रात का चाँद साँवरी की कलाइयों में कंगन बनकर अटक जाता, गेहूँ के पौधे भार से जमीन पर झुक-झुक जाते, चना की घेंटिया माला बनने के लिए गुरियाँ तैयार कर जातीं और सूमा, साँवरी के गले में बार-बार झूल जाता। जैसे कोई बड़ी प्यास उसे जनम-जनम से सता रही थी, अब पूरी हुई है तो वह खूब जी भरकर पी लेना चाहता है।

दोनों अक्सर बाहर ही होते। खेतों की मेंड़ों पर खड़े-खड़े दोनों हवा के तैरते उन झोकों को देखा करते जो बार-बार खेतों की छाती से घूम-घूम जाते और एक उफान-भरी लहर वहाँ छोड़ जाते। बूढ़ी और सूखी फसलें भी जवानी की अंगड़ाई में डूब जातीं और उन्हें इस तरह देखकर साँवरी का मन भी अपने में नहीं रह पाता। वह सूमा के गले में हाथ डालकर झूल जाती और अब झूलती तो सूमा चुपचाप यूँ झुक जाता, जैसे गेहूँ की कोई बाल झुक जाती है। वह अपलक साँवरी की उस सूरत को देखता रहता, जो कहीं भी साँवरी नहीं थी। जो बहुत उजली और साफ थी और जिसकी ठोढ़ी के पास एक गोल काला तिल था, जैसे वह काला तिल नहीं, सम्मोहन का एक बड़ा केन्द्र हो। जैसे वही था जो सूमा को अपनी ओर खींचता था। सूमा ज्यों-ज्यों साँवरी में सिमटता साँवरी त्यों-त्यों खिलती जाती थी। वह कई बार खेतों की मेंड़ों पर ही अपने मन के सुरों को खोलकर धरती को जगा देती और जब वह धरती जो उस समय न अलसायी होती और न किसी की प्रीत की पीर में ही उदास होती थी—जाग जाती, तो सूमा का मन अपने आप काट जाता था। सभी यह देखते हैं, क्या कहेंगे? क्या सोचेंगे

उसके बारे में । सूमा कई बार हिचककर रह जाता, पर साँवरी को किस की फिकर । वह गुच्छों के उभरे रंग की गोलाई लिये थे और जिन्हें देख-देखकर अपने आप उसके मन में समर्पण का एक अनजाना भाव जागता था ।

कल ही जैसे साँवरी इस गाँव में आयी है। पिया के नेह में रात बीती थी और आज खेतों की देह में उसका दिन बीत रहा है और बीत रहा है तो उसे काट रहा है । वह सोचती है, यह दिन ही क्यों होता है, सूरज क्यों निकलता है, किसके लिए निकलता है, उसे तो इसकी जरूरत नहीं है और जिसकी जरूरत नहीं है, उसका मिलना कितनी खराब बात है । साँवरी तब रूठकर भाग जाती और जब सूमा उसका पीछा करता, तो किसी एकान्त झुरमुट में ही वह दम लेती थी ।

सूमा का बाप खुश था । उसे सन्तोष था, वह अपनी औरत की तरह एक अतृप्त आकांक्षा लिये नहीं मरेगा । बेटा सपूत निकला, बाप के मन को जानता है । अब एक ही बात रह जाती है—वह भी सूमा पूरा कर ही देगा । वह अक्सर साँवरी को बुला लेता है। उसे अपने पास बिठा-कर उसके सिर पर हाथ फेरता है और अपनी स्वर्गीय मिहरिया के उन विचारों को बताता है, जो लेकर वह इस दुनिया से चली गयी । साँवरी सुनती है और सुनती है तो झुक जाती है और झुक जाती है तो लजा-कर रह जाती है । तब वह उठकर भीतर भाग जाती है और अपने आप घूमने लगती है ।

पड़ोस की औरतें कई बार उसे घूमते देख लेती हैं। सुखिया ने भी उसे देखा था और उसके पास आ गयी थी। कहती थी''''वड़ी भागवान है री तू साँवरो, जो तेरी सास नहीं है। तू ही राज करती है। वरना''''।"

साँवरी को यह अच्छा नहीं लगा । सास नहीं है, यह तो एक बड़ी कमी है, पर सुखिया उसे समझाती है कि जिस घर में सास होती है, बहू के लिए वही नरक है। उसकी सास दिन-रात उसे

परेशान किये है। जरा भी दम नहीं लेने देती। ब्याह के दिन से ही उसने जो काम देना शुरू किया है, तो फिर पीछा नहीं छोड़ती। उसका कहना है कि ये सारी सासें अपना बदला अपनी बहुओं से लिया करती हैं। ये न हों तो बहुएँ खुली साँस ले सकें। सुखिया अपनी बातें तर्क के साथ रखती है, पर साँवरी को अनुभव नहीं है, वह सुखिया की बातों को बुरा समझती है और इस कान से सुनकर उससे निकाल देती है।

खाँसी का दौरा आया और सारे घर में छा गया।

सूमा का बाप अपने को सम्हाल न सका। सूमा काम पर गया था। साँवरी घर में अकेली थी। खाँसी की आवाज सुनी, तो दौड़ गयी। अपने ससुर को पकड़कर उसकी पीठ सहलाती रही। छाती पर हाथ फेरती रही, पर किसी का असर नहीं हुआ। वह खाँसता गया। उसकी सिकुड़ी और बँधी आँखें धतूरे के फूल की तरह सफेद होकर बाहर निकल आयीं।

"साँवरी, इसी तरह इसे दौरे आते हैं। तू काहे को परेशान होती है। सूमा जानता है और इसलिए कभी इस तरह पागल नहीं बनता।"

साँवरी ने सुखिया की ओर देखा और देखती रही। सुखिया ने कहा, "हाँ, री। सच कहती हूँ।"

खाँसी का दौरा उसी तरह चलता रहा। किसी तरह वह वश में नहीं आ रहा था। साँवरी चाहती थी कि वैद्यजी की दवाई ही पिला दे, पर कहाँ से और कैसे पिलाये। सुखिया थोड़ी देर खड़ी रही और चली गयी। साँवरी थोड़ी देर उसे सहलाती रही और जब कोई आराम न लगा, तो वह भी भीतर चली गयी। बूढ़ा उसी तरह अपनी जिन्दगी के साथ लड़ता रहा। सब ने उसे जैसे अकेले लड़ने के लिए छोड़ दिया है।

साँवरी भीतर आकर भी दम न ले सकी। खाँसी के दौरे रह-रहकर उसे भी कँपा रहे थे। वह अनुभव कर रही थी कि ससुर को बड़ा दर्द है, पर अपने को निस्सहाय पाकर वह किसी तरह समझा रही थी।

थोड़ी देर के बाद दौरा खतम हो गया और बूढ़ा कटे हुए झाड़ की तरह वहीं बिस्तर पर लुढ़क गया। साँवरी ने जाकर देखा, वह औंधा पड़ा था और उसकी आँखें अब भी खुली थीं। उसने देखा, वह साँस ले रहा है। तभी सुखिया आ गयी। वह मुस्करा रही थी। बोली, "मैंने कहा था न, इसे इसी तरह दौरे आते हैं। यह इसी तरह मरने लगता है; पर····।"

"बेचारा !" साँवरी ने कहा और भीतर चली गयी।

उसे यह घर उचाट लगने लगा। सूमा दिन-भर काम में लगा रहता है और बाँध बनाने जाता है। वह भी चाहती है, कहीं उसे काम मिल जाये, वह भी काम करने लगे। पर, यह बूढ़ा काम नहीं करने देता। उसे देखनेवाला कोई तो चाहिए। साँवरी को यह बात बहुत अखरती है। वही उसे देखने के लिए है। वही सब करने के लिए है। अपने घर से क्या इसीलिए आयी है ? एक परेशानी वहाँ भी थी। उसका बाप भी दमे का रोगी था। वर्षों वह बीमार रहा और जब तक बीमार रहा, साँवरी ही उसकी सेवा करती रही। उसकी माँ जरा भी परवाह नहीं करती थी। बाप खाँसता रहता था और साँवरी की माँ बाहर बैठी हँसती रहती थी। जिस दिन वह मरा, उस दिन भी वह भीतर नहीं गयी। मरने के बाद ही उसने उसे देखा और देखा तो इस तरह रोयी, जैसे दुनिया-भर के सारे पहाड़ उसी के सिर पर टूट पड़े हैं। साँवरी बड़ी लड़की थी और बड़े होने का धरम अन्त तक चुकाती रही। किसी तरह वहाँ से छूटी है, तो यहाँ आकर फँस गयी।

उसे पहली बार लगा, जैसे वह गलत जगह आ गयी है। ब्याह ही करना था, तो कहीं और चली जाती। लेकिन इसके साथ ही सूमा का चेहरा उसके सामने झूलने लगता है। सूमा उसे अपनी आँखों में बन्द रखने के लिए कितना उत्सुक रहता है। जब तक घर पर रहता है, उसका साथ नहीं छोड़ता। उसकी हर बात मानता है ? तब····? लेकिन इससे क्या ? मुसीबत तो उसे ही उठानी पड़ती है। वह सोचती है सूमा

क्या, जो भी उसे मिलता, इसी तरह उसकी चाकरी करता। सूमा जो कुछ करता है, नयी बात नहीं है। उस जैसी उजरी और साफ लड़की किसे मिलती हैं। ब्याह के पहले गाँव के ही नहीं आन गाँव के दर्जनों लड़के उसके पीछे लगे रहे हैं। हर कोई उसे अपनी आँखों की पुतलियों में बैठाने के लिए आतुर रहा है।

इस विचार के साथ ही सूमा के प्रति भी उसके मन में विरक्ति के भाव जागे। उसे लगा यहाँ चैन नहीं है, न मिल सकता है।

बूढ़ा अब सम्हल गया था। उसकी आवाज साँवरी ने सुनी। वह पानी माँग रहा था। साँवरी ने मुँह बनाया और पानी ले जाकर उसके हाथ में दिया। वह कुछ और कहना चाहता था, पर साँवरी एक घृणित नजर डालकर वहाँ से चली आयी। बूढ़े ने पहली बार देखा, साँवरी ने उसकी बात नहीं सुनी। वह कितना चाहता है, अपनी बहू को। बहू भी उसके लिए, सब करती रही, पर अब पहली बार....।

शाम को सूमा घर लौटा, तो साँवरी बाहर नहीं आयी। यह भी अजीब बात थी। सूमा दौड़ते भीतर आया। साँवरी रोटियाँ सेंक रही थी। सूमा को लगा, वह रोटियाँ नहीं सेंक रही है, उसके कलेजे को निकालकर भून रही है। उसने कितना चाहा हैं कि उसके आते ही साँवरी उसे दरवाजे पर हँसती-मुस्कराती खड़ी मिले। बोला, "मैं आ गया हूँ, साँवरी।"

साँवरी ने उसकी ओर देखे बिना ही कहा, "खाना तैयार हैं। हाथ-मुँह धोकर खा लो।"

सूमा के मन का पहाड़ टूट पड़ा। तब भी उसने पूछा, "दद्दा।"

"हाँ, अभी जिन्दा हैं वह।"

सूमा चौंक पड़ा। ऐसी बात वह साँवरी के मुँह से सुन रहा है। उसे गुस्सा आ गया। लगा, वह साँवरी को पकड़े और दो घूँसे उसकी पीठ पर जड़ दे। पर, उसने कुछ नहीं कहा। अपने बाप के पास चला गया। बाप कटे हुए खेत की तरह निढाल गड़ा था। सूमा को देखते ही जैसे जाग

गया। सुबह से उसे खाना नहीं मिला। उसने खाना माँगा, तो सूमा का खून खौलने लगा। साँवरी ने खाना क्यों नहीं दिया! बाप ने बात रख ली। बोला, "बेटा, आज बड़े जोर का दौरा पड़ा था। बहू बेचारी क्या जाने। उससे जितना बना, उसने किया। फिर मैं सो गया। सो क्या गया, हिम्मत नहीं रही सो पड़ रहा। उसने समझा होगा मैं सचमुच सो गया हूँ। बस, इसी से खाना नहीं दे पायी, शायद।"

सूमा भी जानता था कि साँवरी अपने ससुर का बराबर खयाल रखती है। बाप की बात उसे समझ में आयी। हँसता हुआ वह रसोईघर में चला गया। उसने जाते ही बड़े प्यार से साँवरी के गाल दबा दिये और उसका घूँघट खोल दिया। साँवरी ऐंठी रही। सूमा ने बाप को खाना खिलाया।

फिर खुद आकर खाने बैठ गया। साँवरी आखिर औरत थी। औरत में समझ की कमी होती है। अपनी बात किस तरह पति के सामने रखनी चाहिए, कम औरतें जानती हैं। मुँह फुलाये वह खाना परोसती रही। सूमा मजाक करता रहा। साँवरी पर कुछ असर नहीं हुआ। बहुत देर बाद वह बोली, "देखो, मुझे अब अपने घर पहुँचा दो।"

"आखिर क्यों, साँवरी। सबेरे तक तो तू…!"

"हाँ, पर अब मैं नहीं रहना चाहती।"

सूमा काँप गया! क्या हो गया? दद्दा ने कुछ कह दिया! उसने पूछा, "दद्दा ने…।"

"हाँ।" वह चिल्लायी, "तेरे बाप की यह खाँसी मुझसे नहीं देखी जाती और इतनी सेवा मुझसे नहीं होती। अपना घर छोड़कर आयी थी। कि फिर वही परेशानी नहीं होगी। किस्मत ऐसी कि यहाँ भी वही बात है!"

"तो इसके लिए मैं क्या करूँ, साँवरी।" उसने बड़े प्यार से कहा।

"तुम कुछ न करो। मैं ही चली जाती हूँ"

"तू जानती है, दद्दा को कितना सदमा लगेगा। उसकी….।"

"इसकी फिकर तू कर। वह तेरा बाप है।"

यह सुनते ही सूमा को क्रोध आ गया। साँवरी को कितना प्यार करता है, और। एक वह है, जो उसके लिए ऐसे शब्द कहती है। सूमा को लगा, जरूर कुछ हुआ है, किसी ने इसे भड़काया है, वरना अब तक उसने कभी कुछ नहीं कहा। बराबर लगन के साथ वह ससुर की सेवा करती रही है। सूमा इसी से भी चुप रहा। खाते-खाते उसने साँवरी को पकड़-कर अपनी ओर खींच लिया। साँवरी बिगड़ी रही। इस प्यार और मनुहार के सामने भी वह नहीं पिघली। पर, थोड़ी देर के बाद उसने मुस्करा ही दिया। इस तरह उसका रूठकर मुस्कराना सूमा को बहुत अच्छा लगा। उसने कहा, "साँवरी, तू इसी तरह रोज रूठकर मुस्कराया कर। तेरा इस तरह मुस्कराना ज्यादा अच्छा लगता है।" औरत की जात, उसकी भी अपनी विसात होती है। सूमा ने रूठ कर मुस्कराने की बात कही तो साँवरी को लगा, उसके इस तरह रूठने से भी सूमा को खुशी होती है। तब....? वह अब नहीं रूठेगी। अपनी खुशी वह क्यों किसी को दे? साँवरी का चेहरा बदल गया। वह जोर से मुस्कराने लगी। वह फिर प्यार जताने लगी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। सूमा का सूखा मन फिर फैलकर फूल गया। वह हँसता-गाता बाहर आ गया।

अब बूढ़ा जीना नहीं चाहता। इस तरह जीना भी कोई जीना है! पर, मरना उसके हाथ में हो तब न! उसने सूमा को बुलाया और बड़े प्यार से कहा, "बेटा, अब यह सब नहीं भोगा जाता। पाप के फल बहुत भुगत चुका। कोई तो रास्ता निकाल!"

सूमा ने उदास होकर कदा—"दद्दा, आज वैद्यजी से कहूँगा!"

"अरे, वैद्य के किये क्या होगा। सूमा तेरे ब्लाक में अस्पताल बनने-वाला था न?"

"हाँ, दद्दा, बनेगा तो, पर अभी समय लगेगा।"

"कितना?"

"ब्लाक आफीसर कहता था, जाँच हो गयी है। आर्डर आने में देर लगेगी।"

जाँच हो गयी है, तब भी आर्डर आने में देर लगेगी, यह बात बूढ़े की समझ में नहीं आयी। उसने कहा, "यह तो कुछ अजीव-सी बात लगती है, सूमा।"

सूमा के लिए यह बात अजीब नहीं थी। दो बरस से वह ब्लाक में काम कर रहा है। वह देख रहा है, हर बात यहाँ इसी तरह होती है! न जाने ऐसी कितनी बातें हैं, जिनकी जाँच दो साल पहले हो चुकी हैं, आर्डर अब तक नहीं आया। मन्त्री आते हैं और चले जाते हैं। आते हैं तो दौड़-धूप मच जाती है, जाते हैं तो आशा की एक गठरी सबके हाथों में थमा जाते हैं, पर उसकी गाँठ कभी नहीं खुलती। न जाने किस तरह गाँठ बँधी होती है कि कोई उसे नहीं खोल सका! सूमा को यह बात अजीब लगी। उसका बाप तो उसी अस्पताल के सहारे साँसें ले रहा है। उसे भरोसा है—आज नहीं तो कल जरूर अस्पताल खुलेगा और कल दूर नहीं है और अस्पताल खुलने-भर की देर है, वहाँ कोई ऐसा जादूगर डाक्टर होगा जो बस अपना हाथ धर देगा और उसकी खाँसी हमेशा के लिए ठीक हो जायेगी। सूमा को लगा, ऐसी गलत आशा लेकर उसका बाप कब तक चल सकेगा! इससे तो अच्छा है, वह इस दुनिया से ही चला जाये! साँवरी भी रूठना बन्द कर देगी और उन दोनों की जिन्दगी में जिस विष का मिलना आरम्भ हो गया है, वह छट जायेगा। पर····!

साँवरी रात को सब भूल गयी थी। ससुर के साथ उसने जो किया था, उसका उसे पछतावा हो रहा था। बेचारा बूढ़ा, वह भी क्या करे! उसके हाथ कुछ हो तो·······! लेकिन यह सब कब तक वह भोगेगी?

सूमा ने कहा, "साँवरी, तू ठीक कहती है। दद्दा का दर्द बढ़ता ही जाता है।"

साँवरी ने प्यार-भरी आँखों से उसकी ओर देखा और मुस्करा दिया। बोली, "यह तो तू ठीक कहता है।"

"तब?" सूमा ने पूछा।

साँवरी ने उसी तरह जवाब दिया, "जैसा तू कह।"

"मेरी बात मानेगी ?" सूमा ने पूछा ।

"क्यों नहीं । कह तो ।"

"अभी-अभी तो रूठी थी और अब···!"

साँवरी ने कुछ इस तरह मुँह बनाया, जैसे वह कहना चाहती है, इस समय भी ऐसी बात कहता है । अनाड़ी कहीं का !

सूमा अब भी परेशान था । साँवरी को वह अपनी छाती से लगाये खाट पर बैठा था । रात साँय-साँय कर रही थी । दूर कुत्ते भौंक-भौंककर रात को जगाने की कोशिश कर रहे थे, पर रात को साँसें तेज थीं । वह जोर के खर्राटें ले रही थी । बूढ़ा सो रहा था । उसका गला अक्सर सोते समय जोर से बजता है । वह बज रहा था । सूमा परेशान था और साँवरी उसे चिढ़ा-चिढ़ाकर मजा ले रही थी । सूमा ने कहा, "साँवरी, तेरी परेशानी मैं नहीं देख सकता । अभी ब्याह हुए कितने दिन हुए हैं और तेरे सिर परेशानी आ गयी । तू ऐसा कर····!" साँवरी बँधी नजरों से उसे देखने लगी । सूमा ने कहा, "तू अपने घर चली जा । जब मेरा बाप अच्छा हो जाये, तू फिर आ जाना ।"

साँवरी ने उसी तरह हलके ढंग से कहा, "तेरा बाप अच्छा हो जायेगा ।"

"हाँ, साँवरी, किसी तरह तो अच्छा होगा ही—इस पार या उस पार ।"

साँवरी ने मुँह फाड़ दिया । वह सूमा के हाथों से छूटकर दूर हो गयी और सूमा की ओर आँखें फाड़कर देखने लगी । सूमा काँप गया । क्या कह दिया उसने । वह नहीं चाहता था, साँवरी किसी तरह बिगड़े । ये दिन, कितने दिन रहते हैं । फिर तो वही दिन आते हैं, जो उससे बड़ी उमर के और लोगों में आ गये हैं । उसने कहा, "तू नाराज हो गयी ?"

साँवरी ने आँखें फाड़कर कहा, "हाँ !"

"तो माफ कर दे ।"

"कैसे कर दूँ।" साँवरी ने इस वार दाँत पीसे। बोली, "तू आदमी है ? कैसा आदमी है रे, तू ? अपने बाप से जरा भी प्रीत नहीं है। अरे, मेरा बाप था तो मरते तक मैंने उसका साथ नहीं छोड़ा। वैद्य कहता था, इसका रोग लगनेवाला है, पर बाप से भी बढ़कर कोई बड़ा रोग होता है ? मेरी माँ छूत मानती रही, पर मैंने कभी नहीं माना—और तू।"

सूमा ने पल-भर कुछ सोचा और फिर सम्हलकर बैठ गया। जो काम वह कहने और डाँटने से नहीं करा सकता था, इस तरह उसने करा लिया। वह तब भी बनता रहा। बोला, "साँवरी, वह तो ठीक है, पर तेरी खातिर....।"

"मेरी खातिर तू अपने बाप को भी छोड़ देगा ? कैसा मरद है, रे।"

"पूरा मरद हूँ, साँवरी, पूरा, इसीलिए तो बाप को भी छोड़ सकता हूँ, तुझे नहीं।"

"चल हट।" साँवरी ने उसे हलके से टाल दिया, "खबरदार, फिर मेरे ससुर के बारे में ऐसा कहा तो। वह मेरा भी बाप है। मैं उसकी सेवा करूँगी। तेरा सिर क्यों चढ़ता है।" सूमा के मन में आया, वह कह दे, मेरा सिर क्यों चढ़ेगा, पर वह कुछ नहीं बोला। उसने साँवरी को प्यार-भरी नजरों से देखा और देखता रहा। साँवरी दूसरे ही पल सिमट-कर उसके बहुत पास आ गयी। उसने सूमा के बाल पकड़कर खींचे—"अब भी देख रहा है रे, कायर....!"

सूमा ने अनुभव किया एक बड़ा परदा हट गया है और एक भ्रम जो बनता जा रहा है, मिट गया है। यह सोचते ही उसे बड़ा सन्तोष मिला। वह साँवरी की साँसों में डूब गया।

●

महतू ने आगे बढ़कर माही के हाथ से खरहरा छीन लिया और अमराई के नीचे की जमीन साफ करने लगा। जिस जल्दी में और जिस लगन के साथ महतू यह काम कर रहा था, उसे देखकर उसकी मिहरिया को जलन हो रही थी। वह चुपके-चुपके आँखें उठाकर सयाने गुनियाँ की तरफ देख रही थी और गुनियाँ ध्यान लगाये महतू की पैंतरेवाजी देखने में मगन था। जब वह झाड़ चुका तो गुनियाँ ने आगे बढ़कर उसे थपथपाया और सुकवरिया की ओर देखकर बोला, "देख सुवकी, तू कहती थी, महतू अलाल है और दिनभर पड़ा-पड़ा खाता है, काम-धंधा तो उसके वाप से भी नहीं हुआ। आज देखा कमाल तूने उसका, अब शिकायत तो नहीं करेगी ?"

सुकवरिया की आँखें नीचे झुक गयीं। सब लोग खूब खिलखिलाकर हँसने लगे, उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था।

जमीन ने जब सारा गोबर सोख लिया, तो सुकवरिया ने मक्का के आटे से चौक पूरा और उस पर कच्चे तथा पक्के चावल बगरा दिये। गुनियाँ ने अपनी चकमक महतू की ओर वढ़ायी। महतू ने दीपक की जोत जला दी। जोत जलते ही सब लोग ध्यान लगाकर गुनियाँ की ओर देखने लगे।

गुनियाँ नारायणदेव की प्रार्थना में व्यस्त हो गया। दो-चार मन्त्रों के बाद देवता को धूप दी गयी और सारे लोगों की आँखें सुअर पर अटक गयीं। वह जमीन में मुँह लगाये पूर्ववत् खड़ा था और सारे चावल उसी तरह बिखरे पड़े थे। गुनियाँ के चेहरे पर चिन्ता की दो-चार रेखाएँ उभरती दिखायी दीं। उसने देवता का नाम लेकर नारियल फोड़ा, उस पर लांदा (शराब) चढ़ायी और अपने मन्त्रों द्वारा वह सुअर की चेतना

जगाने लगा। सुअर मन्त्रों के प्रभाव से झूमने लगा और जैसे ही उसने चावल के दाने अपने मुँह से उठाये कि पीछे से महतू ने आगे बढ़कर मूसर से उसकी पूंछ काट ली। पूँछ के कटते ही नारायणदेव की आत्मा सुअर पर उतर आयी, फिर उसने खूब चावल खाये। गुनियाँ ने अक्षत-चन्दन से उसकी पूजा की और आरती उतारी। बूढ़ी बँसखिया तब तक बाजू में गड्ढा बना रही थी। जब गड्ढा खुद गया तो उसने उसमें गरम पानी भर दिया। तेलामी, महतू और गुनियाँ, तीनों ने सुअर की पिछली टाँगें पकड़कर उसका मुँह उस गड्ढे में जैसे ही डाला कि वह दर्द-भरी आवाज से चीख उठा। औरतों की खुशी का ठिकाना नहीं, उनका नारायणदेव जैसे प्रसन्नता से चिल्ला रहा था। देव प्रसन्न हो गये हैं, तो अब बरस-भर सारा गाँव बाधाओं से मुक्त रहेगा, कोई बीमार नहीं पड़ेगा और न किसी को भूत-प्रेत या चुड़ैल सतायेगी। सुकवरिया न जाने क्यों सबसे ज्यादा खुश थी। कमल को देखकर जैसे भौंरा गूँजने लगता है, सुअर के खून की धार को देखकर, काले बदन पर सेमल की तरह चमकते उसके ओंठ भी गुनगुना उठे—

तेर ना नी न ओ, तेर नाना के नाँव रे।
तेर ना ना, ना ना, तेर नाना के नाँव रे॥

तेर ना ना ओ—

दूसरी औरतों ने सुकवरिया का साथ दिया, ढोलची भी मैदान में उतर पड़े, नगाड़ेवालों ने जैसे इन पर विजय पाने की कोशिश की और देखते-ही-देखतें वहाँ नाच-गाने का मज़मा जम गया। गुनियाँ ने महतू की पीठ पर एक हलका-सा धक्का दिया और आँखों तथा ओठों के सहारे कुछ ऐसी बात कही कि उससे न रहा गया। उसने दौंड़कर सुकवरिया की कमर में हाथ डाल दिया। उसकी देखा-देखी चार-पाँच जोड़े भी मैदान में उतरे और गाँव के बूढ़े इस उत्सव का आनन्द लेने में तन्मय हो गये।

ढोल और नगाड़े बजते रहे, जवान जोड़े, अपने रंगीन पैंतरे दिखाते रहे और अधेड़ औरतें अपने गुजरे जमाने की याद में मस्त उनके गीत का साथ देती रहीं। गुनियाँ और गाँव का बूढ़ा मुखिया बेहद खुश यह तमाशा देखते रहे। आज नारायणदेव ने उनकी पूजा स्वीकार कर ली थी। यह उत्सव शायद घंटों चलता यदि सुकवरिया की नजर काले घोड़े पर सवार उस गोरे अफसर पर न पड़ती। उसे देखते ही उसने नाचना-गाना बन्द कर दिया। महतू का हाथ छुड़ाकर वह बूढ़े मुखिया से जा लिपटी। बात-की-बात में सारी खुशी हवा में उड़ गयी, जैसे पूर्णिमा का पूरा निखरा चाँद काले मेघों की छाया में ढँक गया। गोरे अफसर के साथवाला दूसरा अफसर गरजा, "क्या बदतमीजी है ?" उसकी आँखों से क्रोध की चिनगारियां निकल रही थीं। सब लोग भयभीत खड़े थे। दोनों अफसरों के हाथों में पिस्तौल थी और उनके पीछे चार-पाँच सिपाही भी थे। वे हाथों में कोड़े लिये थे।

गोरा अपने काले घोड़े से नीचे उतर पड़ा। औरतों पर उसने एक उड़ती नजर डाली और अन्त में सुकवरिया पर उसकी तीखी नजर अटक गयी। सिर से पैर तक उसने उसे घूरा, उसके उभरते जोवन और दमकते चेहरे को देखकर मन-ही-मन वह न जाने क्या बुदबुदाया। साथवाले काले अफसर ने उसके सामने सिर झुका दिया, पर गोरे ने उसकी परवाह नहीं की। वह उसी बूढ़े मुखिया की ओर बढ़ा, जिससे लिपटी सुकवरिया एक सुकुमार लता की भाँति काँप रही थी।

"टुम ये किया करटा ?"—गोरे ने आँखें लाल-पीली करते मुखिया से पूछा। मुखिया उसकी बात नहीं समझ पाया। सुकवरियां को छोड़कर वह दो कदम आगे बढ़ा। बढ़कर उसने दोनों हाथों से गोरे का अभिवादन किया और प्रश्न-भरी मुद्रा में उसकें मुँह को निहारने लगा।

"क्या टुकुर-टुकुर देखता है, बदतमीज ?"

बूढ़ा अब भी चुप था। काले अफसर ने एक सिपाही के हाथ से कोड़ा छीनकर मुखिया की पीठ में दो-चार जड़ दिये। वहाँ खलबली मच

गयी। औरतें एक तरफ इकट्ठी होकर खड़ी हो गयीं। महतू को खून सवार हो गया। अपने तरकस से एक तीर निकालकर उसने अफसर को निशाना साधा ही था कि गुनियाँ ने पीछे से उसका हाथ पकड़ लिया। काला अफसर और उसके सिपाही आगे बढ़े। वे महतू को पकड़ना चाहते थे, पर गोरे ने रोक दिया। काले अफ़सर को पास बुलाकर उसने पूछा,—"ये क्या गरबर है?" काले अफ़सर ने यही बात गुनियाँ से पूछी तो उसने बताया कि, "हम लोग 'लारूकाज' मना रहे हैं।"

"लेडकाज[1]! ये क्या बाट है?" गोरे ने जिज्ञासा से पूछा। अब उसने अपना कोड़ा बन्द कर लिया था और क्रोध की जगह मुसकान आ गयी थी। यह देखकर सारे बैगा कुछ आश्वस्त हो गये थे। गोरे के साथ-वाले बड़े सिपाही ने, जो अपने सहायकों के साथ खुसमुस कर रहा था, आगे आकर साहब को बताया कि 'लारू-काज' बैगाओं का एक उत्सव है। इसे वे साल में एक बार मनाते हैं और नारायणदेव की पूजा करते हैं। नारायणदेव इन्हें विपत्तियों से बचाता है। वे प्रार्थना करते हैं कि अगले साल-भर गाँव पर कोई आपत्ति न आये।"

गोरे ने पूछा, "यह नारायन, कौन देव है?"

गुनियाँ को जैसे अब गोरे की बात समझ में आ गयी थी। बोला,—"हुजूर, ये बीमारियों का राजा है। सारी बीमारियाँ इसी के कहने से आती हैं। हमारे गाँव में भूत-प्रेत और चुड़ैल भी हमला करते रहते हैं। यह देवता बड़ा तेज है, वह इन बाधाओं से भी हमें बचाता है।"

उसने गाँव के गेंवडे पर बनी पत्थर की कोरी और झण्डे लगे स्थान की ओर इशारा कर बताया कि—"वह है हमारा नारायणदेव।"

गोरे ने सिर हिलाया, जैसे वह सब कुछ समझ गया हो। यहाँ-वहाँ उसने नजर फेंकी, उस गड्ढे की ओर जहाँ सुअर उलटा खड़ा था, अँगुली

---

१. ऊपर उत्सव का जो वर्णन कहानी में किया गया है, वह 'लारूकाज' का सही वर्णन है।

दिखाते हुए उसने कहा,—"बड़ा जंगली आदमी है, टुम लोग। कैसा जानवर को मारटा है !"

'जंगली' शब्द सुनकर गुनियाँ ने प्रसन्नता से कहा, "हाँ हुजूर, हम जंगल में रहता हैं। सुअर हमनें नहीं मारा, देवता को भेंट दी है। उसने यह भेंट मंजूर कर ली है। अब हम सब लोग यह प्रसाद खायेंगे।"

उसने महतू को इशारा किया। महतू ने सुअर को गड्ढे से निकाला और अपनी टँगिया से उसे काटने लगा। काले अफसर और सिपाहियों ने नाक-भौंह सिकोड़ी। गोरे ने कहा, "ट्रेमेन्डस ! ये आदमी बहुत बड़ा जानवर है।" काले अफसर की ओर लौटकर उसने कहा, "आज रात यहीं रेस्ट करेगा।" फिर सुकवरिया की ओर इशारा कर वह बोला, "बड़ा खूबसूरट लौंडी है।"

काला अफसर सब कुछ समझ गया। उसने अपने सिपाहियों को उचित आदेश दे दिये और सारी फौज गाँव के अन्दर चली गयी।

गाँव के बाहर दूसरी ओर एक छोटा-सा पुराना टूटा-फूटा पक्का मकान था। लड़ाई के जमाने में उसे बनवाया गया था, पर कोई उपयोग नहीं हो सका। हवा और पानी की बौछारों को सहता वह जर्जर हो गया था। गाँववाले दिन में कभी उसकी परछी में बैठ-उठ लेते, पर रात में वहाँ कोई नहीं ठहरता। वे इसे 'राजामहल' के नाम से पुकारते थे। इस महल के बारे में उस गाँव में कई क़िस्से कहे जाते थे। यहीं गोरे अफसर के ठहरने का बन्दोबस्त किया गया।

गाँव के मुखिया को जब यह खबर लगी कि यह गोरा अफसर उस जिले का सबसे बड़ा साहब है और उसके गाँव की जाँच करने आया है, तो वह कोड़े की मार भूल गया। अपने को वह धन्य मानने लगा। इतने बड़े अन्नदाता के हाथ की मार उसे भगवान् के वरदान-जैसी लगी। उसने सिपाहियों को सलाह दी कि सरकार को उस महल में न ठहराया जाय, पर किसी ने उसकी बात न मानी। मुखिया से न रहा गया। गाँव में आनेवाले हर अफसर की सेवा करना उसका काम था। वह

जानता था कि इन्हीं अफसरों के बल पर गाँव सुखी रह सकता है। यदि कोई नाराज हो जाय तो न जाने कब, किस आदमी पर, कौन-सी विपदा आ पड़े। शायद यही कारण है कि इस गाँव के किसी आदमी ने कभी अदालत नहीं देखी। गाँव के सारे झगड़े वह मुखिया बड़ी होशियारी और निष्पक्षता से निपटा देता था। उसने कभी किसी का पक्ष नहीं लिया। इसलिए सारा गाँव उसे इज्जत से देखता था। मुखिया को डर था कि यदि रात को गोरे अफसर पर किसी भूत या चुड़ैल ने धावा बोल दिया, तो उससे ज्यादा नुकसान सारे गाँव का होगा। वह मालिक है, गाँव में आग लगवा सकता है, गाँव के एक-एक आदमी को जिन्दा जलवा सकता है। वह हाथ में लाठी लिये राजामहल आ पहुँचा। दरवाजे पर उसने माथा टेका, तो गोरा अफसर बेहद खुश हुआ। आगे बढ़कर उसने मुखिया के हाथ पकड़ लिये, बोला, "अमको बहोत रंज है, टुमको कोडा मारा···अमको मुआफ कर दो।"

मुखिया ने सिर झुकाया—"यह क्या अन्नदाता ! ऐसा 'भाग' किसे नसीब होता है !"

गोरा लज्जित हुआ। उसने मुखिया को बैठने के लिए कुर्सी दी, पर उसने स्वीकार नहीं किया। वह दरवाजे को बाजू में दीवाल से टिककर बैठ गया। हाथ जोड़कर बोला, "गुस्ताखी माफ हो, हुजूर ने इस महल में ठहरकर अच्छा नहीं किया।"

गोरे ने सिगरेट की एक कश खींचते हुए कहा, "टुमारा मतलब अम नहीं समझा।"

"हुजूर"—हाथ जोड़कर मुखिया बोला, "इस बँगले में बहुत बड़ी बाधा है सरकार ! हर रात को यहाँ चुड़ैल आती है, छम-छम करती हुई। लड़ाई के बाद यहाँ कोई नहीं ठहरा। लड़ाई के जमाने में यह बँगला बना था। तब यहाँ दो पंजाबी सिपाही रहते थे। उनमें से एक तो थोड़े दिन बाद कहीं चला गया, दूसरा अकेला रह गया। वह बड़ा नेक आदमी था। सारे गाँव की उसके साथ दोस्ती थी, पर जब वह लाँजा

की बेटी झिरिया से प्रेम करने लगा, तो सारा गाँव उससे चिढ़ गया। गाँव-भर में दोनों के प्रेम के किस्से कहे जाने लगे। जहाँ देखो, वहाँ उनकी चर्चा होती थी। ठीक भी तो है, हम बैगा पराये आदमी को भला अपने जात की बेटी पर आँखें उठाते कैसे देख सकते हैं। एक दिन गाँव के सारे बैगा अपनी टँगिया और फरसा लेकर इस बँगले पर आ धमके। मैंने उन्हें बहुत समझाया, तब कहीं मुश्किल से वे माने। पर दूसरे ही दिन झिरिया की शादी एक ऐसे लड़के से कर दी गयी, जिससे वह चिढ़ती थी। जिस रात उसका ब्याह हुआ, उसी रात वह पीपल के झाड़ में फाँसी लगाकर मर गयी।" मुखिया ने सामने अँगुली दिखाते हुए कहा, "वह रहा पीपल का झाड़, जिसकी डाल में झिरिया लटक गयी थी। उसकी मृत्यु से वह पंजाबी सिपाही इतना दुःखी हुआ कि उसने अपनी वर्दी में आग लगा दी और झिरिया के साथ मरने को तैयार हो गया। गाँव-भर ने उसे समझाया, पर वह दीवाना था झिरिया के पीछे। जहाँ उसे दफनाया गया था, वह रोज वहाँ जाकर घण्टों बैठा रहता था। कई दिन उसका यही क्रम रहा और अन्त में एक दिन वह गाँव छोड़कर चला गया। आज तक फिर उसका पता नहीं लगा। जाते समय किसी से कहता रहा है कि—"झिरिया रोज रात को उससे मिलने बँगले में आती थी और उससे कहती थी कि वह उसके पास आ जाय।" पंजाबी चला गया, पर झिरिया की रूह रोज रात को इसी कमरे में, जहाँ वह सिपाही सोता था, आती है और उसे खोजती रहती है। मरने के बाद झिरिया चुड़ैल हो गयी। इसलिए उसकी रूह से हर कोई डरता है।

उसने आगे बतलाया, "मेरे घर का ही एक किस्सा है, सरकार। दो बरस पहले घर में लड़की हुई थी। मेरी बड़ी लड़की जब यह समाचार बताने बाहर आयी, तो झोपड़ी में एक उल्लू बैठा दिखा। उसे अशुभ समझकर उसने पत्थर मारा। उस पत्थर को उठाकर उल्लू भाग गया और उसके बाद से ही मेरी लड़की घुलने लगी…।"

इसी समय काले अफसर ने कमरे में प्रवेश किया, एक लम्बी सेल्यूट लगाकर बोला—"सब इन्तजाम हो गया है, सरकार। हुजूर के मन-बहलाव के लिए नाच-गाने का प्रबन्ध भी हो गया है।" फिर वह मुखिया की ओर मुड़कर बोला,—"क्यों रे, सरकार से क्या शिकायत कर रहा था ?"

"शिकायत नहीं हुजूर···।"

"हाँ, शिकायत नहीं तो क्या है, हुजूर को भय दिखाता है ? उल्लू पत्थर ले गया, तो तेरी लड़की घुलने लगी ! अभी झूठ बोलना सीख···· ।" काले अफसर ने बड़ी-बड़ी आँखें तरेरते हुए कहा।

मुखिया ने झुककर हाथ जोड़े, "सही कह रहा हूँ मालिक, उस उल्लू ने वह पत्थर पानी में भिगोकर किसी ऊँची टौरिया पर रख दिया होगा। जैसे-जैसे पत्थर का पानी सूखता गया, मेरी लड़की भी सूखती गयी। ओझा (गुनियाँ) ने बड़ी कोशिश की, पर उस चुड़ैल ने मेरी लड़की को न छोड़ा····झिरिया मरकर चुड़ैल बनी और न जाने कितने वेष में वह गाँव के चक्कर लगाती रहती है। मेरी मिहरिया गाँव में सयानी मानी जाती है। वही झिरिया और पंजाबी सिपाही के प्रेम के बीच सबसे बड़ी वाधक थी। इसी से झिरिया हम पर नाराज है और सताती रहती है। खैरियत तो यह है कि ओझा पड़ोसी है, सो रात-आधीरात मदद को आ जाता है।"

काले अफसर ने उसे डाँटा, "रहने दे ये किस्से, चला जा यहाँ से।"

गोरे ने मुसकाकर कहा, "वहूट खूब, मुखिया, अम भूट नहीं मानटा।" खिलखिलाकर हँसते हुए वह बोला, "राट को अम तुमारा चुड़ैल देखेगा।" फिर काले अफसर की तरफ मुड़कर उसने पूछा, "छोकरी का क्या ?"

"वह इन्तजाम भी हो गया हुजूर। रात को यहाँ करमा होगा, नाच के वाद सुकवरिया सरकार के कमरे में ठहर जायगी····।"

"वो टयार हो गया। खूब, टुम बहोट अच्छा अफसर है।" कहते हुए गोरे ने उसकी पीठ थपथपायी।

"तैयार कैसे नहीं होगा हुजूर? ऐसा हो तो देश का शासन कैसे चले। मार-मारकर मैंने उसके मर्द महतू से हामी भरवा ली!"

मुखिया चुप रहा। दोनों को हाथ जोड़कर चला गया। उसके जाने के बाद गोरे ने कहा, "आज अम भूट देखेगा, और कोई काम नईं करेगा। महटू को बोलो, औरट कल भेजेगा।"

"तो क्या हुजूर हम लोग यहाँ कल भी ठहरेंगे?"

अफसर ने खड़े होते हुए कहा, "ओ येस" और कमरे में यहाँ-वहाँ टहलने लगा, "ए ग्रेट नाइट····स्पिरिट····व्हाट नॉनसेंस!"

सिपाही ने आकर खबर दी कि नाचने-गानेवाले आ गये हैं और हुजूर की प्रतीक्षा की जा रही है। वह निकलकर बाहर आया। सामने के मैदान में २५-३० स्त्री-पुरुष कौड़ियों की मालाओं और आभूषणों से सजे खड़े थे। पुरुष सिर पर जंगली भैंसे के सींग और मोरपंख बाँधे थे। गोरे ने उन्हें आश्चर्य से देखा, फिर यहाँ-वहाँ नजर दौड़ायी। मुखिया कहीं न था। पूछने पर पता लगा कि उसे रास्ते में साँप ने काट खाया है। सुनकर गोरे को दुःख हुआ। वह डर गया, बोला, "स्नेक, ओ गॉड, मर गया; बरा स्वीट आदमी था····।"

गुनियाँ ने तभी कहा, "नहीं हुजूर, वह नहीं मरा।"

"नईं मरा?"···अफसर ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ सरकार, साँप के काटने से कहीं कोई मरता है। अद्धाझारे[1] के पत्ते उसने वहीं इतने चबा लिये है कि साँप का जहर क्या लगेगा! फिर घर में करू तुरइया भी वह खूब खा गया है। और मैं भी झाड़

---

१. अद्धाझारा, एक प्रकार का झाड़ होता है जिसकी जड़ लम्बी और पत्ते छोटे होते हैं। इसकी जड़ दतौन के काम आती है।

आया हूँ हुजूर, साँप ने अपना जहर वापिस लेने कह दिया है, मुखिया अभी आता ही होगा।"

गोरा आँखें निकालकर उसे देख रहा था। अपने-आप वह बोला, "अजीब आदमी है। स्नेक ने प्रोमिस किया।"

बाहर बरामदे में रखी कुर्सी पर वह जाकर बैठ गया। तभी मुखिया ने आकर सलामी ठोंकी। गोरे ने रूमाल निकालकर अपनी आँखें पोंछीं और सिर से पैर तक मुखिया को घूरा। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। बोला, "वण्डर।"

ढोलिये ने ढोल पर थाप मारी, अन्दर से सिहरती आवाज निकली, टिमकी, निसान और किंकिर भी बज उठे और जैसे ही बाँसुरी के सुरों ने हवा के लहराते झोंकों को पकड़ा कि औरत और मर्दों की टोली झूम उठी। मुखिया ने बीच में कूदकर तान छेड़ी, मर्दों ने साथ दिया— "ओ हो ऽऽऽ हाय रे हाय ऽऽऽ।" औरतों ने जवाबी स्वर छेड़े—"ये हे ऽऽऽ हाय रे हाय ऽऽ।"

धन रे अंगरिजवा
तोरी अक्कल भारी रेऽऽ, हाय रे हायऽऽऽ
अधरे चलाय रिलगारीऽऽ, हो हाय रे हाय

मर्दों ने टेक पर बल दिया—

ओ होऽऽऽऽ, अधरे चलाय रिलगारी,
हाय रे हाय रिलगारी।
पतलून पहनथे गोरा, उपर बढ़िया कोट,
पावन में बिलनैती जूता, सिर बिलनैती टोप।
होऽऽऽ हाय रे हाय, बिलनैतो टोप।

सुकवरिया ने इस गीत पर जो पैंतरे दिखाये, उसकी लचीली कमर ने नागिन की तरह जितने रंग बदले, गोरे अफसर की आँखों में छा गये। पहाड़ी नाले की तरह उचटतो और हवा की तरह लहराती सुकवरिया उस झुण्ड में अकेली दिख रही थी। गोरा रह-रहकर जीभ से अपने होंठ

चाटता और आँखें फाड़कर हरे बाँस की जवान शाखा की भाँति झूलती सुकवरिया को घूरता। गाने की तान और लय पर भी वह मुग्ध था। देहातियों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर उसका मन फूल रहा था। जहाँ कहीं समझ में न आता, वह बाजू में वैठे काले अफसर से पूछ लेता। वह तत्काल खड़े होकर अर्थ बता देता। गोरा मुस्करा देता, तो काले अफसर के चेहरे पर सन्तोष की एक रेखा खिंच जाती।

आधी रात तक नाच-गाना होता रहा। उसके वाद सब अपने-अपने घर चले गये। सुकवरिया को भी नहीं ठहराया गया। गोरा अफसर अपने कमरे में अकेला चला गया। उसके सहायक अफसर और सिपाही वाजू के कमरे में सो गये।

दो घंटे बाद जैसे किसी ने उसे झकझोर दिया। घबड़ाकर उसने आँखें खोलीं। इधर-उधर देखा और फिर सोने चला गया, पर उसे नींद नहीं आयी। उसके दिमाग में तरह-तरह के विचार चक्कर काटने लगे। तभी कमरे के दरवाजे की संध से ज्वाला की एक पतली-सी रेखा उसे दिखायी दी। ऐसा लगा, जैसे किवाड़ जल रहे हैं। वह काँपने लगा, क्या गाँव-वालों ने आग लगा दी ?—उसे कोई ग्रावाज सुनायी दी, जैसे कमरे में कोई कराह रहा है। कराहने की आवाज धीरे-धीरे और रह-रहकर आती थी। वह कभी तेज हो जाती और कभी मन्द पड़ जाती। गोरे ने देखा—आग की उस रेखा के बीच से एक लम्बा घूँघट निकाले कोई औरत उसकी ओर वढ़ी चली आ रही है। दो-चार कदम सामने आकर उसने घूँघट उठा दिया। अव उसका चेहरा साफ दिखायी देने लगा। साँवले रंग की वह जवान लड़की गले में घुँघचियों की माला पहने थी और आँखों से आँसुओं की धारा निकलकर उसके शरीर को जैसे धो रही थी। उसका चेहरा डरावना था। अंग्रेज का मुँह जैसे किसी ने बन्द कर दिया था। वह काँप रहा था और आँखों के सामने उसे क्रेवल उस लड़की का भयानक चेहरा ही दिख रहा था। उसने जैसे ही उठने की कोशिश की कि किसी ने उसके पैर पकड़कर उसे पछाड़ दिया। उसने दो-तीन

कुलाटें भरीं और बिस्तर से दूर जमीन पर जा पड़ा। नीचे गिरते ही उसके मुँह से जोर की चीख निकली।

आवाज सुनकर बाजू में पड़े काले अफसर और सिपाही लैम्प लेकर दौड़े। उन्होंने गोरे को जमीन पर अचेत पड़ा पाया। उसके सिर में चोट आ गयी थी और वहाँ से खून निकल रहा था। लैम्प लेकर महल के चारों ओर सिपाहियों ने देखा, सभी ओर गहरी शान्ति छायी हुई थी। दूर की पहाड़ी से कभी रह-रहकर पाड़े की आवाज आ रही थी।

गोरे के घायल होने की बात, सबेरा होते ही सारे गाँव में हवा की तरह फैल गयी। मुखिया ने जब यह सुना, तो दौड़कर ओझा के दरवाजे खटखटाये और शाम की सारी बात उससे कह दी। गाँव-भर में यह खबर फैल गयी कि झिरिया ने हुजूर को दबा लिया है। मुखिया ने यही बात काले अफसर से कही, पर उसने बात नहीं मानी। बोला, "हम भूत-प्रेत कुछ नहीं मानता, यह तुम लोगों का वहम है।" आखिर गाँव-वालों के बहुत कहने पर उसका बिस्तर राजामहल से उठवा दिया गया और गाँव की एक झोपड़ी में उसे शरण दी गयी।

शहर से डाक्टर बुलवाया गया। उसने आकर परीक्षा की। 'हेथि-स्कोप' लगाकर उसने कई बार गोरे को आगे-पीछे देखा, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया। वह चक्कर में पड़ गया। इतना कुशल डाक्टर, फिर भी बीमारी उसकी समझ से परे थी। दो-चार किस्म की दवाइयाँ दीं, दो-तीन इंजेक्शन लगाये, पर असर किसी का नहीं हुआ। हताश होकर उसने सलाह दी कि उसे शहर के अस्पताल में तुरन्त भेज दिया जाय।

ओझा और मुखिया वहाँ हाजिर थे। मुखिया ने ओझा (गुनियाँ) की तारीफ के पुल बाँधने शुरू कर दिये। उसने बताया कि एक बार वह एक मरे लड़के को जिन्दा कर चुका है। उसे मरे दो घंटे हुए थे। जब ओझा को पता लगा, तो उसने उसकी झाड़-फूँक की। उसके सिर से एक जुआँ निकालकर उसके खून से हवन किया। फिर उसकी भस्म को एक पत्ते में लपेटकर वह उसे नदी में बहाने ले गया। जब लौटकर आया,

तो उसने लड़के को खेलते पाया। काले अफसर ने यह सुनकर मुखिया को डाँट दिया, बोला, "बेवकूफ बनाता है, हुजूर की जान लेना चाहता है।" लेकिन न जाने क्यों डाक्टर को मुखिया की बात पर यकीन हो गया। उसने ओझा से प्रार्थना की कि वह मदद करे। ओझा जैसे तैयार बैठा था, वह गोरे अफसर की तबीयत बिगड़ने का कारण भी जानता था। उसकी इच्छा भी थी कि गोरा उस गाँव से बीमार न जाय। यदि बीमार चला गया, तो गोरा अपनी जान से हाथ धो बैठेगा और सारे गाँव पर कलंक का टीका लगेगा।

पास पड़ी झाड़ू का बड़ा-सा गुच्छा निकालकर वह जमीन पर बैठ गया। सामने एक सूप में उसने थोड़े चावल रख दिये। हाथ में पानी लेकर उसने मंत्र पढ़ना शुरू कर दिये। एक मंत्र खतम होता और पानी की अंजलि वह गोरे पर मारता। दूसरी अंजलि लेता और उसी तरह फिर मंत्र पढ़ने लगता। बड़ी देर तक यही चलता रहा। गुनियाँ ने धूप लगायी और पलंग के जैसे ही दो चक्कर काटे कि गोरा साँप की तरह अँगड़ाई लेने लगा। गुनियाँ ने आगे बढ़कर एक हाथ से उसकी बायीं कलाई पकड़ी और दूसरे से झाड़ू का टुकड़ा लेकर उसके चारों ओर घुमाने लगा।

उसने मंत्र दुहराये, जमीन पर थोड़ी लाँदा (शराब) डाली और दाहिने हाथ में पानी लेकर जैसे ही गोरे के मुख पर मारा कि उसने आँखें खोल दीं और न जाने क्या-क्या बड़बड़ाने लगा। गुनियाँ का चेहरा खुशी से फूल उठा। उसने खड़े होकर फिर मंत्र पढ़े। अब गोरा एकटक गुनियाँ की ओर देखने लगा, गुनियाँ ने उसकी आँखें बाँध लीं।

हाथ आगे-पीछे खींचते हुए उसने पूछा,—"कौन है तू?"

गोरे ने उत्तर दिया,—"झि—रि—या।"

गुनियाँ ने मंत्र पढ़ा और फिर प्रश्न किया,—"इसे छोड़, मालिक हैं गाँव के?"

नहीं, नहीं, छोड़ूंगी। मेरे पलंग पर क्यों सोया ? नारायनदेव का अपमान किया, मुखिया को मारा नहीं, मैं इसका खून पी जाऊँगी।"

"क्या कहा ?"—गुनियाँ ने झाड़ू घुमाते कहा, "खून पियेगी, मान ले, नये हैं, मालिक ने अनजान में सब किया, छोड़।"

"नहीं छोड़ूँगी।" गोरे के मुख से इतनी अच्छी हिन्दी सुनकर डाक्टर और काला अफसर आश्चर्य में थे। वे अचरज के साथ खड़े यह तमाशा देख रहे थे। गुनियाँ और झिरिया के बीच खींचा-तानी मची थी। झिरिया गोरे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी और गुनियाँ छुड़ाने के लिए कमर कस चुका था। बातचीत की खींचातानी के बीच एकाएक उठकर गुनियाँ ने गोरे के गाल में जैसे ही तमाचा मारा कि उसकी आवाज लड़खड़ाने लगी। वह रोने लगा—"मुझे छोड़ दो—छोड़ दो—।" काले अफसर को क्रोध आ गया। गुनियाँ की हिम्मत देखकर उसकी आँखों से खून चुआ जा रहा था। वह आगे बढ़ा, लेकिन डाक्टर ने उसे रोक दिया। डाक्टर बड़े गौर से सारे परिवर्तन देख रहा था। अन्त में झिरिया गोरे को छोड़ने के लिए तैयार हो गयी। एक नारियल फोड़ा गया। उसने आँखें खोलीं, सारे लोग चारों ओर घेरे खड़े थे। डाक्टर ने जब अपना 'स्टेथिस्कोप' गोरे के आगे-पीछे लगाया, तो हँस पड़ा, "आप अब ठीक हैं हुजूर !"

"ठीक हये।"—गोरा बिस्तर से उठ बैठा। उसने दौड़कर गुनियाँ को गले लगा लिया—"टुमने हमारा जान बचाया।" और दस का एक नोट बक्शीस के रूप में उसे देने के लिए आगे बढ़ाया, पर गुनियाँ ने उसे स्वीकार नहीं किया। बोला, "नहीं सरकार, हम आप का दिया ही तो खाते हैं।"

अब गोरे के लिए वहाँ ठहरना कड़ा गुजर रहा था। उसने अफसर को आदेश दिया कि—हम लोग अभी, इसी समय इस गाँव को छोड़ देंगे। आज्ञा पाते ही सिपाही तैयारी में लग गये। दोनों घोड़े कस दिये गये। गोरे ने झोपड़ी से निकलकर चारों ओर देखा, सामने राजामहल दिखायी

दिया। उसे देखते ही रात की सारी घटनाएँ उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। चलते-चलते उसने गुनियाँ और मुखिया दोनों की बड़ी प्रशंसा की और अपने सहायक अफ़सर को आदेश दिया कि दोनों को एक-एक एकड़ बेब्रर सरकार की ओर से मुफ्त दे दी जाय।

उन दोनों ने सरकार के सामने माथा झुका दिया। गोरे ने घोड़े को एड़ लगायी—घोड़ा आगे बढ़ा, तभी सामने से आती हुई सुकवरिया पर काले अफसर की नज़र पड़ी। गोरे की बराबरी से अपना घोड़ा लाते हुए उसने कहा, "हुज़ूर, खूसूरत लौंडिया ! कहिये तो साथ—।"

"नो, नो"—गोरा झल्लाया—"जानवर आडमी ! अमको खा जाएगा—अम उसको डेखना नईं माँगटा !"

घोड़े हवा से बातें करने लगे और भागते हुए जंगल पीछे छूटते गये।[1]

---

१. यह कहानी प्रसिद्ध उपन्यास 'जंगल के फूल' का आरंभिक अंश है। पहले यह कहानी लिखी गयी थी, बाद में वही बढ़कर उपन्यास बन गयी।

जलता सूरज

सूरज पहाड़ की नोक के पास अटका था, जहाँ धरती और आकाश मिलते हैं। उसका खून-जैसा लाल रंग सारी तराई में छाया था।

वह चर्च के बाहर खुले मैदान में खड़ी, इसी शून्य पर अटके, आग के गोले की तरह जलते सूरज की अन्तिम साँसों को गिन रही थी। लाल रंग धीरे-धीरे फीका पड़ता गया। उसे लगा, जैसे उसके सामने एक पर्दा-सा उतर रहा है। उसमें उसकी ज़िन्दगी के बीते दिन ताजे बनकर एक के बाद एक आ रहे हैं। यहाँ आये उसे एक बरस हो गया। अब वह एक बच्चे की माँ भी है। सारा घर उस बच्चे की किलकारियों से गूँज उठता है, पर ये किलकारियाँ....। वही तो वह हैं, जो आज भी उसे रुला रही हैं। काश, न वह यह पाप करती और न आज यह भार ढोना पड़ता।

कंगला की याद जब भी उसे आती है, एक हूक-सी उठने लगती है। जोसेफ कहने को तो उसका पति है, पर—एक साल पहले का वह आज एकदम बदल गया है। क्यों? वह नहीं जानती। पर, उसे रह-रहकर बच्चे की किलकारियाँ साल जाती हैं। कहते हैं, इससे माँ को स्वर्गीय आनन्द मिलता है, पर उसके लिए तो हर स्वर एक थप्पड़ है, गहरा चुभनेवाला तीर है और छाती की धड़कन के पास गड़ा काँटा है। उसे स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं थी कि जोसेफ इस बच्चे को पराया समझेगा और उसके साथ ऐसा व्यवहार करेगा।

गुजरे ज़माने की एक तस्वीर उसके सामने आयी।

कोई तेन्दू के झाड़ पर चढ़ा उसे जोर-जोर से हिला रहा था। पके तेन्दू बरसाती पानी की बूँदों की भाँति नीचे टपक रहे थे। तब वह कुम्हड़ाटोले के नकटा नाले से पानी भरकर आ रही थी। बड़े-बड़े और

पीले तेन्दुओं को देखकर जीभ ओठ को चाटने लगी। झुककर उसने एक तेन्दू उठा लिया, तो ऊपर से खोपड़ी पर पड़ापड़ दो-चार गिरे। काँखकर वह वहीं अरअरा गयी। ऊपर आँखें उठाकर देखा, विलियम झाड़ से उतर रहा था। विलियम उस गाँव के गायता का अकेला लड़का था और सारे गाँव में छैला बना फिरता था। चाहे जिस छोकरी को छेड़ना और उसकी चिहुँची काटना उसका खेल था। झाड़ से उतरकर उसने उसकी बाँह पकड़ ली। बोला, "तेन्दू उठाती है!" दूसरे हाथ से उसने गाल में एक हल्का-सा चाँटा मारा और उसे अपने पास खींचते हुए बोला, "गुस्सा हो गयी बंजारी! अरी, तू तो मेरी जिन्दगी है। तुझे भला मैं क्यों मारूँ। यह तो प्यार किया था तुझे!"

प्यार का नाम सुनकर उसकी घबड़ाहट हटी। गुस्सा आ गया। बोली, "बड़ा आया है प्यार करनेवाला! गाँव की हर जवान लड़की को छेड़ता है और सबसे प्यार जताता है। तेरे बाप ने गाँव पर एहसान किया है, तो उसका मतलब यह नहीं कि तू हमारी इज्जत लूटे।"

"हमारी-तुम्हारी का कैसा भेद बंजारी?" वह हौले से बोला, "हम क्रिश्चियन हैं तो क्या! मेरे बाप ने सारे गाँव को बचाया था। जब अकाल पड़ा था, तो दाने-दाने को सारा गाँव तरस गया था। तब कोई सामने नहीं आया। मेरे बाप ने खून-पसीना एक कर गाँव-भर को अनाज बाँटा। हजारों आदमी जब मौत के मुँह में जा रहे थे, तो गाँव में अस्पताल भी बनवा दिया।"

"बड़ा अच्छा किया!"—उसने दाँत दिखाते हुए कहा, "बद्दई (गुनियाँ) रोज पानी पी-पीकर तेरे वंश-भर को कोसता है। और कोसे क्यों नहीं? उसकी रोजी तो छीन ली तेरे बाप ने। जरा-सा सिर दुखता है किसी का, तो सूटवारे साहब को बुला लाता है और हाथ-भर की सूई घुसड़वा देता है।"

सुनकर विलियम ने नजर बदली। उसने दौड़कर बंजारी के दोनों हाथ पकड़ लिये। बोला, "अच्छा; तू जो कहेगी, वही होगा। साहब को

भी मँगवा दूँगा और अपने बाप का भी टिकट कटवा दूँगा। पर तू तो आँख न तरेर। कब से तेरा इन्तजार था। सोचा था, पानी भरकर नरवा से लौटेगी, तो ढेर से तेन्दू तेरे आँचल में बाँध दूँगा।"

बंजारी को यह सब अच्छा नहीं लगा। उसने हाथ छुड़ाने की कोशिश की, पर विलियम ने अपनी पकड़ कस ली थी। तब वह चिल्ला पड़ी। उसकी आवाज सुनकर सिंदीराम दौड़ा आया। वह वहीं आसपास कहीं खेत जोत रहा था और रिश्ते में बंजारी का काका लगता था।

सिंदीराम को देखकर विलियम सिर पर पाँव रखकर भागा। सिंदीराम ने बंजारी को ढाढ़स बँधाया। बोला, "रंगा स्यार है छोकरा। गाँव-भर की लड़कियों को छेड़ता है और बाप की दुहाई देता है कि गाँव-भर की जान बचायी। गाँव-भर के चन्दे से विलायती चरच खड़ी कर रहा है। कहता है—इसमें तुम्हारे देवता बैठेंगे। एक ओर बड़े देव होंगे तो दूसरी ओर हिकिर देवता बैठेंगे। माइलोटा[1] कहीं का।" उसने बंजारी के सिर पर हाथ फेरा, पर वह तब भी काँप रही थी। अभी उजाला था, इसलिए वह अकेले ही गाँव की ओर बढ़ गयी। सिंदीराम ने उसे बहुत समझाया था। उसने कहा था कि अब वह सामने नहीं आ सकता। कभी आया, तो उसकी खाल खींच लूँगा। पर बंजारी का मन बड़ा सशंकित था। उसे लग रहा था कि हर झाड़ और पेड़ के नीचे विलियम छिपा है। वह यहाँ से नहीं निकला, तो वहाँ से निकलेगा। उसका डर मिथ्या नहीं था। जब वह गाँव के गेंवड़े में पीपर के पास पहुँची, तो विलियम ने सचमुच उसकी राह रोक ली। अब की बार जब उसने चिल्लाने की कोशिश की, तो विलियम ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया। बोला, "चिल्ला मत, माफी माँगने आया हूँ। मुझे नहीं मालूम था बंजारी, कि तू मुझसे इतनी नफरत करती है। मैं तो तेरे पैरों पर अपना

---

१. माइलोटा—एक प्रकार की गाली है।

माथा धरकर जिन्दगी बिताना चाहता था। खैर, तू नहीं चाहती तो न सही, यह ले दो रुपये।"

वंजारी ने रुपये लेने से पहले तो इन्कार कर दिया था, पर उसकी अज़ीज़ी के सामने उसे झुकना पड़ा था। आज भी ये दो रुपये उसकी नजर के सामने घूमते हैं। वे दो गोल-गोल चाँदी के रुपये। उसका मन हुआ था कि उन्हें फेंक दे। वह इन टुकड़ों को डालकर उसकी इज्ज़त लेना चाहता था। पर····दो रुपये क्या कम होते हैं! उसका तापे (बाप) दिन-भर छाती मारता है, तो मुश्किल से छः-सात आने पाता है, और आवा तपती दुपहरी में खेत काटती है, तो एक पायली मक्का पाती है। दो रुपये पाना तो दूर, देखना भी दुर्लभ था। चील के घोंसले में कब इत्ता पैसा जमा होता है। उसने आँचल की गाँठ जोर से बाँध ली थी और सन्तोष की साँस ली थी। उस दिन रात-भर वह बेचैन रही। बार-बार उसके मन में आता था कि वह विलियम की छेड़खानी की चर्चा अपने आवा और तापे से करे। पर, हाथ एकाएक कमर की गाँठ में चला जाता और वह साँस लेकर रह जाती थी। रात-भर उसकी आँखों के सामने विलियम की शकल झूलती रही। उसके लहरीदार बाल, बार-बार उसे सामने दिखायी देते रहे। इस रात-भर की चिन्ता ने उसे अचानक विलियम के बहुत पास ला दिया था।

और तब, उसे वह सबेरा भी याद आ गया, जब वह माफी माँगने विलियम के यहाँ जानेवाली थी, पर वह खुद उसके घर आ धमका था। विलियम बड़ी देर तक, वंजारी के घर आकर उसके तापे से यहाँ-वहाँ की बातें करता रहा था। चलते समय उसने बंजारी को एक लाल साड़ी और एक पोलका दिया। वंजारी यह एहसान नहीं लेना चाहती थी, पर जब विलियम ने करवट बदली और उसके तापे से कहा, "पटेल, क्या बहन को भी भेंट देना मना है?" तो तापे की आँखों में आँसू आ गये थे। वंजारी को आगे बढ़कर उसकी भेंट स्वीकार करनी पड़ी।

विलियम की दी साड़ी और पोलका पहने जब वह बाहर निकली, तो सारे गाँव में हलचल मच गयी। उसे गाँव की हर निगाह अनोखी लगी। रधिया ने बेबर के पास उसका आँचल पकड़ लिया। बोली, "भाग लेकर आयी है गुनियाँ, हममें इतना गुन कहाँ ? हम तो तरसते हैं, कोई प्रेमी आकर प्यार-भरी चुटकी ले जाय।"

सिंदीराम ने उसे देखा—तो बखरना छोंड़कर दौड़ा आया। बोला, "विलियम जैसा छबीला किसकी मुट्ठी में आता है—सरपा भी तो तेरी बहन है बंजारी, कुछ गुन उसे भी सिखा दे।"

सिंदीराम की बातें सुनकर बंजारी को प्रसन्न होना था, पर वह नहीं हुई। सबको झिड़ककर वह चली गयी। टौरिया के पास वह फिर मिल गया। करौंदे की छाँव के नीचे बैठा बाँसुरी बजा रहा था। उसकी तान पर बंजारी उसी तरह मोह गयी, जिस तरह नागिन बीन पर मोह जाती है। वह आम के झाड़ के पास तक पहुँची थी कि विलियम ने तान बन्द कर दी और उसे खींचकर ले गया। बंजारी को भी तब मजाक सूझा। उसने एक चुटकी ली—"भइया....!" विलियम ने उसकी चोटी इतने जोर से खींची कि वह काँखकर रह गयी। बंजारी ने कहा, "तूने ही तो मेरे तापे के सामने मुझे बहन बनाया है। देखता नहीं, अपने भाई की दी साड़ी पहने आज बाहर निकली हूँ।"

विलियम साधारण आदमी नहीं था। वह शायद इस तरह के कई खेल खेल चुका था। हँसते हुए बोला, "नाते-रिश्ते तो मानने के होते हैं, बंजारी। जब जो मन में आया, मान लिया।" बंजारी ने प्रतिवाद किया था और कहा था कि यह बदलाहट उसी की ही जात में है। हम तो रिश्ते पर जीवन-भर चलते हैं और एक जीवन नहीं, जन्म-जन्म तक हमारे रिश्ते नहीं बदलते।" विलियम ने यहाँ भी अपनी हार मान ली। बोला, "चल, तेरी ही सहीं, बात मानने की है न ? तू मुझे अपना भाई मानना, मैं तुझे अपनी रानी मानूँगा।"

उस दिन करौंदे की उस छाँव में विलियम ने प्रेम के हजारों किस्से सुनाये। न जाने कहाँ-कहाँ की और कितनी रस-भरी बातें कीं और इन्हीं बातों की भूल-भुलैया में वह खो गयी।

बंजारी ने सहसा लम्बी साँस ली। उसके पैर दर्द करने लगे थे। गेट की दीवार का सहारा लेकर वह खड़ी हो गयी। आज उसके पास दो नहीं, कई रुपये हैं। पर जब वह रुपयों को देखती है, तो उसकी आँखें भर जाती हैं। इन्हीं रुपयों ने उसे यहाँ लाकर खड़ा किया। इन्हीं रुपयों ने उससे उसके प्यारे कंगला को छीना था। उस कंगला को, जो नाम से भले ही कंगला हो, दिल का कंगाल नहीं था।

महुआ के लाल-लाल फूल गाँव को घेरे खड़े थे, जैसे उसके कपाल में कुमकुम भरा था। हरपू पाण्डुम का त्यौहार था। नीले आकाश में पूरा खिला चाँद, वीरन के ढोल और हरपू के दिल में चुभनेवाला गीत। और इसके साथ लाँदा की मस्ती।···बंजारी को वह क्षण याद आ गया, जब नाच करते-करते कंगला ने उसका अँगूठा दबाया था। वह काँखकर रह गयी थी। उसका मन तब कितना खुश था, कंगला ने अपना प्यार जो जताया था। पर····वह प्यार !—बंजारी फिर आह भरकर रह गयी। विलियम की शकल उसे सामने घूमती दिखायी दी। उसकी मन प्रतिहिंसा से भड़क उठा। उसे लगा कि वह मिल भर जाय, तो वह उसकी खाल खींच ले।

नुका नोंरदाना पाण्डुम का त्यौहार था। गाँव-भर की कुमारियाँ रीना गा रही थीं। बंजारी अपने नाच के लिए प्रसिद्ध थी। वह घंटों नाचती, पर कभी थकती नहीं थी। उस दिन न जाने क्या हुआ कि आध घंटा नाचने के बाद ही वह गश खाकर गिर पड़ी।····और जब उसे पता लगा कि उसका पेट रह गया है, तो उसके पैरों से जमीन खिसक गयी। उसके आवा, तापे और बीर ने सिर पीट लिया। गाँव-भर की उपेक्षा उसे मिली। इतना ही नहीं, सारा गाँव यह जान गया था कि यह सब विलियम का है। गाँव-भर ने उसके तापे का हुक्का-पानी बन्द कर दिया। और किसी

का पेट होता तो चल जाता, पर वह तो परजात का था। वंजारी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया था। पर, तभी उसे विलियम की वात याद आ गयी थी, "घबड़ाने की इसमें क्या बात है वंजारी ! मैं तो तुझे अपनी रानी बना लूँगा।" उसने मन पर भारी पत्थर रखकर कंगला को भुला दिया और विलियम के हाथ गहने की बात तय की। पाप उसने किया था। वह नहीं चाहती थी कि इसकी सजा उसके आवा और तापे सहें और वे गाँव से दूर हो जायँ।

पर...., पर विलियम सचमुच रंगा स्यार निकला। बंजारी के तापे से उसने कह दिया था, "वंजारी तो मेरी बहन है पटेल ! पर है वह बड़ी छँटी हुई। मैंने उसे गाँव के न जाने कितने लड़कों के साथ घूमते देखा है। ऐसी आवारा लड़की को क्यों मेरे गले बाँधता है ?"

यह सुनकर वंजारी पहले तो सन्न रह गयी, पर फिर उसने साहस दिखाया। उसने पंचायत भरायी। पंचायत भराने का उससे क्या मतलब था, वह खुद नहीं जानती थी। उसका सरपंच विलियम का बाप ही तो था। वही तो गाँव का गायता था। जो हो, वंजारी ने बेशरम होकर सब कुछ पंचों के सामने कह दिया। विलियम सारी वातों को साफ टाल गया। बहन बनाने की बात पर वह बरावर अड़ा रहा।

सरपंच आखिर विलियम का ही बाप था न ? उस विलियम का, जो कहता था कि नाते-रिश्ते तो मानने के होते हैं ! उसने वड़ी हमदर्दी दिखायी। बोला, "कुछ भी हो, वंजारी अभी नादान है। किसी के बहकावे में आ गयी होगी। उसका कोई दोष नहीं। वह प्यार कंगला से करती थी, कंगला चाहे तो उसे ब्याह ले।"

कंगला तो तभी गाँव छोड़कर चला गया था जब उसे पता चला था कि वंजारी के पेट आ गया है। सरपंच यह वात भी जानता था। पर, जानते हुए भी अनजान बनने की उसमें आदत थी। आखिर जब कोई उसको ब्याहने को तैयार नहीं हुआ, तो वह जोसेफ के गले बाँध दी गयी। जोसेफ जाति का गोंड था, पर वह क्रिश्चियन बन चुका था और

अपने को पक्का क्रिश्ची मानता था। बंजारी अपनी जाति नहीं बदलना चाहतीं थी, पर अपने किये होता क्या है? बंजारी की आँखों के सामने वह चरच झूल रही थी, जिसके सामने खड़े होकर उसने जोसेफ का हाथ पकड़ा था, अपनी जात-पाँत वदली थी, घर-द्वार छोड़ा था और उसी के साथ वह बंजारी से वदलकर मिसेज वेंजो जोसेफ वन गयी थी।

वह रात भी उसे याद है, जब जोसेफ ने प्यार-भरी वातें की थी और वेंजो ने उन प्यार-भरी वातों में अपना सारा दुःख भुलाने की कोशिश की थीं। उसने कहा था कि वह अब इस गाँव में नहीं रहना चाहती। वहाँ का हर झाड़ उसे करौंदे का झाड़ लगता है, जिसकी छाया में उसे नागिन दिखती है। जोसेफ ने उसकी बात मान ली थी। दूसरे दिन तिर-तिरबेरा में दोनों ने वह गाँव छोड़ दिया था। वंजारी की आँखों के सामने गाँव छोड़ते वक्त के सारे दृश्य झूलने लगे। उसे वह नकटा नाला दिखा, जिसे उसने डर के मारे खुद पार नहीं किया था और जोसेफ ने गोद में उठाकर उसे दूसरी तरफ पहुँचाया था। तव उसने फिर लौटकर अपने गाँव को नहीं देखा था। पर''''जोसेफ—उसने आह भरी!

सामने सूरज अव नहीं था। बाहर हलका-सा अँधेरा घिर आया था और घर के अन्दर से बच्चे के रोने की आवाज आ रही थी। जोसेफ तव कह रहा था, "हरामजादा, मरता भी नहीं। परायी थाती सिर का बोझ वनी हुई है। एक पापिन का साथ मिला है। यह मुझे भी गड्ढे में डालेगा।"

तव चर्च के मैदान में लगे ववूल के झाड़ों की फलियाँ हवा के झोंकों से खड़खड़ा उठी थीं और अपने आँसू पोंछकर एक माँ ने चौखट के अन्दर पैर रखे थे। जिन्दगी जब तक है, जीनी पड़ेगी। काश, आज उसमें इतनी ताकत होती कि वह इच्छा करती और उसकी ज़िंदगी का चिराग हवा में लड़खड़ाकर सदा के लिए सो जाता।

●

तीर का तिनका

"बेशरम, मुरदार[1], लोंन[2] में आने की तूने हिम्मत कैसे की ?" सुगरिन ने दाँत पीसे। शिकालगीर हँसता रहा, "चला आया, मन आ गया। मरजी को कौन रोके ?"

"अवे पठिया[3], मन पता है क्या ?....चला आया नरकी पहर[4], थोंड़ी में शराब लेकर[5]। दादाल[6] सुनेगा तो......?"

'खूब,' शिकालगीर गला फाड़कर हँसा, "दादाल को ही तो बताने आया हूँ। चोर तो हूँ नहीं, न अमलू कि नडमनरका[7] घोघरा[8] के तीर प्यार की बातें करूँ, घोटुल छोड़कर बाहर जाऊँ। अरी सुगरिन, भाग सिराह पेदाग[9] का लड़का वो भी..." उसकी ओर देखकर शिकालगीर ने अपनी एक आँख बन्द की और कहा, "मिल रहा है तुझे, भाग सिराह....हाँ ?"

"शिकालगीर....!" वह चिल्लायी।

"हाँ चिल्ला, और जोर से चिल्ला।"

"कौन...पेड़गी[10] ?"

"आया है माइलोटा[11] कहीं का, दादाल।"

'अरी, नाम भी है उसका ?"

"कौन पाप मोल ले नाम लेकर नासकटे का ?"

बूढ़ा खाँसता हुआ भीतर से बाहर चला आया। फरके पर नजर गयी तो अपने-आप खुश हो गया, "तू अरे तू, है शिकालगीर....?"

---

१ एक गाली...नपुंसक। २. घर। ३. सूअर का बच्चा। ४. सुबह। ५. थोंड़ी—वांस की बनी एक सुराही होती है। थोंड़ी में शराब भरकर किसी लड़की के घर जाने का मतलब है, उससे प्रेम जताना। ६. बाप। ७. आधी रात। ८. प्रपात। ९. गाँव का मुखिया। १०. लड़की। ११. एक गाली।

"हाँ, दादाल।"

आगे बढ़कर बूढ़े ने उसे गले लगा लिया। सुगरिन की ओर देखकर बोला, "इसी पर आग उगल रही थी ?"

सुगरिन ने अपने बत्तीसों दाँत पीसे और दोनों हाथों की अँगुलियाँ फोड़ीं। बिना कुछ कहे एक तीखी नजर डालकर वह फरके के बाहर चली गयी।

दोपहर को लौटी। बूढ़ा गैल हेर रहा था। शिकालगीर चला गया था। थोंड़ी दरवाजे पर लटक रही थी। सुगरिन ने उसे खूँटी से निकाला। उसमें लांदा थी। एक ही घूँट में वह सब गटगटा गयी और थोंड़ी को दूर फेंककर भीतर चली गयी।

"पेड़गी ?"

"हाँ, दादाल।"

"बड़ी विचित्र है री, थोंड़ी से परहेज करे पर लाँदा गट-गट गले में ढाल जाय !"

"हाँ दादाल····अबेर-सबेर कुछ नहीं दिखता उसे। पीछे पड़ा है, मुरदार। हाट गयी थी तो गैल में छेड़खानी करता था। एक फुँदरा ले आया·····जाने कहाँ मिल गया उसे······मेरे हाथ में देकर कहता था, गले में बाँध ले, सुगरी। खुद बाँधता, पर तू तो बछेड़ी-जैसी लात मारती है····।"

"तूने बाँधा ?"

"सरग की बात करता है, दादाल। उसका फुँदरा मैं बाँधूं ? आग लगा दी मैंने तो ?"

"सुगरी....!"

"तेरी जीभ काहे को जलती है, दादाल ? तू क्या चाहता है, मैं अच्छी तरह जानती हूँ। कोई तापे[1] है ऐसा, लड़की के गले में जो फाँसी का फंदा लगाये। तू दमघोंट देगा मेरा, दादाल। क्या मिलेगा तुझे ?"

---

१. बाप।

बूढ़ा सुगरिन के पास आ गया था। उसके कन्धे पर उसने हाथ रख दिये थे और आँखों से टपटप आँसू बह रहे थे। आँसू देखकर सुगरिन का मन नरम हुआ, "तू रो रहा है ?"

"हाँ, नियाल[1]। पत्थर के आँसू गिर रहे हैं। तू जानती है, तेरी यायते[2] मर गयी, मैं रोया तक नहीं। तीन मिहरिया और लाया—एक मर गयी, एक को वाघ खा गया, एक भाग गयी ! मैं तव भी हँसता रहा। पर....!"

"......पर आज रो रहा है ?"

"हाँ सुगरी, रो रहा हूँ, तेरे लिए—तू पोगरी[3] जो है और हर आदमी
उससे प्यार करता है। शिकालगिर को देखती है, तो तू नाक-भौंह
सिकोड़ती है, पैर फटकारती है। यह जानती है कि उसके तापे का करजा
है मुझ पर। भाँड़ी[4] में जीता था, उसने छुड़ाया। उसकी मिहरिया केआँग[5]
रह गया, वह भी मेरा। जिसने जावा[6] दी, उसे मैंने विष पिलाया। उसकी
मिहरिया ने जनम दिया उदलिन को। दूसरे दिन उसके खसम ने हत्या कर
दी, खुद पुलिस में जा बैठा और फाँसी के तख्ते पर झूल गया। फन्दे में
जाने के पहले भेंट की थी मैंने। उसे देखकर मेरे आँसू नहीं रुके। अपराध
मेरा और सजा यह भुगत रहा है ! मेरा पाप और उसके सिर। मेरा
सिर उसके सामने झुक गया और मैं अपराधी की तरह खड़ा हो गया।
पर उसे जैसे कोई दुःख-दर्द नहीं था। वह मुस्करा रहा था। मुझे देखकर
वह जोर से हँसा। बोला, "पागल है क्या ?" उत्तर मुझे कुछ सूझा नहीं।
मैं जानता था कि इसके भीतर भारी दर्द है। ऊपर से यह मुस्करा रहा

---

१. बेटी। २ मां। ३. मूलधन।

४. गोंड़ों में एक प्रथा है। जब कोई आदमी अपने आदिवासी साहूकार का कर्जा नहीं चुका सकता, तो उसके यहां कर्ज के बदले नौकरी करने लगता है। इसे भांड़ी में जीना कहते हैं। भांड़ी में जीनेवाले पुश्तैनी चलते हैं।

५. गर्भ रह जाना। ६. पेज।

है। उसकी मुस्कराहट मुझे मार गयी। मुझे लगा, वह एक भारी दर्द से कराह रहा है और उसकी मुस्कराहट मेरे ऊपर एक भारी व्यंग्य है। आगे बढ़कर मैंने उसे ढाढ़स बँधाया। बोला, "सुख से मर बुरजहा, मेरी एक नियाल है। उसे तेरे वंश को दे दूँगा। तेरा दूध लौटा दूँगा। तेरा करजा चुका दूँगा।"

मेरी वात सुनकर उसकी मुस्कराहट गायब हो गयी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अपने-आप बहने लगीं। सिसकता हुआ वह बोला, "शिकाल-गीर का अब और कौन है ? तेरा ही बेटा तो है वह···!"

जिहलवालों ने और ज्यादा बातें नहीं करने दीं। आँसू बहाता मैं बाहर आ गया और तभी से शिकालगीर को मानता आ रहा हूँ। तुझे यह बचपन में बता चुका था, इसलिए कि तू घोटुल में भले ही जाये, पर अपना जी न बेचे। एक बड़ा करजा है, उसे चुका न सका तो शान्ति से मर न सकूँगा, बेटी।"

"यह नहीं होगा, दादाल। तुम्हें तभी मेरा गला घोंट देना था।" वह जोर से चिल्लायी।

बूढ़ा उठकर खड़ा हो गया। धुँइगा[1] निकालकर उसने चिलम में भरी। चकमक से उसने आग जलायी और धुआँ छोड़ते बाहर चला गया। उसका धुआँ बादल बनकर सुगरिन के सामने छा गया। धूल का एक गुब्बारा उठा और वह जैसे उसके पीछे लग गया।

"भूत रे भूत ! उड़ा जा रहा है। दूर भागो !···बच्चे ताली पीटकर हँसने लगे।

पोरद[2] सो गया। धरती की धूल और आकाश के घेरे में उसका उजाला खो गया था। बालों की जाल की तरह अँधेरा फैलने लगा था।

चूँ चररररर मर्र्र्र्र्र चूँ चर्र्र्र्र्र।

---

१. तम्बाकू। २. सूरज।

घोटुल का फाटक खुला। आग की रोशनी में चेलिक और मोटि-यारियों[1] के चेहरे खिल उठे। एक दूसरे ने जुहार की। अपनी गीकी[2] भीतर जाकर सबने बिछा दी :

"सिरपुल हेलो डोरी निंदबेके दाकाट रोय।
साँगो निदबेके काकाट रोय ?[3]"

अमलू ने पूरा गला खोल दिया था। वह हँस रहा था। उसके दुधिया दाँत अँधेरे में चमक रहे थे। गले का डगरपोल[4] दूर से दिख रहा था। सारे चेलिक और मोटियारियों ने गीत का साथ दिया, पर सुगरिन का गला न खुल सका। उसेकी आँखों में हलके आँसू थे। वह आँख भर-कर अमलू को देख रही थी।

गाना खतम हुआ। अमलू ने सुगरिन का हाथ पकड़ा, जैसे खेत का बाँध फूट गया। वह सिसक-सिसककर फूट पड़ी। घोटुल में और भी तो सदस्य थे। सबने उसे घेर लिया : क्या हो गया ?

"अरे, यह तो रो रही है ?"

"हाँ री, आज न तो इसने पाटा[5] गाया और न एकदाना[6] में भाग लिया। रोज तो बछेरी-सी उचकती थी और ढोल-सी चिल्लाती थी।

"बेचारी !"

"क्या हुआ सुगरिन ?"

"चल रे बाहर चलें।" वह सिसकती गयी और अमलू को घोटुल के बाहर ले गयी। टोंगी पर दोनों सिमट गये। अमलू की गोद में अपना सिर रखकर वह जी भरकर रोयी, रोने से जी हलका हो जाता है, शायद इसलिए।

---

१. घोटुल के सदस्य—लड़के और लड़कियाँ। २. चटाई।
३. घोटुल में गाया जानेवाला एक गाना, जिसमें चेलिक और मोटियारियाँ जवाब-सवाल करते हैं—'मीत तू कहाँ जा रहा है ?' आदि-आदि।
४. चेलिकों द्वारा पहनी जानेवाली गले की माला। ५. गीत। ६. नाच।

"मेरा पाण्डुल[1] होगा उससे अमलू ! तेरे साथ दस बरस बिताये हैं। पाँच बरसों से तेरी गोकीयार[2] हूँ। चटाई कितनी बदलीं, पर बदल-बदलकर तेरे ही पास आयी हूँ। मातल के सामने मैंने कहा था तुझसे, 'कसम खा, हम एक रहेंगे।' तूने झट सिर झुका लिया था, 'मैं तो रहूँगा, अपनी कह।। तू लड़की जो ठहरी।' सच कहा था रे तूने, लड़की और गाय में क्या अन्तर !"

अमलू की आँखें भर आयीं। वह सुगरिन के सिर पर हाथ फेरने लगा।

"अब क्या होगा, जीवाल[3] ?"

"........।"

"कुछ तो कह ?"

"क्या कहूँ ? चुड़ैल बनूँगी....।"

"नहीं सुगरी, हिम्मत वे हारते हैं, जो कायर हों। लिंगो[4] ने हमें जिन्दगी दी है। जीने के लिए। मरकर चुड़ैल बनने के लिए नहीं।"

"तो तू चाहता है कि मैं शिकालगीर की हो जाऊँ ?"

"यह तो मैं नहीं कहता और न चाहता। मैं तेरे तापे से।"

सुगरिन ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया, भूलकर भी नहीं, अमलू। वह तो उसके साथ मेरा पाण्डुल रचाये बैठा है। उसका करजा चुकाना है न उसे।"

"तू मन कड़ा कर, सुगरिन। पंचायत कहाँ गयी है। हम वह भी भराएँगे।"

सुगरिन हँसी। साँय-साँय करती रात के सन्नाटे में उसकी हँसी दूर तक विखर गयी, 'तू अन्धों से सरीं पूछता है। पंचायत तो गाँव की है न। पंचतोर गायता है। ये सब समाज की दुहाई देनेवाले हैं। धरती पर रहते हैं न—उस धरती पर जहाँ धरम नहीं है। यह धरती कभी हरे

---

१. ब्याह। २. चटाई में साथ सोनेवाली। ३. प्रेमिका। ४. एक देवता।

जंगलों को छाती पर लेकर इठलाती है और कभी उन्हीं को जिन्दा जला देती है। समाज भी धरती का रिश्तेदार है रे! दादाल ने तो थप्पड़ मार दिया। उसे करजा जो चुकाना है।"

अमलू कुछ न वोला। बोलता भी क्या?

दोनों घोटुल में लौट आये। सब शायद राह हेर रहे थे। सिरदार[1] से दोनों ने चर्चा की। उपाय पूछा। उसके पास उपाय हो, तो वताये। उसने दोनों को आशीर्वाद दिया, "भूल जा सुगरिन, तू सव भूल जा। कभी यहाँ रही है, यह भी भूल जा। कभी अमलू से मिली है, यह भी भूल जा। यह तो जनम-जनम से चला आ रहा है। हम घोटुल में साथ रहते हैं। साथ सोते हैं। साथ खेलते-खाते हैं और फिर ऐसे बिछुड़ जाते हैं, जैसे कभी मिले न हों। हमी नहीं, यह घोटुल भी हमें छोड़ देता है, सुगरिन।"

सुगरिन के कान फट गये। वह भीतर चली गयी और अपनी गीकी से लग गयी। रात-भर वह सिसकती रही और कोल्हिया[2] के रोने की आवाज सुनती रही।

सुगरिन को न अमलू रोक सका, न गाँव के बड़े-बूढ़े। घोटुल के दरवाजे पर जाकर उसने जांवा और हलदी चढ़ायी। सिर झुकाकर उसकी पूजा की—पूजा करनी है, बस, इसलिए। उसका मन बार-बार कसकता रहा, दंतौरी-सी बँधती रही—वह पत्थर की पूजा करे। जिस घोटुल में बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर वह आयी थी, उसी ने दुलत्ती मार दी।

उसने लम्बी साँस ली। सिर ऊपर उठाया, तो नजर अनजाने वहाँ चली गयी, जहाँ उसकी गीकी रोज बिछती थी। उससे ही सटी अमलू की गीकी होती थी। घोटुल के हर चेलिक का साथ उसे देना पड़ा है,

---

१. घोटुल का मुखिया। २. सियार।

पर मन अगर किसी ने बाँधा, तो वह अमलू था। आज वह भी टूट रहा है :

नियारा मनदाना लोनी रोय हेलो,
लोनी गाजुर हिध्द रोय हेलो,
रेलो रे रेला रेला रे रे रा रेला हो[1]।"

सखियों ने गीत गाकर सुगरिन को विदा दी। रात को नाच-गाना हुआ।

मोटियारियों को नयी पड़ियाँ[2] दी गयीं। सब ने मिलकर सुगरिन के बाल गूँथे। दर्जनों पड़ियाँ खोंसी। हँसते-खेलते चेलिकों ने उससे मजाक किये। अमलू भी उसमें शामिल था। उसके चेहरे पर चिन्ता की कोई शिकन नहीं थी। वह उस जमात में ऐसा मिल गया था, जैसे अँधेरे में काजल। घोटुल की बेलोसा ने एक पुदेगोट[3] सुगरिन के हाथ थमा दी। अब उसके लिए ये सबसे नाजुक क्षण थे। एक-एक कर वह सारे चेलिकों को धुइँगा बाँटेगी—कोई नहीं बचेगा, पर वह उसे कैसे दे सकेगी?—कैसे? क्या दे भी सकेगी धुइंगा?

खड़ा देखकर सिरदार ने आवाज दी। उसे आगे बढ़ना पड़ा। सुगरिन ने अपना मन पत्थर बनायाऔर एक तरफ से धुइंगा बाँटना शुरू कर दिया—रतन, भोला, पहाड़ी, बुधवा···और···और उसके पैर अपने-आप अड़ गये। उसकी मुट्ठी नहीं खुल पायी। मन भी कितना विवश है, न जाने कब, कहाँ हाथ से छूट जाये। वह किन हाथों से अमलू को धुइंगा दे—उस अमलू को, जो····। अचानक ही भूली-बिसरी बातें उसके दिमाग में उतरने लगीं। कभी सोचा था यह उसने? उसका सारा शरीर काँप गया। सब लीक पर खड़े-से जान पड़े—नहीं, अब वह कुछ नहीं देख

१. घोटुल से विदा होते समय गाया जानेवाला गीत—'यह तुम्हारा घर था। तुम्हारी बातें कितनी मधुर थीं।'

२. कंघियाँ। ३. तम्बाकू रखने की डिबिया।

सकती—देखेगी भी नहीं। देखे तो कैसे? सहसा पुदेगोट उसके हाथ से छूटकर नीचे गिर गयी।

अमलू चौंक पड़ा। उसने ऊपर सिर उठाकर देखा। सुगरिन की खरगोश-जैसी नन्हीं आँखें बड़े-बड़े मोती टपका रही थीं। अमलू एकाएक आगे बढ़ गया। उसने पुदेगोट जमीन से उठाकर उसके हाथ दे दी। बोला, "ले सुगरिन, धुइँगा[1] दे।"

"तुझे!" सुगरिन का मुँह सूखे दर्रे की तरह खुला रह गया। अमलू तब पत्थर हो गया था, "हाँ, मुझे क्यों नहीं देगी? क्या मैं इस घोटुल का चेलिक नहीं।"

सुगरिन ने अपनी दयनीय आँखों से उसके चेहरे को देखा। थोड़ी देर वह देखती रही। फिर उसके निर्जीव हाथ लकड़ी की तरह सीधे पसर गये। उसे विरक्ति-सी हो गयी। उसे लगा कि वह अमलू की हथेली में एक जलता हुआ अंगार रख दे।

कल तक प्रेम की बात करता था, आज भूल गया। वह शायद उसके मन की विथा को नहीं समझ सकी थी। समझती कैसे? मन की गहराई में भला कोई उतरा है? उतर सकता है? समन्दर जित्ता गहरा होगा, ऊपर से उत्ता ही शान्त। नीचे कितनी गरम-ठंढी धाराएँ उसमें बहती हैं, वही जाने जो गोते लगाये। सुगरिन गोता न लगा सकी। ऊपर-ही-ऊपर तैरती रही। अमलू भी यह चाहता था। जब डोर टूट रही है, तो गाँठ क्यों बाँधी जाय?

सुगरिन ने दाँत पीसे। उसे लगा, उसका प्रेम छला जा रहा है और प्रेम की छली औरत पत्थर होती है। उसने ढेर-सी धुइँगा अपनी मुट्ठी में ली और अमलू की हथेली में रखकर आगे निकल गयी। बेलोसा उसे सम्हालती, पर तब तक वह घोटुल छोड़ चुकी थी। उसका अँधेरा रंग, अँधेरी रात में समा गया था।

---

१. तम्बाकू।

क्रिहें क्रिहें क्रिहें···· ।

फट्टे पर लड़की चिल्ला रही थी ।

"हाँ आवा ।"

"हाँ नियार, कौन ? तू बुधिया ?"

"हाँ आवा ।"

"कहाँ से आ रही री ?"

"घोघरा के तीर से । जकरी भी गया था । आज हम दोनों घूमें आवा ।"

"बुधिया····?" माँ ने जोर से दाँत पीसे । आवाज निकालने में उसने अपना पूरा गला फाड़ दिया था । बुधिया काँप उठी थी—कड़कड़ाती ठंढ में जैसे कोई नंगा वदन काँप जाता है ।

"कित्ती बार कहा तुझसे, जकरी से ज्यादा न मिल । बस उतना ही सम्बन्ध रख, जितना घोटुल में जीने के लिए जरूरी है । और भी चेलिक हैं वहाँ, उन्हीं में से एक समझ उसे ।"

"क्यों आवा ?" बुधिया अपनी माँ से भरपूर प्यार करती थी । बोली, "हम दोनों तो पाण्डुल का निश्चय कर चुके हैं, आवा । जकरी मेरे लिए साधारण चेलिक नहीं है···· ।"

"चुप रह," माँ ने आगे वढ़कर तड़ातड़ चार चाँटे उसके गाल में जड़ दिये, "खबरदार, कभी ऐसा कहा तो ।"

बुधिया का न तो मुँह खुला और न उसकी आँखों से आँसू ही निकले । वह दायीं हथेली से अपने गाल सहलाती रही और आँखें फाड़कर अपनी आवा को देखती रही, जिसकी सिकुड़ी-सी आँखों की कोरें लाल थीं । पर, भीतर का भाग सफेद था और जो अब भी उसे बड़े प्यार से अपनी गोद में उठा लेती है । पन्द्रह वरस की लड़की का वजन नहीं सम्हलता, तो उठाकर उसे धीरे से जमीन पर पटक देती है, "कित्ती बड़ी हो गयी री और मैं तो उत्ती ही हूँ । अब और हल्की हो गयी हूँ····तू जो भारी हो गयी । खून तो इसी देह का है ।" बुधिया तब माँ को गोद में उठा लेती

है और चाई-माई करने लगती है। प्यार में आकर माँ उसे पीटना शुरू कर देती है। दोनों खूब हँसती हैं, इतना कि पेट में वल पड़ने लगे।

माँ ने मार तो दिया, पर उसका मन तड़प उठा। उसने अपने हाथों अपने जी में काँटा चुभोया था। दर्द उमड़ आया। बुधिया को गोद में लेकर उसने छाती से चिपका लिया। उसके गाल चूमे, "बीते दिन याद आ जाते हैं, बुधिया। सोलह वरस पहले तेरी तरह मेरा भी एक साइगुती[1] था। खूब खेली उसके साथ, पर छली गयी। यहाँ कोई हमें हँसता नहीं देख सकता। हम सब मक्खी की तरह हैं। कब कौन पीसकर मिटा दे, क्या पता ? जो मुझ पर बीती है, तुझ पर बीते, बुधिया। लोग सोचते होंगे कि मैं अपने नये घर में आकर ऐसी समा गयी, जैसे कभी कुछ हुआ ही नहीं। पर दिन-रात, हर घड़ी उस भूली हुई दस बरस की जिन्दगी के हर छन आँखों के सामने छन-छनकर आते हैं। उन्हें नहीं भूल पाती। दस वरस की लम्बी कहानी कोई कैसे भूले। भुलाने के लिए दस जनम चाहिए। इन यादों को न कोई देख सकता है और न कोई पहचान सकता है। जहाँ के नाते जिस्म से जुड़े हैं, वहाँ अन्दर की बात पहचानेगा भी कौन—कैसे ? वही देखे—जाने जिसके पास दो आँखें हों और मरद जात के पास वे हैं नहीं। हमारी कोई बिसात हो तो भी ठीक। हम औरत हैं न—नदी के तीर का तिनका। टोंगी के नीचे की चींटी। सम्हलना हमारा काम है। न सम्हलें, तो मौत खड़ी है। मरें तो चुड़ैल बनें। जनम लिया, मुसीबत—जिओ तो खुद अपना खून पियो। मरो तो दूसरों का खून चूसो। हमारे भाग में खून के साथ खेलना ही वदा है, बुधिया।"

"जानती हूँ, आवा। तेरा सब किस्सा जानती हूँ। पर मेरे साथ तो ऐसा कोई बन्धन नहीं है।"

---

१. साथी।

माँ फिर कठोर हो गयी, "बन्धन किसी को बताकर नहीं आते पेड़गी।"

वह कुछ और कहती, पर दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। वह बाहर आयी। जकरी खड़ा था। उसने देखा, तो क्रोध से जल उठी। वाड़ी में लगे सूखे बाँस का एक टेनपा उखाड़कर उसने जोर से जकरी के सिर पर दे मारा, "खबरदार, कभी आया तो।"

"आवा....." जकरी सिर पर हाथ रखे दर्द-भरे स्वरों में कुछ कहना चाहता था, पर तब तक सुगरिन ने एक बड़ा-सा पत्थर उठा लिया था, "जिन्दा न जाएगा रे, जमीन से तेरे पैर न उठे तो।"

जकरी ने घबराकर मुँह फेर लिया। बुधिया दरवाजे पर खड़ी चुपचाप यह सब देखती रही। सुगरिन तब भीतर आ गयी। उसने भीतर आकर चौखट से सिर पटक लिया। जो खून निकल रहा था, गदेली से समेटकर उसने चाट लिया।

दूसरी लड़की अब भी जोर से रो रही थी :

किहें किहें किहें।

कहाँ कहाँ कहाँ।

नयी दुनिया में आकर वह तड़प रही थी, पर माँ बेहद खुश थी। उसने दौड़कर उसे अपनी छाती से लगा लिया।

वह घर कैसा, जहाँ बच्चे के रोने का शोर न हो!

हिरौंदा

वह नाव की एक कगार में खड़ी थी, दूसरी ओर उसका खिवैया पतवार लिये बैठा था, पर लहरों के हिचकोलों से रह-रहकर नाव डगमगा उठती थी। न जाने कव, कौन लहर, नियत के किस चक्र से आ जाय, उसे अपने में समेट ले और जिस आशा को उसने अपनी मुट्ठी में मुश्किल सें बाँधा था, छूटकर बिखर जाय। नीले पानी में उसे अपसी परछाइं दिखायी देती थी। इस परछाइं में भूली-बिसरी जिन्दगी के न जाने कितने चित्र बनते और विगड़ते, जैसे वर्षों का लेखा-जोखा वहाँ लिखा जा रहा है।

जमाना गुजर गया। तिलईपानी की गलियों में जैसे जिन्दगी वहती थी। जहाँ से वह निकल जाती, एक चिराग जल उठता, उसके जाते ही पूनों की रात सूनी और अँधेरी लगती। पके मका के रेशों-जैसे सफेद बालों में भी हलकी-सी हलचल हो जाती, तव जिनकी उमर अभी-अभी उठ रही है उनका क्या कहना? भेंड़ का रेड़ लेकर वह गलियों से गुजरती थी तो न जाने कितने उसके हमदर्द बनते थे, न जाने कितने अड़कर रास्ते में खड़े हो जाते थे।

आज भी जब वह लौटी, सूरज का मुँह तब तवा-जैसा लाल था। गेंवड़े पर उसने रेड़ की रास ढील दी। एक लम्वी हकार लगायी। भेंड़ों ने जैसे ही आजादी पायी कि अपने-अपने गैल-घर की तरफ थूंथने मोड़ दिये। कोरी के पास पचलू से भेंट हो गयी, बोला, "आज तो बछेरी बनी है री।"

"हाँ दादा"—हिरौंदा के दाँत उस झुटपुटे में भी चमक रहे थे। लाल तुरई के फूल-जैसे उसके ओंठ अपने आप वज उठे।

"सो क्यों ?" पचलू ने पूछा, तो वह जी खोलकर खिलखिलायी और अपने नाक-नक्शे को विचित्र ढंग से बनाकर, हाथ में गुलेल खेलते वह मेंढ़क की तरह आगे उचट गयी। पचलू खड़ा देखता रहा। गेंवड़े के मोड़ पर संतू का कुत्ता था। उसे देखकर भौंकने लगा तो उसने कान पकड़कर दो थप्पड़ उसके सिर पर जड़ दिये—"दुर्र रे—" और वह दुर्र हो गया। कुत्ता तो भाग गया, पर पीछे से सन्तू ने उसके हाथ पकड़ लिये, बोला, "मेरे जानवर को दलकारती है !"

"दलकारूँ नहीं तो क्या पूजा करूँ। भला तू ही बता, उसे क्या पड़ी थी कि वह मेरा रास्ता रोके ?"

सन्तू मुँह से कुछ नहीं बोला, खड़ा-खड़ा हिरौंदा को निहारता रहा। वह क्या देख रहा था वही जाने, पर दिसा-फिराकत से पटेल हाथ में लुटिया लिये लौट रहा था। उसे देखकर दोनों उत्तर-दक्खिन चले गये।

हिरौंदा उस रात सो नहीं सकी। नदिया के तीर की कगारें रह-रहकर उसकी आँखों में झूलती थीं। वह एक पत्थर पर बैठी चुल्लू से पानी पी रही थी कि सामने छप्प की आवाज हुई। घबड़ाकर उसने देखा—भारी सांभर था वह। चिल्लायी तो छिवला की डाल हिलाता जरपू घटिया से नीचे उतर आया। तरकस से एक तीर निकालकर उसने ऐसा निशाना साधा कि पानी पीता सांभर वहीं मछली की तरह तड़पने लगा। जरपू ने कमर-भर पानी से नदिया पार की। फरसे से जब सांभर ढेर हो गया, तो उसने गले के पास मुँह लगाकर खून पीना शुरू कर दिया। हिरौंदा देख रही थी। उसे यह सब अच्छा नहीं लगा, वोली, "जानवर है रे।" ज़रपू की जीभ खून चाटने में लगी थी, उसने सुनी-अनसुनी कर दी। हिरौंदा के मन ने भी विद्रोह कर दिया था। नदिया पार कर वह पास पहुँच गयी। पीछे से उसने जरपू को एक धक्का दिया, "यह क्या कर रहा है रे ? घर ले जा तो बियारी में उसका सोंधा-सोंधा मांस छन जाय। तू तो शेर बना है।"

जरपू तन कर खड़ा हो गया। वह जीभ बराबर ओठों पर चलाता रहा। बोला, "आज शेर भी आ जाय तो खून पिये बिना न छोड़ूँ री।"

"धत्त तेरे की—आदमी है!" हिरौंदा ने दोनों हाथ उसके कंधे पर दे मारे और बनावटी हँसी में दाँत निकाल दिये।

जरपू ने फिर उचाट भरी, नदिया के उस पार पहुँचा। छिवला की डाल से तूम्बा निकाल लाया और गटगट कर शराब पीने लगा। आधा तूम्बा उसने एक ही साँस में खाली कर दिया। उसने मुँह जब तूम्बा से निकाला तो हिरौंदा ने और शराब पीने से उसे रोका, "ज्यादा हो जायगी रे!" जरपू हँसा। उसने हिरौंदा के दोनों हाथ पकड़ लिये और तूम्बा उसके मुँह में जबरन लगा दिया। हिरौंदा को शराब पीनी पड़ी। जब तूम्बा खाली हो गया, तो जरपू ने उसे जोर से उत्तर दिशा की ओर फेंका—"जा, रे ठिकाने लग।"

तूम्बा घटिया के पार कहीं छिप गया।

हिरौंदा और जरपू दोनों मस्त थे। नये लांदा की नयी शराब भला अपनी गुलाबी छोड़ सकती है। दोनों ने उतरकर नदिया में खूब गोते लगाये। दोनों झूमते जब पानी से निकले, तो बुढ़िया ग्वालिन दही बेच-कर उसी रास्ते गाँव लौट रही थी। इन्हें देखकर वह खड़ी हो गयी, पर हिरौंदा ने अपनी जीभ बाहर निकालकर उसे चिढ़ाया और जरपू का हाथ खींचकर ले गयी। बुढ़िया ग्वालिन अपने-आप कुछ बुदबुदाती चली गयी।

झुरमुट में दोनों बैठे बातें कर रहे थे। हिरौंदा ने कहा, "तुझ पर तो मैं जान देती हूँ रे, पर दईमारा सन्तू हाथ धोकर पीछे पड़ा है। रोज मेरी देहरी छूता है और वीर के कान भरता है। वीर है सो उस पर जान देता है। जान क्यों न दे, दोनों चिलमभाई जो ठहरे—दमभाई, सो सगा भाई।"

"तू भी मच्छर की बात करती है, एक हाथ में पिसकर पानी हो जाय। तू भर अपना मन न डुलने दे, देखता हूँ तुझे कौन ब्याहता है।"

हिरौंदा का मन फूल उठा। उसने जरपू की गोद में अपना सिर रख दिया।

' गाँव-भर में खबर थी कि तिलई के जंगल में भारी शेर आये हैं। तीन बार हाँका हो चुका, पर शिकारियों के हाथ एक भी शेर नहीं आया। इस बार जो अफसर आया था, उसने जरपू का हाथ गहा। उसे शराब पिलायी, उसकी पीठ थपथपायी, बोला, "तू तो खुद शेर है रे। सांभर का खौलता खून पीता है।"

तारीफ सुनकर जरपू बाँसों उछला, बोला, "हुजूर, चुटकी बजाते बुला दूँ। वह तो कुत्ते हैं कुत्ते।"

शिकारी ने पाँच का एक नोट उसके हाथ रख दिया। गाँव-भर में ढोल पीट दी गयी कि आज हाँका होगा, सब अपने जानवर जतन से रखें।

रात जब साँय-साँय करने लगी, तो घने जंगल में शिकारी अपने दो साथियों के साथ मचान पर बैठा और जरपू नीचे चारों ओर देख रहा था। उसने मंतर पढ़कर तीन बार आवाज लगायी और देखते-देखते एक साथ तीन शेर मैदान में कूद पड़े। तीनों हिरन-जैसी चौकड़ी भर रहे थे कि शिकारी ने एक साथ तीन गोलियाँ दाग दीं। दो शेर तो साफ बच निकले, एक घायल होकर गिर पड़ा। उसने तीन कुलांचें भरीं, जोर से गुर्राया और लंगड़ाते हुए भाग गया। शिकारी उसके पीछे दौड़ा तो जरपू ने रोक दिया, बोला, "हुजर, जान खतरे में है, जल्दी मत करो।"

"शिकारी जरपू का लोहा तो मान ही गया था। उसके बुलाने से एक नहीं तीन शेर आये थे, न जाने इसके पहले शेरों का मुँह देखने के लिए ही कितनी कोशिश की गयी थी। शाल की एक लकड़ी हाथ में लेकर जरपू उस ओर बढ़ा, जिधर शेर भागा था। नाले के किनारे बेरी के झुरमुट के पास खड़े होकर फिर उसने मंतर पढ़े और आवाज लगायी तो घायल शेर गुर्राता-लुढ़कता बाहर आकर मैदान में खड़ा हो गया।

वह शिकारी पर झपटना ही चाहता था कि गोली उसके कलेजे के पार हो गयी और वह वहीं निर्जीव हो गया।

शिकारी जरपू के साहस पर मुग्ध था। उसने ऐसा आदमी पहली वार देखा था। जरपू के लिए यह सब खेल ही था, उसने कहा, "हुजूर, मेरे घर तो रोज रात को एक-न-एक शेर आता है। बाहर घुलीचे में रखे पानी को पीता है, तीन बार दहाड़ता है और फिर चला जाता है।"

शिकारी ने खुशी और आश्चर्य से कहा, "तू उन्हें नहीं मारता ?"

"नहीं, क्यों मारूँ ? वे मेरे भाई हैं बाबू। महादेव ने हम दोनों को बनाया है। दोनों के काम बाँट दिये हैं।"

शिकारी हँसा। बोला, "आदमी का रिश्ता आदमी से होता है भाई। जानवर भला रिश्तेदारी क्या जाने। एकाध वार तेरी ही गर्दन पर टूट पड़ेगा·······।"

"अरे जाव बाबू"—जरपू ने हाथ उठाकर कहा, "तुम शहर के आदमी हमारे नाते-रिश्ते क्या जानो। हम तो जानवर क्या, पेड़-पत्तों से भी नाता रखते हैं, तभी हमारा पेट भरता है। दुनिया भूखों मरे, अकाल में तलफे, हम लोग कभी भूखे पेट नहीं सोये—कभी कोदों पेज, कभी सिकई पेज, नहीं तो कांदा की जड़ कहाँ गयी है। करौंदा के दाने, तेंदू के फल, जरिया की बेर, आम, बेल, गुरबेल, कैया और चिकोंडा की भाजी हमसे किसने छीनी है ?"

शिकारी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने आँखें उठाकर जरपू की ओर देखा। उसके चेहरे पर आत्मविश्वास की गहरी छाया थी। सन के डण्ठलों की लाल लौ में उसका खूनी चेहरा मकई के लाल दानों की तरह चमक रहा था। उसकी भरी-पूरी और मांसल काली देह, ऊँचा कद, पिंडरियों पर साँप जैसी ऐंठन, अँधेरी रात में उसकी निर्भीकता देखकर शिकारी और उसके साथी भी काँप उठते थे। सूखे पत्तों में जब कभी खड़खड़ाहट हो जाती, तो शिकारी बन्दूक साधकर चौकन्ना हो जाता। तब जरपू का अट्टहास जंगल के कोने-कोने में गूंज उठता, "बड़ा डरते

हो बाबू। मेरे साथ जब तक हो, बन्दूक की याद भूल जाओ।'' शिकारी मुश्किल से थूक गले के नीचे उतार पाता, ''हाँ भाई, मुझे क्या डर?'' पर, उसकी यह आवाज भी काँपती-सी लगती थी।

शिकारी के साथी सन के डंठल सुलगाने में लगे रहते थे। एक मुट्ठी बुझ गयी, तो दूसरी में आग लगा दी। उजेला उनके लिए जरूरी था। सन की लौ जब कभी थोड़ी भी धीमी होती, तो वे काँप उठते, घबड़ाकर उसे हवा में झुलाने लगते और जब हवा खाकर आग का मुँह भड़कता, तो वे राहत-भरी साँस लेते।

एक झुरमुट के पास जब यह दल पहुँचा, तो जैसे जंगल-भर के सारे पत्ते चीखने-चिल्लाने लगे। खड़खड़ाहट सुनकर सब खड़े हो गये। शिकारी ने आदत के अनुसार अपनी बन्दूक सम्हाली तो जरपू ने हाथ मारकर उसे रोक दिया, ''हुजूर, तुम्हारे साथ हमारी भी जान चली जायगी।'' जरपू ने चारों ओर देखा। सब दूर घना अँधेरा था। सारा जंगल साँय-साँय करता खुर्राटे भर रहा था। थोड़ी दूर पर दायीं ओर के पत्ते फिर एकदम खड़खड़ा उठे, तो जरपू ने ओली कसी, बोला, ''सुअर है बाबू, जंगल का सबसे खूँखार जानवर।''

''यह भी तुम्हारा भाई होगा!'' शिकारी ने कहा।

''मजाक बन्द करो बाबू, सुअर बहुत चालाक जानवर होता है। लुक-छिपकर न जाने कहाँ से कब हमला कर दे।''

''तब?'' शिकारी ने चिन्तित होते कहा। वह आठ-दस बरस से बराबर शिकार करता आ रहा है, पर जो कुछ उसने आज देखा, सपना था। बुलाने से शेर भी आते हैं, बात समझ में नहीं आ सकती थी। जरपू ने अपने तरकस से एक तीर निकाला और बोला, ''तुम सब यहीं खड़े रहो और आग बराबर सुलगाते रहो।'' वह उस ओर बढ़ा जहाँ से पत्तों के खड़खड़ाने की आवाज आ रही थी। यह आवाज बराबर आगे सरकती-सी लगी। निश्चय ही सुअर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। जरपू एक झाड़ के पीछे छिप गया। थोड़ी देर किसी को पता नहीं रहा कि

जरपू कहाँ है। पत्ते बराबर खड़खड़ाते रहे। लगा कि इस आवाज की दूरी शिकारी से मुश्किल से आधा फर्लाङ्ग होगी। उसने अपनी बन्दूक फिर सम्हाली, पर तुरन्त ही दर्द-भरी एक भयंकर चीख निकली। पत्ते बेतुकी आवाज में खड़खड़ाये। शिकारी के साथियों ने ऊपर आग उठा कर देखा तो सुअर कुलाँचे भर रहा था। जरपू वहाँ नहीं दिखा, पर सबको यह समझते देर नहीं लगी कि यह असर उसके तीर का ही है। घायल सुअर दल के पास आया तो पीछे से जरपू उस पर टूट पड़ा। घायल सुअर का सामना करना सरल काम नहीं है। जरपू सारी ताकत लगाकर उसके पंजों को पकड़े था और सुअर इस ताक में था कि पकड़ जरा-सी कमजोर पड़े कि जरपू का खून मुँह लगे। दोनों में बड़ी कशमकश थी। लगता था, दो बराबरी के पहलवान भिड़े हैं। शिकारी अपने दल के साथ इस कुश्ती के पास ही था। उसने कई बार निशाना लगाया और गोली छोड़नी चाही, पर जैसे ही वह घोड़े पर हाथ रखता कि निशाने के सामने जरपू आ जाता। जरपू जी-जान से भिड़ा था। अन्त में एक गहरी चीख उठी और दोनों पहलवान जमीन पर गिर पड़े। शिकारी ने आगे बढ़कर देखा, सुअर निर्जीव था और जरपू खून से लथपथ हो गया था। सुअर के पंजों से उसका अंग-अंग खुरच गया था।

सुबह होते-होते सनसनी फैल गयी। डाक-बंगले के सामने सारा गाँव उमड़ आया। एक तरफ सुअर की लाश पड़ी थी, दूसरी ओर शेर चिरनिद्रा में सो रहा था और यहाँ परछी में जरपू धीरे-धीरे काँप रहा था। शिकारी उसके घावों में मरहम लगा रहा था और उसकी वीरता की कहानी गाँव-भर को सुना रहा था।

इसी बीच हिरौंदा वहाँ आ गयी। उसने भीड़ चीरकर जब जरपू को छटपटाते देखा, तो उस पर टूट पड़ी। उसकी छाती पर अपना सिर रख कर वह रोती रही। तब भीड़ में खड़ा सन्तू बुदबुदा रहा था। कहता था,—"देखा हरामजादी को, इसके बाप ने इसकी सगाई मेरे साथ की

है। बेचारा पर की साल मर गया, वरना अब तक इसे अपनी औरत बना चुका होता।"

लोगों ने कई किसम की बातें कीं। किसी ने सन्तू का साथ दिया, तो किसी ने हिरौंदा की तारीफ भी की। एक ने तो यहाँ तक कह दिया कि—"शेर और सियार का भला क्या मेल!" सन्तू को उसकी बातें अच्छी न लगीं, तो उसे धकिया कर चला गया।

जरपू को चैन आया। उसने हिरौंदा के कान में कुछ कहा। हिरौंदा रोना भूल गयी। उसने उठकर एक बूढ़े से कुछ कहा। बूढ़ा वहाँ से चला गया और थोड़ी देर में कोई चीज लाकर उसने हिरौंदा को दी। जरपू ने उसे मुँह में रखा। ऊपर से पानी के दो चार घूँट पिये, शराब की आधी बोतल साफ की और शान्त हो गया। सारी भीड़ जहाँ से आयी थी, धुएँ की तरह समा गयी।

सूरज जब सिर पर आया, तो जम्हाई लेकर जरपू उठ बैठा। शिकारी ने उसके दुःख-दर्द को पूछा। उसने बायें पैर को झटकारा, उठकर खड़ा हो गया और हँसते हुए बोला, "अब छुट्टी दो बाबू, बेबर की सफाई करनी हैं।"

शिकारी फिर अचरज में था। बोला,—"तुम्हें आराम करना चाहिए भाई........।"

"........वह इस जिन्दगी में कहाँ! आराम तुम करो। रात-भर तकलीफ उठायी है, न जाने कितना खून सूख गया होगा।"

शिकारी ने पाँच का एक और नोट जरपू को थमाया। जरपू ने माथा टेककर विदा ली। हिरौंदा तब भी उसके साथ थी, बोला, "चल, एक घुतिया की कीमत मिल गयी।"

हिरौंदा बोली—तेरे तो बड़ी चोट आयी है रे। ये पैसे तू ही रख।"

"चोट तो सचमुच लगी है हीरू, पर उसकी गहराई तू क्या जाने। बाहर के घाव को चोट कहती है। यह तो सुअर के चुम्बन के निशान

हैं। चोट तो भीतर लगी है, उसके दर्द से मेरा रोम-रोम छटपटा रहा है। दवा भी तो तेरे ही पास है।"

जरपू ने जैसे ही अपने रोमानी ओठ वन्द किये कि हिरौंदा के गाल सेमल के फूल हो गये। उसने सिर नीचे झुका लिया, बोली, "वह तो ठीक है—पर इन पाँच कल्दारों को तू ही क्यों नहीं भँजाता ?"

जरपू ने अपनी भुजाओं को झटका दिया। बोला, "इन पर भरोसा रख, कई पाँच चमकेंगे।"

जरपू और हिरौंदा का प्रेम-कहानी गाँव की चर्चा वनी। इस चर्चा में सबसे ज्यादा भाग सन्तू ने लिया। उसका साथ गाँव के बूढ़ों ने दिया और जवानों ने भी। बूढ़ों ने इसलिए कि हिरौंदा का बाप सन्तू के साथ उसकी सगाई कर चुका था और समाज के नियमों को तोड़ने की ताकत उनमें नहीं थी। उनका ख्याल था कि लड़की की मरजी की कोई कीमत ही नहीं होती। इस उमर में विवेक की जगह वहकावा और ऊपरी दिखावा उसके मानस में ज्यादा असर करते हैं। जवानों का साथ देना स्वाभाविक था। हिरौंदा जहाँ से निकलती थी, बिजली चमक जाती थी। उसकी चकाचौंध में न जाने कितने युवक अपने को लुटाने को तैयार थे, पर हिरौंदा ने कभी किसी की ओर तिरछी आँख भी नहीं देखा। एक मुक्कद्दम के लड़के ने जोर-जबरदस्ती की, तो उसे तीन दिन तक खाट सेनी पड़ी थी। हिरौंदा ने भेंड़ों के हकालने के डण्डे से उसकी बेजा मरम्मत की थी। यह बात जब जरपू को पता लगी, तो वह टंगिया लेकर मैदान में उतरा था, पर हिरौंदा ने बात नहीं वढ़ने दी थी, बोली, "मैं ही निपट चुकी हूँ। तू काहें को सींग मारता है।

गाँव में इसलिए हंगामा मच गया। हिरौंदा की सहेलियों ने सम-झाया कि बड़े-बूढ़ों का कहना मान ले। आज तक गाँव की कोई लड़की इतनी बेशरम नहीं हुई। गाय की तरह उसे जिस खूँटी से बाँध दिया, वह बँध गयी। हिरौंदा पर इन वातों का कोई असर नहीं हुआ। वह अपनी जिद पर अड़ी रही। उसका कहना था कि जिस आदमी की वह

नहीं चाहती, उसके घर वह कदापि नहीं जायगी। जरपू ने भी कमर कस ली थी। कहता था—गाँववाले प्यार के साथ इतनी ज्यादती नहीं कर सकते। उसने आखिर ओली कस ली। गाँव में दो दल हो गये। ढोल और नगाड़ों ने जुझाऊ वाजों का काम दिया। लात, घूंसों और लट्ठ से वात शुरू हुई और अन्त में टंगिया और फरसा में उतर आयी। गाँव-भर में हाहाकार मच गया। जरा-सी बात ने सारे गाँव में तहलका मचा दिया। सारा गाँव चिन्तित था। झगड़े में न जाने किसका खून हो जाय। आखिर इस कलह का अन्त बुरा हुआ। झगड़े का अन्त ही बुरा होता है। गेहूँ के साथ घुन की तरह बेचारी ग्वालिन जवरन पिस गयी। वह कुएँ से पानी भरकर लौट रही थी कि इस मजमें की भँवर में फँस गयी, न जाने किसका घात लगा कि सारी जमीन खून में नहा गयी। थाने में खबर गयी और इस नाटक का अन्त जरपू के बलिदान ने किया। उसे जेल में रखा गया, उस पर खून का मामला चलाया गया और अन्त में उसे बीस वरस की कैद दे दी गयी।

यहाँ हिरौंदा को जबरन सन्तू के गले बाँध दिया गया। वह सच-मुच गाय की तरह खूँटी से वाँध दी गयी। अवला है, प्रतिकार नहीं कर सकती, इसलिए उसकी देह पर कब्जा हो सकता है, मन पर नहीं। रोते-सिसकते हिरौंदा ने कुछ दिन तो यहाँ काटे, पर एक दिन चौरादादर के मधुवा से उसकी भेंट हो गयी। वह बाजार आया। प्यास लगी, तो पानी पीने संतू के घर चला आया। सन्तू तब घर में नहीं था। हिरौंदा ने उसे पानी पिलाया, पानी पिलाते उसकी आँखों से आँसू का बूँद गिरा। यह बूँद उसके कलेजे का फफोला था, न जाने किस धक्के से आँसू बनकर वाहर निकल आया। मधुवा के मन में जैसे काँटा चुभा और रात को जब सन्तू सो रहा था, हिरौंदा ने वह गाँव छोड़ दिया।

चौरादादर में मधुवा के साथ हिरौंदा ने नयी जिन्दगी बसायी। पर, रह-रहकर उसे जरपू की याद सता जाती थी। उसकी जोड़ का कोई आदमी उसे नजर नहीं आया। किसी ने सांभर के खौलते खून को पीने की हिम्मत

नहीं की । किसी ने शेर को बुलाकर उसके साथ खेलने का साहस नहीं किया । जरपू नहीं था तो जैसे गाँव में कोई नहीं था । जरपू था जिसके पीछे न जाने कितने शहरी लोग और अफसर उस गाँव में आते थे । फिर भी हिरौंदा ने नयी दुनिया बसाने में कसर नहीं रखी । पहले ही साल वह एक लड़के की माँ बनी, ठीक ग्यारह महीने बाद उसकी लड़की हुई और फिर साल-भर में तीसरा लड़का । इस तरह तीन साल गुजर गये और तीन साल में ही वह मधुवा से तंग आ गयी । मधुवा गरीब था, उसके यहाँ खाने के लाले पड़े रहते थे, इसका हिरौंदा को दुःख नहीं था । पर, शराब के नशे में उसे वह जब व्यर्थ मारता, तो उसका रोम-रोम चीख उठता । उसके चरित्र पर वह उल्टे-सीधे आरोप भी लगाता । कभी कहता कि कल रात पड़ोसी की आँखें तुझ पर लगी थीं, कभी कहता कि बेवर साफ करना छोड़कर घंटे-भर कहाँ नदारद रही । मधुवा उस पर कड़ी निगाह रखता था । वह एक आदमी को छोड़ चुकी थी, इसलिए उसके चरित्र पर उसे सन्देह था । वह क्या जाने कि सन्तू को उसने क्यों छोड़ा ।

मधुवा भी आया और चला गया । नन्हें ने हिरौंदा का हाथ गहा, पर चार साल बाद एक दिन आम के झाड़ से गिरकर वह भी चल बसा । नन्हें अच्छा गुनियाँ था । नदी किनारे एक मढ़िया है, यहीं हर इतवार को उस पर देव सवार होता था । तब गाँव के सारे रोगी वहाँ जमा हो जाते थे । जिसके सिर पर वह हाथ फेरता, आँखें बदलते वह उठकर उचटने लगता था । गाँव की ठकुराइन का बच्चा पेट में ही चल बसा था, समस्या कठिन थी । पर, जैसे ही हाथ लगा कि सब कुछ सुलझ गया । उसने ठकुराइन का पेंट दो बार मला । लड़का पानी बनकर बाहर आ गया था । नन्हें की जयकार से ठाकुर की बखरी गूँज उठी थी । नन्हें अपने पीछे दो लड़के छोड़ गया था । दोनों चगन-मगन सारे आँगन में खेलते-खाते फिरते थे, पर हिरौंदा बिना साथी के कभी नहीं रही । उसने सम्पत पर हल्दी डाल दी और उसके घर चली गयी । सम्पत इसके पहले दो मिहरिया छोड़ चुका था, आखिरी मिहरिया अपने दोनों लड़कों को

छोड़कर चली गयी थी। उनकी देखभाल करने के लिए किसी की जरूरत तो थी ही और इसीलिए हिरौंदा को उसने हँसते हुए स्वीकार कर लिया। हिरौंदा भी चार बेटों की माँ बनकर गर्व के साथ रहने लगी।

उसकी जिन्दगी सपाट मैदान की तरह चलती रही। उसने पिछली सारी बातें भूलने का यत्न किया। कभी फिर तिलई गाँव का उसने मुँह नहीं देखा। न जाने कितनी बार उस गाँव से फागुसेंगरा और करमा का नेवता आया, पर उसने सभी ठुकरा दिये। वह कहती—जब उस गाँव ने मुझे माटी बनाकर फेंक दिया, तो मैं उसका मुँह भला क्यों देखूँ। हिरौंदा का बड़ा लड़का अब ब्याहने लायक हो गया था और उसी गाँव में लमसेना भी बन गया था। जिस लड़की के लिए वह लमसेना बना, उसे वह खूब चाहता था। लड़की ने भी कोई दुराव नहीं रखा। दूसरा लड़का बेवर की सफाई में अपनी माँ की मदद करता था। बाकी दो अभी छोटे थे। एक को पटेल के कहने से वह स्कूल भेजने लगी थी।

एक रात अंधाधुंध मेह गिरा। पानी की धार ने उस झोपड़ी की छत में सैकड़ों छेद कर दिये। सम्पत पानी की मार नहीं सह सका और उसने खटिया पकड़ ली। हिरौंदा ने उसकी बड़ी सेवा की। गाँव-आनगाँव के किसी गुनियाँ को नहीं छोड़ा, किसी देवी-देवता की पूजा-अर्चना में कसर नहीं रखी, पहुँच का ऐसा कोई वैद्य नहीं बचा जिसकी पुड़िया उसे न चटायी गयी हो, पर जब जिन्दगी ही साथ न दे, तब दवा-दारू क्या करे? वह आँखें लगाये दूर आकाश को देख रही थी। सम्पत के बचने की आशा उसने छोड़ दी थी। क्षितिज के छोर पर तब उसे तिलईपानी, उसकी नदी, नदी की घाटी, घाटी पर जरपू और जरपू के सामने लाठी लिये खड़ा सारा गाँव दिखायी दिया। बीस बरस पुराना किस्सा हो गया था यह। उसे जरपू की याद अनजाने ही कचोटने लगी। बीस बरस में ही तो वह जिहल से लौटनेवाला था, पर—पर जिहल से छूटकर वह कहाँ जाता है, कौन जाने? बीस बरस में वह भी कितना बदल गया होगा? वह हिरौंदा को अब पहचानेगा भी, उस हिरौंदा को जो तब हिरनी की तरह उचाट भरती थी और पहाड़ी नाले की तरह हँसती

रहती थी। क्या जाने हिरौंदा को इसी उचाट और हँसी ने जरपू को खींचा था। अब तो वह सब कुछ नहीं है। जब लड़का ही सयाना होकर प्रेम की धूप-छाँव में आँखमिचौनी खेलने लगा है, तो उसने एक लम्बी साँस ली। तभी झोपड़ी के भीतर से कराहने और खखारने की दर्द-भरी आवाज आयी। वह उठकर भीतर गयी, एक हिचकी, दो हिचकी और सम्पत सदा के लिए सो गया। उस छोटी-सी झोपड़ी का कोना-कोना चीख उठा। हिरौंदा के सामने अब एकदम अँधेरा था, ऐसा अँधेरा जहाँ प्रकाश की कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

समय उड़ता है और उसके साथ आदमी की जिन्दगी भी उड़ती है। हिरौंदा की जिन्दगी बहुत उड़ी है लेकिन जरपू को छोड़कर जहाँ भी वह रही, तन से रही है, मन उसका कोई नहीं पा सका, शायद किसी ने पाने की कोशिश भी नहीं की। पर, बार-बार तन के समर्पण की अदला-बदली से वह तंग आ गयी थी, इसलिए इस बार सम्पत को उसने अपने मन पर पत्थर रखकर चुना था। चाहे जो हो, वह उसे नहीं छोड़ेगी। कम-से-कम अपनी साँस रहते वह सम्पत के साथ दगा नहीं होने देगी। पर, आज सम्पत ही उसे दगा दे गया था। अभी तक बराबर वह छली गयी थी, सभी आदमियों ने उसे दगा दिया था, उसने खुद किसी के साथ छल नहीं किया।

गाँववाले सम्पत के शरीर को ढोल-बाजों के साथ ले गये और हँसी-खुशी दफनाकर चले आये। रात को हिरौंदा के घर नाच का मजमा जमा। शराब का टीन खोला गया। एक-एक ने बारी-बारी आकर शराब ढाली और मैदान में कूद पड़े। हिरौंदा ने देखा, उनमें सबसे पीछे एक थका-सा अधेड़ आदमी था। उसकी दाढ़ी बढ़ी थी, बाल बिखरे थे और धोती की जगह वह पायजामा पहने हुए था। इसी से उसने हिरौंदा की नजर खींच ली थी। हिरौंदा ने उसे देखा, एक बार, दो बार, तीन बार। उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। आँखों के आँसू अपने-आप सूख गये और सूखे ओठों पर जासोन-जैसी लाली दौड़ गयी। उसे बाहर नृत्य का मजमा भी भार लगने लगा था।

त्राहिमाम्

शम्भू सिंह अपनी बखरी की देहली में तब भी उदास बैठे थे।

उनकी पत्नी की दशा का तो कहना ही क्या? अपने इकलौते बेटे की साँस उखड़ते ही वे बेहोश होकर गिर पड़ी थीं और बारह घण्टे हो गये, उन्हें होश नहीं आया। गाँव के सबसे पुराने वैद्य उनकी नाड़ी देख चुके थे और यह बता चुके थे कि बहू को गहरा सदमा पहुँचा है, पर डर की बात नहीं है। शम्भू सिंह इस समय अपने-आप में बुरी तरह उलझे थे।

संध्या के झुटपुटे में हल और बैलों को साथ लिये किसान घर लौट रहे थे। रास्ते में जब मालिक की बखरी दीख जाती तो वे दो कदम रुक जाते, मालिक को सिर झुकाते और दुःख-भरी लम्बी साँस छोड़ चल देते। यदि गाँव का कोई बड़ा-बूढ़ा निकलता, तो उसके दुःख में अपने को शरीक कर देता और संसार की असारता के किस्से सुनाकर चला जाता, किन्तु शम्भू सिंह का 'मूड' बेहद खराब था। उन्हें जितना दुःख अपने बेटे के मरने का नहीं था, उससे अधिक क्रोध और घृणा गाँववालों पर थी। उनका नन्हा-सा बेटा दूध के लिए तड़पता रहा, पर वे अन्तिम बार एक बूंद दूध भी न पिला सके। गाँव-भर में बर्तन लेकर घूम आये, किसी ने तनिक-सा भी दूध नहीं दिया, और अब वही गाँववाले संवेदना और हमदर्दी की लम्बी-लम्बी बातें करते हैं। शम्भू सिंह जितना इस विषय पर सोचते, उनकी प्रतिहिंसा की भावना उतनी ही भड़कती। उन्हें लगता कि यहाँ से निकलनेवाले प्रत्येक राहगीर को गोली से उड़ा दूँ।

× × ×

शम्भू सिंह का भी एक जमाना था। उसके पिता यदुनाथ सिंह अट्ठारह गाँव के जमींदार थे। घर में घी-दूध की नदियाँ बहती थीं और ठाठ-बाट किसी राजा से कम नहीं रहा। गाँववाले उनके इशारों पर नाचते

थे। यदि मालिक के सिर में थोड़ा-सा दर्द हो गया, तो सारे गाँव के पेट में वायशूल उठ जाता था। उनकी बखरी के सामने भीड़ लग जाती और सारा गाँव चिन्ता से जलने लगता। जब उनकी मृत्यु हुई, तो तीन दिन गाँव-भर में कोई चूल्हा नहीं जला और लोगों के चेहरे पर भूलकर भी हँसी के चिह्न नहीं दिखायी दिये। तब शम्भू सिंह नादान थे, खरगोशों-जैसी चपलता और अल्हड़ता उनमें भरी थी। इतनी बड़ी जमींदारी का बोझ उनके सिर पर नहीं डाला जा सकता था, इसलिए उनकी माता ने कार्यभार अपने हाथ में सँभाला।

शम्भू सिंह की माता साठ वर्ष की धर्मपरायणा वृद्धा थीं और जिस कुशलता से उन्होंने गाँव का शासन चलाया, वह अब गाँव के इतिहास का स्वर्णपृष्ठ बन गया हैं। उन दिनों की याद जब लोगों को आती है, तो आप-ही-आप आँखों से श्रद्धा और दुःख के आँसू गिर पड़ते हैं। वृद्ध माता के शासन को लोग 'औरत का शासन' कहकर आज भी पुकारते हैं और उन्होंने यह धारणा बना ली है कि जितना अच्छा शासन औरत कर सकती है, उतना अच्छा पुरुष नहीं कर सकता।

बुढ़िया इतनी बड़ी जमींदारी का कारबार घर बैठे-बैठे चलाती रही। घर के बाहर कभी उसने पैर नहीं रखे। कभी खेत में जाकर उसने यह नहीं देखा कि कितना अनाज बोया गया है, फसल कैसी हुई है, कितने बोझे कटे और कितना अनाज घर आया। उसके नौकर ही वास्तव में मालिक थे। उन पर मालकिन को अटूट विश्वास था, इसलिए जो कुछ भी अनाज घर आ जाता, उसी से वह सन्तोष कर लेती। उसने कभी किसी की ईमानदारी परखने की कोशिश नहीं की और न किसी के बारे में कभी किसी दूसरे मजूदर से पूछा। यही कारण था कि सारा गाँव इस वृद्धा को अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से देखता। वहाँ से निकलनेवाला प्रत्येक ग्रामीण उसके सामने मस्तक झुकाता और आशीर्वाद के दो शब्द लेकर आगे बढ़ता। बुढ़िया भी सारे गाँव को अपना समझती और गाँव के हर आदमी को बेटे से बढ़कर मानती थी। किसी के घर

कोई बीमार हुआ और बुढ़िया को खबर लगी, तो उपचार के लिए वह स्वयं प्रबन्ध करती थी। गाँव में यदि कोई भूखा है, तो उसे बुलाकर वह खुद परोसकर भोजन कराती थी और आगे वह भूखा न रहे, इसका भी प्रबन्ध कर देती थी। तब बुढ़िया के यहाँ २८ हजार मन गेहूँ पैदा होता था और ८ बण्डे मुँह से लबालब भर जाते थे। इसके बाद भी कभी-कभी खेत से पूरी फसल न कट पाती, आकाश में मेघ आ जाते, तो गेहूँ के पौधे जड़ सहित उखाड़कर कमरे में बन्द कर दिये जाते थे। धन-धान्य और समृद्धि का उस गाँव में ऐसा अटूट साम्राज्य था कि शायद ही वैसा कहीं देखने को मिला हो। गाँव-का-गाँव उछलते-कूदते पहाड़ी नाले की तरह खुशी से खेलता, खाता और गाता रहता था। कभी किसी का चेहरा उदास नहीं दिखा। यदि किसी को कोई छोटी-मोटी तकलीफ होती, तो भी उसे वे छिपा लेते थे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि यदि गाँव के किसी आदमी के पैर में छोटा-सा काँटा भी चुभ गया, तो मालकिन के दिल में सूई चुभ जायगी।

अनाज बेचना मालकिन पाप समझती थीं। उसने कभी पायली-भर भी अनाज नहीं बेचा। जो अनाज खरीदने आते उनसे वह कह देती कि—"बाजार खुला है।" जो उधार माँगने आते, उनसे वह कहती कि—"हमारे यहाँ खाता नहीं रखा जाता।" जिसे वह कष्ट में देखती, मन-दो-मन अनाज मुफ्त में दे देती थी। गाँव में जब कभी किसी के यहाँ शादी-ब्याह होता, तो बखरी से मनमाना अनाज भेजा जाता। बुढ़िया कहती, "मेरे बेटे (या बेटी) का ब्याह हो रहा है, बारातियों को तकलीफ न हो। खाने-पीने को उन्हें खूब मिले। यदि उन्हें तकलीफ हुई तो सारे गाँव की इज्जत में बट्टा लग जायगा।" वह अपने विश्वस्त मुंशी को भेजा करती थी, जो देखता था कि किसी मेहमान को कष्ट तो नहीं है।

उस जमाने में चोरी-चपाटी का बड़ा भय रहता था, पर इस गाँव में कभी चोरी नहीं हुई। गाँव के किसी आदमी ने अपनी नीयत नहीं बिगाड़ी, पराये धन-दौलत की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

एक दिन की बात है, मालकिन दालान में बैठी माला फेर रही थीं। चैत का महीना था। दिन-भर खूब धूप तपी और शाम को आकाश में राक्षस की तरह भयंकर काले मेघ उमड़ आये। ऐसा लगता था कि प्रलय हो जायगा, इतना पानी आखिर समायेगा कहाँ ? गेहूँ के बोझे खेत में पड़े थे, इसलिए मजदूर तन-मन लगाकर उन्हें खलिहान पहुँचाने में व्यस्त थे। इस भाग-दौड़ में मंगल की नजर बदल गयी और वह खलिहान का रास्ता छोड़कर अपने घर चला गया। रामा ने यह देखा, तो खुशी से उछल पड़ा। उसके और रामा के बीच कोई पुरानी अनबन थी, अब बदला लेने का उसे मौका मिल गया। जब सारे बोझे खलिहान पहुँच गये और मजदूरों को छुट्टी मिली, तो रामा सीधे बखरी पहुँच गया। उस समय मालकिन बरामदे में बैठी माला फेर रही थीं। रामा ने सिर झुकाकर मालकिन से आशीर्वाद लिया और बरामदे के एक कोने में बैठ गया। थोड़ी देर वह चुप बैठा रहा और जब मालकिन ने उसके आने का कारण पूछा, तो उसने कहा, "मालकिन, एक बड़ी बात है, पर कहने में हिचक लगती है।" उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह एकदम शिकायत कर दे।

मालकिन ने उठकर उसके सिर पर हाथ फेरा, "ऐसी क़ौन-सी बात है रे, जिसे क़हने में हिचक लगती है ? आज तक तो तू कभी नहीं हिचका !"

मालकिन के इस मृदु व्यवहार से उसे सहारा मिला, परन्तु फिर वह डरते-डरते बोला "आज मंगल एक बोझा गेहूँ अपने घर चुरा ले गया। मैंने अपनी आँखों से उसे घर ले जाते देखा है, खलिआन से जब छूटा तो मैंने सोचा मालकिन के कान में यह बात डाल दूँ सो चला आया।"

रामा की बात सुनकर मालकिन मुस्करा दी। उसने मुंशी को आवाज लगायी और रामा को चार कुडों गेहूँ देने की आज्ञा दी। सुनकर रामा चौंक पड़ा। उसने हाथ जोड़कर कहा, "नहीं नहीं, मालकिन, मुझे गेहूँ नहीं चाहिए। मैंने तो अपना कर्तव्य।"

"यह तो तुमने ठीक किया, रामा"—मालकिन ने बीच में रोककर कहा, "पर असल में अनाज तुझे भी चाहिए था। अन्तर यही है कि तूने अपनी ईमानदारी नहीं बेची, जबकि मंगल को अपनी ईमानदारी बेचने पर मजबूर होना पड़ा। उसे जरूर कोई ऐसा कष्ट होगा, जो वह मुझसे छिपा रहा है। तू जा और जाकर मंगल से कहना—"मालकिन अभी मरी नहीं हैं। उसके गाँव में अकाल नहीं पड़ा। बोझा ले आया सो तो ठीक किया, जाकर चार कुडों गेहूँ और ले आ और अपना दुःख मालकिन से कह दे, वरना वह आज खाना नहीं खायेंगी।"

मंगल ने मालकिन का यह सन्देशा सुना, तो सिर पटक लिया। उसका साहस नहीं हुआ कि वह मालकिन को जाकर मुँह दिखाये, पर वह यह भी हिम्मत नहीं कर सका कि मालकिन का बुलउआ टाल दे और उसे भूखा रहने दे। वह दौड़ा-दौड़ा बखरी गया और मालकिन के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा। मालकिन ने उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे उठाया और कहा, "बेटा, तुमने कोई पाप नहीं किया, सिर्फ तुमने एक भूल की है और वह भूल है कि तुमने अपने दुःख को मालकिन से छुपाया। वह जमीन तुम्हारी है, इस जमीन के मालिक तुम हो। तुम्हारा खून जब पसीना बनकर खेतों की काली मिट्टी में गिरता है, तो गेहूँ की बालियाँ उस पर खड़ी होकर मुस्कुराती हैं और धान के पौधे उसमें लोटकर अठखेलियाँ करते हैं। फिर अपनी चीज की चोरी कैसी ?" मंगल में आगे सुनने का सामर्थ्य न था, वह उठकर भाग गया, लेकिन जब घर जाकर उसने देखा कि मालकिन ने एक बोरा गेहूँ पहुँचवाया है, तो उसे लगा कि नदी में डूबकर वह आत्महत्या कर ले। वह इतना लज्जित हुआ कि फिर कई दिनों तक घर से बाहर नहीं निकला।

समय परिवर्तनशील है। वह निरन्तर घड़ी की सूई की तरह घूमता रहता है। शम्भू सिंह जब बीस बरस के हो गये, तो इस गाँव से औरत के शासन की बागडोर उनके हाथ चली गयी। पहले से ही उन्हें

अपनी वृद्ध माता की इस अत्यधिक नम्रता से घृणा थी, लगाम जैसे ही उनके हाथ आयी कि करेला और फिर नीम चढ़ा-जैसी बात हो गयी। एकदम गाँव का नकशा बदल गया। अब वहाँ एक रूप-सुन्दरी आ गयी। दिन-भर वह खेतों की निगरानी करती, एक मजदूर को दूसरे के विरुद्ध भड़का कर सारा भेद मालूम करती और शम्भू सिंह को रिपोर्ट देती। किसी की क्या मजाल कि गेहूँ की एक बाली भी खेत के बाहर चली जाये। मजदूरों पर विश्वास करना हराम है।

शम्भू सिंह का दृढ़ विश्वास था कि गरीब बड़ा नमकहराम होता है, ईमानदारी उससे डरती है। इसी से उनके आते ही प्रताड़ना, मार-पीट, दण्ड और जुर्माना-जैसी घटनाएँ शुरू हो गयीं। जहाँ की जनता स्वच्छन्द रहती थी, अब उसका दम धुएँ में घुटने लगा। पूरा शासन किसी ताना-शाह की तरह कस दिया गया और इनके मूल में शम्भू सिंह के सिवाय उस रूप-सुन्दरी का भी गहरा हाथ रहने लगा। वह कहने को नौकरानी थी, किन्तु अवकाश के समय नृत्य-संगीत जैसे मनोरंजनों से भी मालिक का दिल बहलाया करती थी। जाम-के-जाम वहाँ चले आते और खाली चषक वापिस कर दिया जाता। रोज आधी रात तक बखरी में खूब जशन मनाया जाता था। लगता था जैसे तीनों लोक की सुख और समृद्धि यहीं इकट्ठी हो गयी है। गरीबों की गुंजाइश ऐसी जगह कहाँ?

एक दिन शम्भू सिंह दालान में बैठे कुछ लोगों से बातें कर रहे थे कि एक अंधा लाठी टेकते, एक लड़के का सहारा लिये दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया। उसने देहली पर अपना सिर टेक दिया और हाथ जोड़-कर मालिक से कहा, "आज घर में खाने को नहीं है मालकिन, थोड़ा-सा अनाज मिल जाय तो इस लड़के का पेट तो भर दूँ।" कमल के पत्ते पर गिरे हुए पानी की तरह, अंधे की यह प्रार्थना भी बेकार साबित हुई।

वे क्रोध से सिंह की तरह गरजे—"तो क्या हमने ठेका ले रखा है। खाने को नहीं है तो जा डूब मर।" अंधे ने फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"एक बार मेरी दो मुर्गियाँ चढ़ाव में बखरी आयी थीं। यदि

उनकी ही कीमत मिल जाय।" मुर्गी के पैसों की बात जैसे ही शम्भू सिह ने सुनी कि उनके तन-बदन में आग लग गयी, सावन के मेघों की तरह क्रोध से गरजते हुए उन्होंने कहा, "तगादा लगाने आया है हरामजादे! तेरी यह हिम्मत।"

शम्भू सिंह ने तुरन्त मलथू को आवाज दी और उसकी पीठ पर पच्चीस जूते लगाने का हुक्म दिया। मलथू ने अपने जूते उतारकर अन्धे की नंगी पीठ पर तड़ातड़ पच्चीस जूते लगा दिये। अन्धे के मुँह से न एक शब्द निकला और न आँखों से आँसू गिरे। वह जैसे पत्थर हो गया। गरीबी भी कितना बड़ा पाप है। आज अपना ही अधिकार दूर खड़ा हँस रहा था। अन्धे ने लाठी उठायी और पीछे की ओर मुड़ा। चलते समय उसने कह ही दिया, "मैं अन्धा हूँ मालिक, पर आँख मेरी नहीं फूटी, आँख तो तुम्हारी फूटी है। मुझ मरे को क्या मारते हो। मुझे दुःख इस बात का है कि जिस घर से कोई आदमी खाली हाथ नहीं लौटा, आज उसी घर के सामने यह दुर्दशा हो रही है।"

इस समय बूढ़ी मालकिन भीतर चारपाई पर पड़ी अपनी अंतिम घड़ियाँ गिन रही थी। जब अन्धे के साथ किये गये इस व्यवहार की उसे खबर लगी, तो वह काँप उठी। उसने शम्भू सिंह को बुलाया और कहा, "बेटा, इस द्वार से कभी कोई खाली नहीं लौटा। हमारे यहाँ परमात्मा का दिया खूब है, फिर परमात्मा की इन सन्तानों को पहचानो!"

"क्या हमने सदावर्त खोल रखा है?"—शम्भू सिंह आवेश में बोले—"क्या हमने गाँव-भर की ठेकेदारी ले रखी है?"

"हाँ, गाँव-भर की ठेकेदारी ले रखी है।"—वृद्ध मालकिन आवेश में आ गयीं, "यदि तू ठेकेदारी नहीं सम्हाल सकता, तो गाँव सरकार को लौटा दे...पर यदि ऐसी ज्यादती करेगा तो तेरा गर्व मिट्टी में मिल जायगा। घमंड का घर खाली होता है शम्भू। थोड़ा 'उससे' भी तो डर 'उसके' यहाँ देर है पर अन्धेर नहीं....।" वृद्धा उल्टा-सीधा खूब समझाती रही, लेकिन शम्भू सिंह पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। वे तो

गरीबों को गुलाम समझते थे और उनका कहना था कि यदि इन्होंने सिर उठाने की तनिक भी कोशिश की, तो बुरी तरह कुचल दिये जायेंगे।

सारा गाँव त्रस्त था और 'त्राहिमाम्' की पुकार करता था। रोजी और रोटी के सम्भावित खतरे से वह बेचैन हो गया था। खेत में अब मजदूरों की जगह मशीनें काम कर रही थीं। एक मशीन छोड़ दी कि घण्टे-भर में खेत बो गया, एक घण्टे में फसल कट गयी और बिजली के पंखे पल-भर में उड़ाकर भूसा दूर फेंकने लगे। अब न तो पवनदेव की पूजन की जरूरत रह गयी और न 'चढ़ाव-पर्व' मनाने की आवश्यकता। नयी-नयी किस्मों की खाद से जमीन की भूख पूरी की जाने लगी। यहाँ जैसे आदमी और आधुनिक शस्त्रों के बीच होड़ लगी थी, लेकिन इस होड़ का परिणाम अच्छा नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों दवा दी गयी, मर्ज बढ़ता ही गया। जहाँ ८ बंड़े अनाज से लबालब भर जाते थे, अब ४ बंडे भरना भी मुश्किल हो गया। बाकी बंडे मुँह फाड़े भूखे तड़पते रहते। उनमें काँच की फूटी शीशियाँ और घर का कचड़ा शोभा पाने लगा। मालकिन ने अपनी जिन्दगी में जो बहार देखी थी, वह उसी के सामने उड़ने लगी।

एक दिन आधी रात को मालकिन ने शम्भू सिंह को अचानक बुलाया। उस समय वे परियों के नाच में मस्त थे। सुरा की रंगीन मादकता की सुर्खी उनके गोरे-गोरे गालों में बिखरी हुई थी। माँ की आज्ञा पाकर लटपटाते कदमों से शम्भू सिंह पधारे और खाट के एक कोने में जा बैठे, "आखिर जल्दी काहे की है माँ, इतनी रात को बुलाने का प्रयोजन ?"

"अब मैं तुमसे जुदा हो रही हूँ बेटा।" माँ ने अपना ममता-भरा हाथ उनके सिर पर फेरा, तो सुरा की सुगन्ध से तड़प उठी, "यह क्या शम्भू ? तू ने शराब पी है ?"

"पी नहीं माँ, पिला दी है।"

"किसने पिलायी है रे" माँ ने बड़ी व्यग्रता से पूछा।

"अप्सरा ने, बड़ी मीठी है उसकी मुस्कान। क्या मजा है जिन्दगी में, तुम नहीं जानती माँ" शम्भू सिंह झूम उठे।

माँ ने गहरी साँस ली, "मुझे नहीं जानता बेटा, पर इस घर को देख, बहू को देख, वह किस अप्सरा से कम है।" सुनकर शम्भू सिंह ने मुँह बिचका दिया। माँ ने फिर एक गहरी निःश्वास छोड़ी—"तेरी मरजी, पर मैं कहे देती हूँ कि इन हरकतों से तेरे बाप-दादों के नाम पर कलंक लगेगा शम्भू। याद रख, गाँव के लोग हमारी रियाया हैं, लेकिन हम उनके मालिक नहीं। जमीन हमारी जरूर है, पर अधिकार उनका है, जो मेहनत करते हैं। इन मेहनत करनेवालों का दिल न दुखे, इसका ध्यान रखना बेटा! गरीब की हाय बखरी की मान-मर्यादा और वैभव को नष्ट कर देगी। यदि तूने उनके साथ दुर्व्यवहार किया, तो फिर तेरी देहली पर कोई माथा टेकनेवाला नहीं रहेगा और तेरा दुःख-दर्द केवल तुझ तक ही सीमित रहेगा।....यदि गरीब खुश हैं, तो समझो तुम्हारी जिन्दगी फूल रही है। लेकिन यदि उसने एक आँसू भी गिराया, तो तुम्हारा वृक्ष जड़ सहित सूखकर ठूंठ रह जायगा।"

"तुम भी क्या बहकी-बहकी बातें करती हो माँ" शम्भू सिंह उठकर चलने लगे तो वृद्ध माँ ने हाथ पकड़ लिया, "खबरदार, यदि तुमने जमीन के प्रति स्वामित्व प्रकट किया। वह आखिर मिट्टी है और मिट्टी का कोई मूल्य नहीं होता। मूल्य उस मिट्टी का है, जिससे सोना निकलता है। जब तक मेरी बात मानोगे, तुम्हारी मिट्टी सोना उगलेगी अन्यथा...." और एकाएक उस गाँव का आलीशान चिराग सदा के लिए बुझ गया। शम्भू सिंह मुस्कुराते हुए अपने ड्राइंग रूम में चले गये—"अच्छा हुआ, काँटा हट गया।" बाहर दरवाजे पर गाँव के लोग मौन खड़े अपनी मालकिन की मृत्यु पर शोक मना रहे थे।

●

जड़-बन्धन

विन्ध्याचल की उत्तरी तलहटी के बायें पार्श्व में सर्प की तरह बल खाते टेढ़े-मेढ़े नाले के किनारे जैसे पशुओं का मेला लगा था। काली, पीली, नीली, धौरी, बूढ़ी और कलोर न जाने कितने किस्म की गायें वहाँ घूम रही थीं। कोई हरी-भरी दूब में सारी भीड़-भाड़ से दूर किसी तापस की भाँति चुपचाप मुंह चला रही थी, कोई महुआ या सागौन के झाड़ के नीचे बैठी जुगाली कर रही थी, तो दूसरी ओर दो सींगें टकरा रही थीं; जैसे दो सौतें आपस में लड़ रही हों। पास खड़ा साँड़ उनका तमाशा देख रहा था। जो हार जाती, साँड़ उसी का पक्ष लेता। इसलिए लड़ाई का अन्त नहीं। वह दो बिल्लियों के झगड़े में बन्दर का पार्ट अदा कर रहा था।

पदम सिंह एक टेढ़ी-मेढ़ी चट्टान पर बैठा यह सब चुपचाप देख रहा था। देखते-देखते वह उठा, उठकर साँड़ की पीठ पर उसने एक लट्ठ दे मारा। साँड़ ने सींग को जमीन से भिड़ाकर एक लम्बी उचाट मारी और पूँछ उठाकर भाग खड़ा हुआ। पदम सिंह ने दोनों गायों को थपथपाया और पास लाकर खड़ा कर दिया, जैसे उनकी सुलह करा रहा हो। तभी पीछे से किसी नै गोबर की एक लब्दी उसके सिर पर दे मारी। उसने लौटकर देखा, फुलवा खड़ी हँस रही थी। दाँत पीसकर वह फुलवा की ओर बढ़ा, पर पास पहुँचने के पहले ही जैसे किसी ने लगाम खींच दी। वह एक पैर आगे और दूसरा पीछे किये आँख फाड़कर फुलिया को घूरता रहा—उसका गेहुँआ रंग, भूरे रंग की हलकी बदली में छिपे चाँद की तरह उसके मुख पर लटकी अलकें, गोल-गोल चिकनी गुदगुदी बाहें, सेमल-जैसे ओठों पर धतूरे जैसे फूलों की मुसकान, उभरे उन्नत उरोज और अर्द्धनग्न कपड़ों में लिपटा उसका वह सुन्दर शरीर, जिसके सामने वैभव विनत था। खड़ा-खड़ा वह सब देखता रहा और शायद देखता

रहता यदि फुलवा आँखें न तरेरती। बिगड़ती हुई वह बोली, "क्या घूर रहा है रे; कोई बीमारी तो नहीं हो गयी ?"

पदम बोला, "सच कहती है, बीमारी हो गयी है। अभी दो बिल्लियों के झगड़े में पड़े बन्दर से निवटा हूँ कि वह तीसरी बिल्ली मुझसे हो आकर भिड़ गयी; हाँ, फुलवा जमाना ही खराब है।"

"क्या मतलब ?" फुलवा ने आँखें बदलीं।

"मतलब साफ है फुलवा, एक तो मेरे सिर पर गोबर की लब्दी दे मारी, अब आँखें दिखाती है।"

"क्यों न दिखाऊँ ? सिर नहीं फूटा, क्या यही कम है ! मेरी गइयों से प्रेम जो कर रहा था। भला मुझे क्या पड़ी थी उन दोनों को पास लाकर थपथपाने की ?"

पदम की बाछें जैसे खिल उठीं, आँखों में एक अजीब चमक उतर आयी। उसने फुलवा के हाथ से टोकनी छीनकर नाले में फेंक दी और कहा, "ले, बस; अब तुझसे प्यार करूँगा। तूने क्या गायों को भी सौत समझा है ?"

फुलवा ने अपने चमकते दाँतों के बीच दोनों ओठों को दबाकर हँसी रोकने की कोशिश की। पदम ने यह ताड़ लिया। उसने झपटकर उसकी कलाई पकड़ ली और खींचता हुआ बोला, "चल, तुझे थपथपा दूँ।"

फुलवा एकबारगी खिलखिलाकर हँसी; फिर उस हँसी को पी गयी। बोली, "तूने यह क्या कर दिया पदम, बाबा जीता न छोड़ेंगे !"

"क्यों ?" पदम ने एक पत्थर उठाकर पानी पर तैरती गोबर-भरी टोकनी पर दे मारा। 'छप' की आवाज हुई और टोकनी पानी की तली में जा बैठी। फुलवा को गुस्सा आ गया। आँखें नीली-पीली करती बोली, "मेरी टोकनी ला, आया बड़ा मनसबदार कहीं का। बाबा से कह-कर तेरी आँखें नुचवा लूँगी।"

"यह तो तू ही कर सकती है।" कहते हुए पदम ने फुलवा का हाथ पकड़कर जब खींचा तो उसका सारा गुस्सा हवा में उड़ गया। दोनों एक

पत्थर के पास पहुँचे। पदम पत्थर के सहारे टिककर खड़ा हो गया और फुलवा ने अपना सिर पदम के वक्ष पर रख दिया। ऊपर आकाश में दो पक्षियों का जोड़ा टें-टें करते उड़ा जा रहा था। दोनों ने उसकी ओर देखा—दोनों की चाल एक थी, एक-से डैने और एक-सी चोंच।

"काश! हम भी ऐसे ही उड़ सकते।" पदम फुलवा की अलकें सहला रहा था।

"क्यों नहीं, क्या हम इस धरती पर नहीं उड़ सकते?" फुलवा ने उत्सुकता से पूछा।

"उड़ सकते हैं फुलवा, पर दुश्मन जो पीछे लगे हैं।"

"दुश्मन कहाँ नहीं है पदम, आकाश में ही तो चील और बाज-जैसे पक्षी होते हैं, पर देखा नहीं बगुला जाति के उन सफेद पक्षियों को, क्या तेरे जैसे डरते थे वे?"

"नहीं। पर दोनों सफेद थे।" पदम ने धीरे से कहा।

फुलवा तुनककर खड़ी हो गयी, "निगोड़े, मेरी हँसी उड़ाता है! थोड़ी काली हूँ....तो जा ले आ कोई पदमिनी।"

पदम को जैसे बर्र ने काट खाया। उसको कल्पना भी न थी कि फुलवा उसकी बात का नया अर्थ लगा लेगी।

"ऐसी बात नहीं है फुलवा।" पदम ने मक्खन लगाया।

"चल जाने दे, मैं सब जानती हूँ, किसी और से आँखें लग गयी हैं तो मेरी हँसी क्यों उड़ाता है?" उसने मुँह फेरा और नाले की ओर बढ़ी। फिर तुनकती हुई बोली, "जा, तू उस पदमिनी से ब्याह रचा, मैं जाती हूँ वहीं, जहाँ मेरे गोबर की टोकनी चली गयी!"

पदम ने दौड़कर फुलवा को पकड़ लिया। बोला, "तेरे हाथ जोड़ता हूँ फुलवा, उस दिन जरा-सी बात में चट्टान से कूद पड़ी थी, मेरी तो शामत आ गयी थी।"

"अच्छा जी, सिर फूटा मेरा और शामत तुम्हारी आयी थी! बकरे की जान जाय और खानेवाले को अलोना लगे!" फुलवा बोली। पदम ने

उसके पैर पकड़ लिये—"चल तेरी ही सही, जरा में ठुनक जाती है और ऐसे ताने मारती है कि वरं काटने-जैसा दर्द होता है।"

फुलवा मोम की तरह पिघल गयी। पदम ने जैसे उसे चुनौती दी थी। वह उसके पैरों पर गिर पड़ी। बोली, "बुरा मान गया ? मुझे माफ कर दे पदम, मुझे तो तेरे ही पैरों का आसरा है।"

पदम ने उठकर उसे छाती से लगा लिया। दोनों के प्रेमाश्रुओं ने उनका अन्तर धो दिया। फुलवा ने पूछा, "कल घोटुल में नाच है पदम, आयगा न ?"

"काहे का नाच फुलवा ?" पदम ने आश्चर्य से पूछा।

"वही शादी का करमा, ढोली के आँगन में।" फुलवा ने कहा। उसका मुख डूबते क्षितिज-जैसा आरक्त हो उठा।

"मैं नहीं समझा, तेरा मतलव ?" पदम के प्रश्न पर फुलवा ने नाक सिकोड़ी। कहा, "बुद्धू कहीं का, करमा होगा ढोली के आँगन में। जोड़े ब्याहे जायेंगे। नाच के वीच से हम भी भाग निकलेंगे और तीन दिन इसी नाले के तीर यहीं काटेंगे !"

"इस जंगल में तीन दिन ! क्या करेंगे ?" पदम बोला। उसने जैसे कुछ समझा ही नहीं।

फुलवा ने आँखों की पुतलियों का सहारा लिया, बोली, "निपट बुद्धू है, भूल गया वे दिन ? क्या कहा था तूने, जिन्दगी-भर तेरा हाथ नहीं छोड़ूंगा, अव मुकरने लगा !"

पदम सिंह के मस्तक से जैसे किसी गुलेल का पत्थर जा टकराया—'ये वात है'—उसने फुलवा के मांसल गालों को जोर से दवाया। वह चीख उठी। उस चीख में महुए-जैसी मादकता थी। दोनों एक-दूसरे में सिमट गये।

पन्द्रह वर्ष पहले का जमाना आज सपना लग रहा था।

हरी-भरी झाड़ियों के वीच दो नन्हें वच्चे घूम रहे थे। एक का मन रंगीन तितली से उलझ रहा था, जो केतकी के पीले फूलों पर उड़ रही थी।

उसने तितली की ओर हाथ बढ़ाया। वह रंगीन परी फुर्र से दूर जा उड़ी। निराश होकर उसने मुँह लटका लिया, तो दूसरे ने आकर ढाढ़स बँधाया—"चल मैं तितली पकड़े देता हूँ।" वह दूसरे झुरमुट की ओर बढ़ गया। छोटे-से घाघरे को हाथ में समेटे वह भी पीछे लग गयी। वहाँ कई तितलियाँ थीं। कई रंगों की। बालक हाथ बढ़ाता, पर वह दूर जा उड़ती। तभी एक झुरमुट में सरसराहट हुई। दोनों सहम गये। एक-दूसरे से लिपट गये। दोनों भय से काँप रहें थे। एक पक्षी पंख फड़फड़कर उस झुरमुट से उड़ गया। बालिका ने जोर से हँस दिया—"कायर कहीं के, डरता है!"

"एँ, क्या कहा, डरता है?"—उसने दो चाँटे बालिका के गालों में दे मारे। उसका मुख विवर्ण होकर नीचे झुक गया। सिसक-सिसककर वह रोंने लगी। उसकी सिसकियाँ हवा की लहरों में तैरती रहीं। बालक दूर खड़ा पैर के अँगूठे से जमीन कुरेद रहा था। उसकी भी आँखें नम थीं, जैसे वह पश्चात्ताप कर रहा हो। एकाएक दौड़कर उसने बालिका को पकड़ लिया। उसी के घाघरे से उसने उसके आँसू पोंछते हुए कहा, "मेरी अच्छी रानी, मत रो, मैं पाँव पड़ता हूँ तेरे; चल, फिर तितली पकड़ें।"

पल-भर में ही सारे आँसू जैसे स्याहीसोख ने सोख लिये। सूरजमुखी के फूल की तरह दोनों खिल उठे। उनके चेहरे पर हरसिंगार-जैसी चमक आ गयी।

एक बेरी के झुरमुट में कई तितलियाँ बैठी थीं। वे दोनों उस ओर दौड़े। तितली स्वप्न की तरह आती और पतंग की डोर की भाँति हाथ के पास से छूट जाती। छलनामयी सतरंगी माया और जीव-जैसी होड़ वहाँ लगी थी। आखिर माया का जाल दूर हुआ, वह जीव के कब्जे में थी। तितली पाकर बालिका बेहद खुश हुई। मोर की तरह वह नाच उठी। फिर उसने पूछा,—"कल तूने चिड़िया पकड़ी थी न, वह कहाँ है?"

"घर में, क्यों?" बालक ने सहज भाव से पूछा।

"हम इन दोनों का ब्याह रचायेंगे। तुम्हारी चिड़िया दुल्हन बनेगी और यह तितली दूल्हा।" बालक ने स्वीकृति नहीं दी। बोला, "नहीं हो सकता। चिड़िया और तितली में भला क्या मेल! बात मेल-जोल-वालों में की जाती है। कहाँ इतनी बड़ी चिड़िया और कहाँ जरा-सी तितली और वह भी दूल्हा बने!....हरगिज नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता?" लड़की ने प्रतिवाद किया।

दोनों में इसी तरह से उत्तर-प्रत्युत्तर बड़ी देर तक होते रहे। इतनी अधिक बहस यदि सचमुच दूल्हा-दुलहिनवाले करने लगें, तो शायद विवाह कभी असफल न हों। वर-वधू के गुण-दोष सभी पर सटीक चर्चा हुई और अन्त में दोनों में समझौता हो गया कि तितली दुल्हन बनेगी और चिड़िया दूल्हा। दोनों नाले के किनारे पहुँचे। घुटने तक पानी में आकर हाथ की अंजलि से उन्होंने पानी पिया। पदम ने टीले पर चढ़कर एक पत्थर फेंका। हरी चादर की खाईं में छेद हो गया। वह बोला, "दादी कहती थी, जब तू बड़ा होगा, तेरे लिए तितली-जैसी दुल्हन लाऊँगी।"

लड़की ने कहा, "मेरी दादी तो कहती थी कि मेरे लिए बतक-जैसा गोरा और मोटा दूल्हा लायेगी।"

"तुझे दूल्हे की क्या जरूरत?"

"और तुझे दुल्हन की क्या जरूरत?"

"हाँ जरूरत तो नहीं है। तू ठीक कहती हैं, हमारी दादी जरूर पागल हैं। दिन-भर दूल्हा-दुल्हन कीं बातें करती रहती हैं।" लड़के ने कहा।

"चल, छोड़ इन बातों को।"—लड़की ने रोक दिया,—"संझा हो रही है। घर चलें, नहीं तो कल की तरह फिर आज साँप रास्ते में मिले और मुझे काटने दौड़े।"

"बस, डर गयी! मढ़ियावाला बाबा कहाँ गया है। तुझे गोद में उठाकर ले जाऊँगा और बाबा से कहूँगा बाबा, मेरी रानी रूठ गयी है। इसे मना दो। बस फिर क्या है, बाबा जादू का डण्डा घुमायेंगे, दो-चार फूंक मारेंगे और तू खड़ी हो जायेगी।"

"और कहीं मुझे शेर उठा ले जाय तो ?" लड़की ने प्रश्न किया।

लड़के ने एक छड़ी रास्ते से उठायी और एक पैर पीछे रखकर वहा-दुरी से बोला,—"इस डण्डे से मार-मारकर साले का मलीदा वना दूँगा। हरदौल का नाम लेकर दो चोट करूँगा···आये तो सामने।"

लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी,—"तू तो सचमुच शिकार करने लगा।"

हाथ में हाथ डाले दोनों वच्चों ने खेतों की पगडण्डी पार की ग्रौर गाँव के गेंवड़े में प्रवेश किया, जहाँ संध्या की गोधूलि में वे खो गये।

यही थे पदम सिंह और फुलवा—भैरव का बेटा और ननकू की बेटी।

गाँव के वाहर पहाड़ी के नीचे एक टूटा-फूटा मन्दिर हैं और उसी से लगी गन्दे पानी से भरी एक पुरानी वावली। उसके पानी में जैसी अतीत की परछाईं दीख पड़ती है। कभी उसने भी वैभव के दिन देखे थे, पर अव जमाना बदल गया था। फिर भी उसकी बेजोड़ कारीगरी की चर्चा आस-पास के गाँव में भी होती थी। अब तो उस भग्न मंदिर के बाहर एक छोटी-सी धूनी जलती रहती है, मानव-जीवन की ही तरह अस्थिर। कभी उसकी लौ तेज हो जाती हैं, तो कभी वह धुएँ में वदल जाती हैं। तव पुजारी अपने चिमटे की चोट से उसे खड़खड़ाकर जैसे मौत के मुँह में जाने से बचा लेता है। धूनी की लौ-जैसी हालत उस पुजारी की भी है। न जाने कव उसकी साँस धोखा दे जाय। मुख पर ग्रनगिनत झुरियाँ किसी गाँव के गेंवड़े के पास बिछी पगडंडियों की भाँति चमक रही हैं, और सिर का साफा जैसे इन पगडंडियों को एक में मिलानेवाला केन्द्र है। पुजारी की वाजू में एक युवक बैठा है; नाम है पद्म सिंह। बूढ़ा जैसे कोई लम्बी कहानी कह रहा है। बीच-बीच में वह कभी हँसता है, तो कभी उसकी आँखें गीली हो जाती हैं। कभी क्रोध और घृणा के भाव उसके चेहरे पर नजर आते हैं, तो कभी जव आग की लपट तेज हो जाती है, तो उसके मुँह पर हृदय का विप फैलता-सा नजर आता है। बीच में युवक कभी टोक देता और प्रतिवाद करने लगता है। उसकी बातों से

लगता है जैसे धूनी की आग से भी तेज और भयंकर आँच उसके हृदय में फैली है। वह कह रहा है—"बाबा, यह जाति-पाँति क्या चीज है? मुझे धक्का देकर नाच से क्यों निकाला गया? मैं इसका बदला लूँगा, आखिर तुम्हारा बेटा हूँ न, भैरव का—उस भैरव का, जिसे सारा गाँव पूजता है।"

बूढ़े ने उसे थपथपाया, "धीरज धरो बेटा, बिना जाने-बूझे उत्तेजित नहीं होते। जाति-पाँति तो हमारी सीमा है। सीता ने सीमा तोड़कर ही अपना अपहरण कराया था। पदम, क्या तू यही हालत अपने समाज की देखना चाहता है, अपनी देखना चाहता है?"

पदम के मन में तो विष फैला था, उसे पुजारी की यह व्याख्या बड़ी घिसी-पिटी और पुरानी लगी। वह बोला, "यह रूढ़ि आखिर कब तक चलेगी, बाबा? फुलवा के बिना मैं जी नहीं सकता। वह भी मेरे बिना नहीं रह सकती। तुम मुझे फुलवा की जाति बताओ, मैं उसी की जाति का हो जाऊँगा!"

"यह नहीं हो सकता पदम। इसे हम नहीं बदल सकते!" बूढ़े ने विरोध किया।

पदम के मुख पर घृणा के अजीब चिह्न बने और मिट गये। वह तेज होकर बोला, "नहीं बाबा, यह नहीं हो सकता। जाति-पाँति हमारा तुम्हारा स्वाँग-प्रपंच है। भगवान् का नहीं। उसकी निगाह में सब एक हैं। तुमने ही तो यह बताया था कि भगवान् समदर्शी हैं। वह भेदभाव नहीं जानता, फिर यह कैसा पचड़ा है और फिर यहाँ तो सारा गाँव तुम्हारी पूजा करता है। बाबा, तुम्हारे पैर पड़ता हूँ। तुम पूजे जाओ और तुम्हारा बेटा ठुकराया जाय; यह····।"

बूढ़े के आजन्म संचित स्नेह के बाँध को जैसे किसी ने एक झटके के साथ तोड़ दिया। उसका गला भर आया। उसने भरे गले से कहा, "फुलवा गोंड की बेटी है पदम! उसका ब्याह गनपत से होगा, तुझसे नहीं। तू उसे भूल जा!"

"गनपत से !" पदम का मुँह फटा रह गया।

"हाँ बेटा, गनपत से।"

"आखिर क्यों ? फुलवा तो मुझे चाहती है। तुम ननकू को मना सकते हो, बाबा !"

भैरव का दर्द बढ़ता जा रहा था। उसकी आँखों के सामने पदम और फुलवा के चेहरे दो अधखिले फूलों की भाँति दिखायी दे रहे थे। उसे ऐसा लग रहा था, जैसे आँधी का एक भारी बवण्डर इन दो फूलों को मिट्टी में मिला देगा। उससे न रहा गया। उसने पदम को अपनी गोद में भर लिया, "बेटा पदम, तुम्हें कैसे समझाऊँ कि गाँव की जनता मेरे पैर क्यों पड़ती है और तुझे घृणा-भरी नजरों से क्यों देखती है ? एक जमाने की बात हो गयी यह, तब शान्ति को जैसे सूरज की तीखी किरणों ने निगलने की हिम्मत की थी। गोला-बारूद की धड़कनों ने इस घाटी के अन्तर को हिला दिया था। महाकाल के इस अखण्ड ताण्डव के बीच आदमी राई की तरह रौंदा ज़ा रहा था। यह दो जातियों के बीच संघर्ष का परिणाम था। हम असभ्य और जंगली समझे जाते थे और हमें सभ्य बनाने के लिए शहर के गोरों ने हम पर यह हमला किया था; क्योंकि हमें उनकी चमक-दमक और टीमटाम से नफरत थी और आज भी है। वह सभ्यता क्या, जो जोंक की तरह आदमी का खून चूसे और वह आदमी क्या, जो आदमी के खून का प्यासा हो।" बूढ़ा आवेश में था, जिसका सारा तन-बदन काँप रहा था, "ऐसे इन्सान की तो आँख निकाल लेनी चाहिए," कहते हुए उसने झपटकर पदम सिंह का गला पकड़ लिया। पदम चिल्ला पड़ा, "बाबा, बाबा !"

बूढ़े की चेतना में जैसे पत्थर की चोट लगी, उसने अपने को धिक्कारा। पदम सिंह को खींचकर छाती से लगाते हुए कहा, "बुढ़ापे ने बेजार बना दिया, अतीत की ये स्मृतियाँ जब आँखों के सामने उभरती हैं तो खून उतर आता है...ये हाथ भी सीमा के बाहर चले जाते हैं। अभी तो तेरा खून किये दे रहा था।"

पदम सिंह अभी भी बाबा की छाती से चिपटा था। उसका शरीर काँप रहा था। वह बूढ़े के इस परिवर्तन का कारण नहीं समझ सका।

आँखों से निकले आँसुओं को पोंछकर बूढ़े ने अपनी कहानी आगे बढ़ायी, "तो हम पर हमला हुआ, हमने उसका सामना किया। सरकार ने हमें विद्रोही करार दिया। लगातार आठ दिन की मुठभेड़ के बाद वे भाग गये और इस घाटी में मरघट-जैसी शान्ति छा गयी। हम अपने साथियों सहित बड़े-बड़े मशाल लिये दुश्मनों की खोज कर रहे थे। जब एक घनी पहाड़ी के बीच पहुँचे, तो हमने किसी चे कराहने की आवाज सुनी। हम आगे बढ़े। एक घने झुरमुट के नीचे हमने एक हिलती-सी छाया देखी। पास जाने पर पता लगा, वह एक स्त्री थी। बड़ी हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर। वह चित लेटी थी। उसके सीने में एक बाण बिधा था, शरीर विवश था। तुरन्त का प्रसव किया एक बच्चा खून और धूल में सना वहाँ पड़ा था और वह तेजी से कराह रही थी। देखते-देखते उसका कराहना बन्द हो गया और वह एकदम शान्त हो गयी। उसकी देह तब ठण्ढी पड़ चुकी थी। प्रतिहिंसा की आग मेरे मन में तेज़ी से भड़क रही थी। मैंने इस बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहा, पर जाने किस अज्ञात शक्ति ने मुझे खींच लिया। उठाते ही वह रोने लगा। मृग-शावक के बच्चे की भाँति उसकी छोटी-छोटी आँखें बड़ीं दीनता से भरी थीं। मेरा मन भर गया। मैंने उसे चुपाने की कोशिश की, पर वह नहीं चुपा। रात-भर मैं अपने साथियों के सहित जंगल में भटकता रहा। जब पूरब से सूर्य की किरणों ने चुपके से आकर आम के वृक्ष में लटके मधु के छत्ते को निहारा, तो मेरा मन अपने-आप खिल उठा। उसकी दो बूँदों ने इस बच्चे का रोना बन्द किया।"

इतना कहकर पुजारी ने सन्तोष की साँस ली, जैसे इस सेवा से इसे शान्ति मिली हो। पदम ने व्यग्र होकर पूछा, "फिर क्या हुआ बाबा ?"

"फिर क्या होता है बेटा"—बड़े स्नेह के साथ पुजारी पदम पर हाथ फेर रहा था। बोला, "आज मैं खुश हूँ उस बालक की जान बचाकर।

सोचता हूँ, कहीं ये दुष्ट हाथ अपनी मानवता खो देते, तो आज यह प्यार कहाँ पाता ?'

"यह बदनसीब बालक कौन है, बाबा ?" पदम ने सहज ही पूछा, तो पुजारी ने पदम को फिर अपने अंक में समेट लिया और फूट-फूटकर रोने लगा। आज उसका स्नेह दरिया के प्रवाह-सा बह रहा था। पदम ने पुजारी के पैर पकड़ लिये, "यह नहीं हो सकता बाबा, मैं तुम्हारा बेटा हूँ। यह सारी कहानी झूठ है !"

"तुम ठीक कहते हो पदम, यह सारी कहानी झूठ है। धरती पर रहनेवाला हर आदमी एक है। उनमें भेद कहाँ।"

"तो फुलवा से मेरी शादी कर दो बाबा।" पदम बोला। उसकी बाँछे खिल उठीं !

पुजारी का मुँह नीचे झुक गया। उसने अपने आँसू पोंछे; 'मैंने तुम्हें पाला है पदम, गाँववाले और समाज के ठेकेदार ऐसा हृदय नहीं पा सकते। फुलवा का व्याह तुझसे करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।"

पदम तनकर बैठ गया, "क्या तुम्हारे समझाने पर भी गाँववाले नहीं मानेंगे ?"

"नहीं, इससे पुरानी आग फिर सुलगेगी। तू नहीं जानता, उन दुश्मनों ने हमारे साथ क्या नहीं किया। उनका नाम सुनकर सारा गाँव कमान तान लेता है। मैं नहीं कहता, तुझमें वे गुण हैं, पर यहाँ तो एक जाति दूसरी जाति को खाने दौड़ती है, फिर तू एकदम····।"

पदम उठकर खड़ा हो गया, "यह नहीं होगा, बाबा ! मेमना और भेड़िये का किस्सा तुम्हें भुलाना होगा। आदमी, आदमी के बीच का यह भेद मिटाना पड़ेगा। तुम भर साथ दे दो बाबा, फिर गाँववाले फुलवा को मुझसे नहीं छीन सकते। यह उनके लिए कड़ा गुजरेगा।"

हवा का एक सर्द झोंका आया। धूनी की लौ तिलमिला उठी और उसी में समा गयी। पुजारी ने तब अपने हथियार का उपयोग नहीं किया, और सचमुच गाँव की पंचायत भी फुलवा को पदम से न छीन सकी।

उनकी इस प्रेम कहानी ने पिछले कई दिनों से गाँव में बड़ा बखेड़ा खड़ा कर दिया था। ननकू का रास्ता चलना हराम था। जाने कितने लोग कितने तरह के ताने कसते, अपनी बेटी को वह बस में नहीं रख सकता। पर, ननकू क्या करता? वह फुलवा से तंग आ गया था। उसने लाख समझाया, पर वह न मानी। पदम के विना जिन्दा रहना उसके लिए कठिन था। इसी से ननकू के कोड़े की मार उसने सही। दो-दो दिन भूखी पड़ी रही, पर टस-से-मस नहीं हुई। उसने साफ कह दिया था कि गनपत के हाथ मेरी लाश के सिवाय कुछ नहीं लगेगा। ननकू अब क्या करता, एक ओर समाज के बन्धन उसके पैरों में बेड़ी डाले थे, तो दूसरी ओर अपनी इकलौती बेटी का स्नेह उबलते दूध की तरह छलक रहा था। कितने लाड़-दुलार से उसने फुलवा को पाला है। गरीबी, और वह भी ऐसी, जिसमें बाज बख्त ऐसे दिन भी आये हैं, जब एक मुट्ठी चना पाना भी नागवार गुजरा है, तब भी फुलवा का पेट ननकू ने भरा। कभी किसी के सामने उसने हाथ नहीं पसारा था। पर, एक बार फुलवा के लिए उसने भीख भी माँगी थी। ऐसी लाड़ली बेटी को जान-बूझकर वह मौत के मुंह में कैसे धकेल सकता था। उसने पंचायत बुलायी और सारा मामला उसके सामने पेश किया।

पंचायत भराने का ननकू का क्या प्रयोजन था, किसी की समझ में नहीं आया, क्योंकि पंचायत के सदस्य भी उसी रूढ़िग्रस्त फिरके के थे। सदियों से चले आ रहे नियमों और बन्धनों को तोड़ने का उनमें सामर्थ्य नहीं था। फुलवा और पदम भी खुश थे। जाने क्यों, शायद इसलिए कि पंचायत चाहे जो फैसला करे, वे एक होकर रहेंगे—जिन्दा रहकर नहीं, तो मरकर ही सही। या इसलिए कि पंचायत के सरपंच का सेहरा बूढ़े पुजारी के सिर पर बांधा गया था। उसे ज़िन्दगी उसने ही दी थी। नहीं तो वह कब का मिट्टी में मिल चुका होता।

सारा मामला पंचायत में पेश हुआ। पंचों ने खूब चर्चा की, अच्छा नाटक किया, किन्तु न्याय हृदयहीन होता है। उसके पास दया कहाँ!

वह अन्धे की तरह पुरानी लीक पर चलना जानता है। वह आँसुओं का मोल क्या जाने ! मन की गहराइयों में उतरना उसने न कभी सीखा और न सीख सकता है। बूढ़े पुजारी को सरपंच का फर्ज अदा करना पड़ा। खड़े होकर उसने फैसला सुनाया, "फुलवा और पदम की हरकतें नाजायज हैं। जिसके माँ-बाप और जाति-पांति का पता न हो, उसके साथ फुलवा का व्याह करना गाँव की बेइज्जती है। इसे किसी हालत में सहन नहीं किया जा सकता। यदि पंच फैसले के विरुद्ध फुलवा और पदम जाते हैं, तो उन्हें गाँव छोड़ना पड़ेगा।"

फैसले के अंतिम वाक्यों में जैसे बूढ़े पुजारी का ममत्व वोल रहा था इतनी गुंजाइश काफी थी। पदम ने फुलवा की ओर प्रश्न-भरी नजरों से देखा। उत्तर में फुलवा ने हलकी मुस्कान बिखेर दी। पदम ने दौड़कर भरी पंचायत के बीच फुलवा का हाथ पकड़ लिया। दोनों ने पंचों के पैर पड़े और गाँव छोड़ने के लिए तैयार हो गये।

बूढ़ा पुजारी अपने आपको न रोक सका। वह वच्चों की भाँति फूट-फूटकर रो पड़ा। अपना आसन छोड़कर वह बाहर आया। उसने पदम को गले लगा लिया। जब वे दोनों जाने लगे तो जैसे उसका कलेजा फट गया। वह चिल्लाया—"ठहरो पदम, सरपंच का कर्त्तव्य मैं पूरा कर चुका। अब बाप का भी कर्त्तव्य मेरे सामने है। मैं भी तुम्हारे साथ गाँव छोड़कर चलने को तैयार हूँ। मेरे बेटे, तुम्हारे बिना मेरा और कौन है !"

सारा गाँव बूढ़े पुजारी की ओर विस्मय से देखता रहा। तभी ननकू ने फुलवा को छाती से लगा लिया—"तब मैं भी तेरे साथ चलूँगा, बेटी ! बुढ़ापे में ये झूठे बन्धन मुझसे नहीं सहे जाते। भगवान् खाने को दो रोटियाँ कहीं भी देगा।"

गाँव-भर में कोलाहल मच गया। तरह-तरह की चर्चाएँ होने लगीं। यह सब जैसे एक नाटक की तरह सामने आया और खतम हो गया।

गाँव का कोई आदमी बूढ़े पुजारी को छोड़ने को तैयार नहीं था। वह बचपन से उस मंदिर की पूजा करता चला आ रहा था। सारा गाँव उसकी इज्जत करता था। यदि वह गाँव छोड़कर भाग जावेगा; तो फिर देवता की रक्षा कौन करेगा ? देवप्रकोप से उस गाँव को कौन बचायेगा ? उन्होंने विनती की, पर बूढ़े पुजारी का स्नेहप्लावित हृदय देवसाधना के सामने भी विनत नहीं हुआ। उसका हृदय आज इन जड़-बन्धनों के सामने चीख रहा था। वह बोला, "ये भेदभाव हमारे बनाये हैं, देवता के नहीं। वह सबके लिए समरस हैं। उसके लिए सब एक हैं। अपनी झूठी मान्यताओं की रक्षा करने के लिए हम उन अंकुरों को नहीं कुचल सकते, जिन पर हमारा भविष्य खड़ा है।"

सारा गाँव मुँह बाये खड़ा था। पंचायत के अन्य पंच अपना फैसला वापस लेने को तैयार थे, पर बूढ़ा सरपंच कानून के साथ अन्याय भी नहीं करना चाहता था। उसने किसी की नहीं सुनी। बच्चों की तरह सिसकते हुए उसने गाँव से विदा ली। जाते-जाते वह कह गया, "एक दिन गाँव को अपने कानून बदलने होंगे।"

पुजारी जब गेंवडे के बाहर पहुँचा, तो क्षितिज हल्दी की तरह पीला था। पुरानी रूढ़ियों ने शायद उसका भी खून चूस डाला था।

इस पार : उस पार

आसाढ़ का महीना, पर सूना और खुला आकाश ! हल्के नीले रंग पर कपास के ढेर की तरह, घाटियों-जैसे तैरते बादलों के नन्हें-नन्हें टुकड़े। परसू ने ऊपर नजर उठायी और चारों ओर देखा। एक लम्बी साँस लेकर उसने जमीन पर दृष्टि डाली। वह फटी पड़ी थी। बड़े-बड़े दर्रे जैसे मुंह बाये आकाश की ओर निहार रहे थे।

'परसू, ओ परसू', किसी ने आवाज लगायी। परसू ने लौटकर देखा—जेलकू खड़ा था, कांधे पर टँगिया धरे और सिर पर लाल पगड़ी बाँधे।

हुर्रा हुर्रा हुर्रा आ आ आ आ आ......!

एक बड़ा दल एक-साथ आवाज करते वहाँ आ गया। परसू ने देखा—उसमें गुनरू था, लहरदार, प्रीतम, माझी और गनरी, सैको, सीलो—सभी कोई। सब हँस रहे थे। सब के दाँत धूप की तरह चमक रहे थे।

"चल रे, क्या खड़ा देख रहा है।"

"हाँ परसू, माझी[1] गेवड़े पहुँच गया है। जल्दी चल।"

परसू कुछ न बोल सका। भीतर से टँगिया लेकर उस दल में सम्मिलित हो गया। सब-के-सब पाटा[2] गाते और नाचते गेंवड़े तक पहुँच गये। गायता पूजन कर चुका था और माझी के कपाल पर तिलक लगा रहा था। परसू वहाँ जाकर खड़ा हो गया, तो गायता ने एक टीका उसके भी कपाल पर धर दिया। एक-एक कर फिर सब ने टीके लगवाये।

---

१. गाँव का मुखिया। २. गीत।

गेंवड़े के बाहर दीपा[1] की सूखी जली राख पड़ी थी। फटी जमीन में कुछ राख समा गयी थी। कुछ हवा के झोंके में पड़कर यहाँ-वहाँ फैल गयी थी। उसमें बीज के दाने छिपे थे। सूखे दाने। जब उन्हें नेह मिलता है, वे फूल जाते हैं। खुशी से अपनी छाती फाड़ देते हैं और अंकुरों के रूप में फट पड़ते हैं। नेह किसे बुरा लगा है? नेह का कौन प्यासा नहीं? मेह भी तो तभी गिरता है, जब उसे समुन्दर का नेह मिलता है।

"दादा।"

"हाँ, परसू।"

"इस साल क्या हो गया? देखो तो, सारा आकाश साफ पड़ा है। एक बूँद भी पानी नहीं है। धरती दुःख से कराह रही है। उसकी छाती फट गयी है और ये दाने………।" परसू ने राख से एक सूखा दाना उठाकर कहा।

"इन्हें तो देखो दादा, इनमें तो जी ही नहीं रह गया। इनका कलेजा जल चुका है।"

माझी बोला, "हाँ परसू, दो-चार सालों से न जाने क्यों हमारा देवता हम से नाराज है। देवी भी दया नहीं करती। पूजन करने में क्या कसर की है? पहले जेठ उतरता था, तो सारा आकाश तभी काला हो जाता था। आषाढ़ में वह सारे गाँव को इस तरह घेर लेता था, मानो उसे बिना निगले नहीं छोड़ेगा। इत्ता मेह गिरता कि हम सब की छाती

---

१. आज भी भारत की अनेक आदिम जातियों में शिफ्ट कल्टीवेशन की प्रथा है। वे हर साल नये जंगल काटकर नये सिरे से खेती करते हैं। जंगल की झाड़ियाँ जला दी जाती हैं और राख में बीज डाल दिये जाते हैं। पानी पड़ने के बाद वहाँ पौधे निकल आते हैं। अगले साल फिर दूसरे जंगल काटे जाते हैं। खेती करने का यह तरीका अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग नाम से जाना जाता है। बस्तर के आदिवासी इसे 'दीपा' कहते हैं। जंगल कटने से खेती तो हो ही सकती है परन्तु····और यही दीपा इस कहानी की पृष्ठभूमि है।

फटने लगती। टपरियों के भाग फूट जाते, पर तब गाँव के बाहर खेत हरे हो जाते थे परसू ! ये सूखे दाने अपनी नन्हीं-नन्हीं आँखों से हमें इस तरह निहारते थे कि देखकर हमारा कलेजा ठंढा हो जाता था। हम सब दुःख भूल जाते थे।"

"यही तो मैं कहता हूँ, दादा। इस साल न जाने क्या हो गया है ?"

"देवता जाने, परसू ! आदमी की क्या बिसात। चलो, पूजन करें।"

गाँव की देवी मातल की मढ़िया के सामने सारा गाँव जमा हो गया था। सब ने देवी की अभ्यर्थना की। गीत गाये, पैरों को थिरकन दी। गीत और माँदर की घुमक ने वहाँ जीवन का रस बहा दिया। सब ने फिर हाथ जोड़कर देवी की प्रार्थना की। घुटरी के दो बच्चों और आठ-दस मुर्गियों को देवी की भेंट चढ़ाया गया। सब परसाद लेकर अपने-अपने घर चले गये।

दिन डूबा। साँझ उतरी। वह भी चली गयी। कोलिहा[1] की आवाज रात की तनहाई में गूँजने लगी और परसू आँख फाड़े अँधेरे में आकाश को घूरता रहा। अनगिनत तारे उसमें टिमटिमा रहे थे। दूर मंगल का मद्धिम लाल प्रकाश अलग दिखायी दे रहा था। पिछले कुछ चित्र परसू की आँखों के सामने उतर आये।

"किद्दरी पुदे किद्दरी पुदे।"

एक अनजान-सी आवाज जैसे कानों में पड़ी। उसके साथ दुहराते स्वर सुनायी दिये।

"किद्दरी पुदे किद्दरी पुदे।"

"सीलो, चल उतर मेंटा[2] में।"

सीलो ने जोर से हँस दिया। जब हँसी रुकी तो बोली, "काहे को गला फाड़ता है लहरदार, कारा पाण्डुम[3] है आज। गायता को काम पूरा कर लेने दो।"

---

१. स्यार। २. जंगल। ३. एक त्योहार।

लहरदार चपल छोकरा था। दौड़कर उसने सीलो के साथ पकड़ लिये और झूलने लगा।

सारा गाँव मातल के सामने खड़ा था। सूरज की सुनहली किरणें देवी के सिर को चूम रही थीं। गायता ने देवी की पूजा की। हवन लगाया। मुर्गे, मुर्गियाँ, बकरे और भैंसों की बलि दी गयी। सबसे पहली बलि धरती मैया को। दूसरी गाँव की देवी को। तीसरी पुरखों को और फिर दूसरे देवी-देवताओं को। सारी जमीन खून से रंग गयी थी। उसी खून-भरी धरती पर दूर बँधा भैंसा लाकर खड़ा किया गया। गायता ने उसे तिलक लगाया। बीस साल पहले भैंसे की जगह गाँव का एक आदमी खड़ा किया जाता था और उसी की बलि दी जाती थी। गायता ने भाला उठाकर पूरी ताकत के साथ भैंसे की गर्दन पर चला दिया। उसकी गर्दन दूर जा गिरी और गाँव के चेलिक तथा मोटियारी मेंटा में घुस गये।

"रे बम्मटा[1] अन्धा है क्या? इधर आ?"

"होय बम्मटी, बात ज़रा सम्हालकर कर।"

"अरे झगड़ो मत, सब काम करो।"

छप-छप खटा-खट, खट-खट छप-छप—टंगिया[2] चली। झाड़ों की डगालें जमीन पर लोटने लगीं। गाँव से सारे जवान जंगल काटने में भिड़े थे। सब ताकत-भर हथियार चला रहे थे। झाड़ों से अनगिनत डगालें कट-कटकर नीचे गिर रही थीं। घण्टे-दो घण्टे में सारा जंगल ही कटकर साफ हो गया। सब अपनी-अपनी काटी डगालें खींचकर बाहर ले आये और उन्हें मैदान में बिखेर दिया गया। परसू ने भी बहुत-सी काटी थीं। उसका सारा शरीर ईपूर[3] से लथपथ हो गया था। सीलो ने आँचल से उसका मुँह पोंछा था, तो परसू खिसककर जरा दूर चला गया था—कोई देख न ले। फिर तो सीलो के आँचल के छोर से उसने

---

१. एक गाली। २. कुल्हाड़ी। ३. पसीना।

अपना मुँह ही नहीं, छाती भी पोंछी थी। सीलो ने उसे प्रेम-भरी नजरों से देखा था। बोली, "बड़ी मिहनत पड़ गयी ?"

"नहीं सीलो, तू आँखों के सामने रहे तो पहाड़ भी उठा लूँ और दमतक न खिंचे।"

"वह तो देख रही हूँ।" सीलो ने मज़ाक किया।

"ईपूर, यही न ? वह तो तुझे देखकर आया है।" सुनकर सीलो शरमा गयी। सामने सारे चेलिक कटवक[1] और हरपुंज[2] पहन चुके थे। सीलो ने परसू को हल्का-सा धक्का दिया, बोली, "चल जा माझी क्या कहेंगा।"

परसू ने तिरछी नजरों से उसे देखा और दौड़कर भीड़ में खो गया। उसने भी हरपुंज और कटवक पहन लिये थे। सब ने मिलकर हरी-भरी डगालों में आग लगा दी थी। हँसते-खेलते पत्ते बात-की-बात में जल-कर राख बन गये। जंगल के चारों ओर जैसे दँवार[3] लग गयी थी। ढलते सूरज की किरणों के साथ आग की चटकती तेज लाल रोशनी मिल गयी थी—

"रेख पिण्डी कोहको कोहको,
मरका पिण्डी कोहको कोहको,
इरपू पिण्डी कोहको कोहको।"

चेलिक और मोटियारियों के इन मीठे सुरों के साथ बूढ़े गले भी काँपते-से जैसे बाहर निकल रहे थे। साँझ ढलकर दूसरे देश चली गयी थी, पर लाँदा के नशे में चूर जवान जोड़े बराबर नाच-गा रहे थे।

दूसरे दिन मुर्गे की बाँग के साथ ही फिर सारा गाँव वहाँ जमा हो गया था। कल की डगालें राख हो चुकी थीं। आज उनमें तपन भी नहीं रही।

---

१. लकड़ी के जूते।

२. साँभर के चमड़े का बना हाथ में पहनने का एक सामान, जिससे आग से हाथ नहीं झुलसता।

३. जंगलों में अपने-आप लगनेवाली आग।

आखिर बेचारी कब तक चीखती-चिल्लाती। वे भी सो गयीं। मनुष्य के अत्याचार का सामना करने की ताकत भला किसमें है। वे तो डगालें थीं, यह ताकत तो न धरती में है और न तो आसमान में। मनुष्य इन सबका स्वामी है और हर स्वामी स्वेच्छाचारी होता है। वह प्रत्येक विरोध का गला दबा देना चाहता है। डगालों ने विरोध किया था, उन्हें जलाकर मिट्टी में मिला दिया।

आज से नहीं, युगों से दीपा चला आ रहा है। आजा, बाबा, दादा और परदादा, शायद उनके भी पुरखों के जमाने से। हर साल इसी तरह जंगल काटे जाते हैं और डगालों को कुचलकर राख बना दिया जाता है। वृक्षों के खून से आदमी धरती को सींचता है—धरती को, जिसकी गोद में यह खून पला और पनपा है। फिर उसी खून का सहारा लेकर उसी धरती से वह अनाज पाने की कामना करता है। परसू अब भी दूर टिमटिमाते तारों को देख रहा है। वह सोचता है—आदमी भी कितना गिर गया है। उसकी यह कामना कितनी बड़ी विडम्बना है। कितना बड़ा छल है। पर यह छल है किसके साथ? दूसरों को छलने की मृगतृष्णा के पीछे क्या वह खुद अपने-आप को नहीं छल रहा है? उसने चारों ओर देखा। फिर सोचने लगा—दादाल कहता था, पहले यहाँ घने जंगल थे। इन बियाबान जंगलों में सोरी[1] आता था। जंगलों को काटकर यह गाँव बसाया गया था। फिर गाँववालों ने आसपास के जंगल काटने शुरू कर दिये। आज गाँव के सामने मीलों का मैदान है। दूर तक घने जंगल नहीं रह गये। हर साल दीपा लगाया जाता है। कई एकड़ जंगल मैदान में बदल जाते हैं।

परसू जाने क्या-क्या सोच रहा है। टपरिया से निकलकर सीलो आ गयी। उसने उसे धक्का दिया—"अँधेरे में क्या खोज रहा है रे?"

"कुछ नहीं सीलो।" उसने निराशा-भरे शब्दों में कहा।

"कुछ तो सही। घण्टों से खड़ा है।"

---

१. शेर

"वह देख," परसू ने ऊपर अँगुली दिखायी—"आकाश में कितने तारे जल रहे हैं ? ये सब खून से भरे हैं। हमने धरती के लाड़ले पुत्रों का खून किया है। हम हर साल खून करते हैं और खून करने के आदी हो गये हैं। उसी धरती पर तो यह आकाश टिका है न। हमारा खून वहाँ तक पहुँच गया है।"

"पागल है क्या रे ?" सीलों ने झुककर उसके चेहरे को देखा।

"हाँ सीलो, ऐसे आदमी को पागल ही कहा जाता है।"

सीलो ने हँस दिया, "चल, कल तुझे वद्दई के घर ले चलूँगी। तेरा इलाज करवा दूँगी।"

"इलाज तो तू इस गाँव के लोगों का करा," परसू के गले में अब जोर था, "कभी ऐसे जंगल थे यहाँ कि सूरज की किरणें उन्हें भेद नहीं पाती थीं। आज मैंदान हैं। आसमान तक जल रहा है। पानी कहाँ से गिरे। धरती का कलेजा फट गया है। तू देखती है, यह सारा आकाश किसी विधवा की माँग की तरह सूना पड़ा है। कभी ऐसा हुआ है ? हमारे पुरखे कहते थे : आषाढ़ के महीने में आकाश में नदियाँ निकल आती हैं। तू देखती है कोई नदी वहाँ। सब सूखकर मरुस्थल हो गया है।"

"यह सब देवी का कोप है परसू। हम सब मन लगाकर एक बार फिर मातल की पूजा करेंगे।"

"नहीं," परसू चिल्लाया, "अपने पैर में अपने हाथ कुल्हाड़ी मारकर तू कहती है, खून न निकले। गाँववालों के लिए देवी का पूजन एक ढोंग हो चला है सीलो। तू माहुर[1] खा ले और देवी से कहे पेज बन जाय। यह ढकोसला नहीं चलेगा।"

"फिर क्या चलेगा रे मूरख ?" सीलो ने अपने हाथ से उसकी गर्दन ऊपर उठा दी।

---

१. एक प्रकार का ज़हर।

"गाँव के गलत नियम हम लोग वदल देंगे, सीलो ! हम नौजवानों पर इस गाँव का भार आनेवाला है। जो हम चाहेंगे, वह होगा। इस साल से दीपा नहीं लगाया जायेगा। और लोग भी तो खेती करते हैं। जंगल कौन काटता है ?"

अवकी वार सीलो खूव जोर से हँसी, वोली, "चींटी पहाड़ से टकराने चली है। कल देखूँगी माझी के सामने कैसे तेरा मुँह खुलता है ?"

परसू ने सिर पर गमछा बाँधा। बोला, "कल क्यों, आज ही देख। मैं रात को ही सारे जवानों को इकट्ठा करूँगा। देखूँगा कल कौन दीपा काटने जाता है।"

हाथ में टंगिया लेकर परसू गाँव की पगडण्डी से आगे चला गया। तव गाँव के कुत्तों ने भौंकना वन्द कर दिया था। चिड़ियों का शोर धीमा हो चला था और आसमान के कपसीले वादल धीरे-धीरे पास खिसकते आ रहे थे।

●

कगार का पानी

सारे गाँव में हाहाकार मच गया था।

बूढ़े खाँसते तो जैसे कोई ढोल के फटे चमड़े पर थाप दे रहा हो। जवानों ने भी अपने गले फाड़ दिये थे। ये इधर-से-उधर भाग रहे थे। चूड़ियों की खनक से गाँव की गलियों में बेतुका संगीत बिखर रहा था। औरतें उसके साथ ही भयावह अटपटे शब्द निकालतीं। लगता जैसे कोई अनाड़ी संगीत का साज सजा बैठा है। सब दूर पानी-ही-पानी था। दूर से बड़ी-बड़ी लहरें आतीं और किनारे से टकराकर किनारे को निगल जातीं। हर लहर खतरनाक थीं। उसकी हर मार से जैसे जमीन का कतरा-कतरा सिहर उठता था। कई बरस बाद आज बैरन का यह रूप देखने को मिला था।

बूढ़ों के गले श्रद्धा-भरी अनगिनत प्रार्थनाओं में डूबे थे—'हे काली, हे कंकाली, भैरोदेव, हे टौरियावाले बाबा, गाँव को बचा लो। आज की रात लाज धर लो।' औरतें महादेव और बड़ादेव को मना रही थीं। सब अलग-अलग मनौती मान रही थीं। रात का अँधेरा देखकर कलेजा थर्रा उठता था। मजाल है जो पास खड़ा भी दिख जाय। छोटी-छोटी लालटेनों के सहारे आदमियों की आँखें चल रही थीं।

"आज न जाने देवता क्या करना चाहता है!"

"इस बरस मेले में खेरमाई का पूजन ठीक से तो हुआ था न?"

"टोरिया का देवता बिगड़ गया दिखता है। औरतों से कहा था, "त्योहारों में उसे पूज आया करो, पर जब कोई मेरी बात माने?"

"टोरिया का देवता क्या करेगा? करनी गेंवड़े के देवता की है। फागुसेंगरा' को जाते समय पूजन किया था किसी ने?"

"हाँ, यह ठीक कहता है"—एक बूढ़े ने जोर-जोर से आवाज दी, "बात पकड़ना परमू जाने। तूने ठीक जाँचा रे। इस बरस फागुसेंगरा को छोकरे निकल गये, तब याद आया कि गेंवड़े का देवता अनदेखा रह गया।"

"अब क्या होगा बापू?" एक लड़का उस बूढ़े के अधिक पास आ गया था। वह सिमिटता गया, जैसे बूढ़े में समा जाना चाहता है।

"धीरज धरो रे" गायता[२] चिल्लाया, "सुन्दर को भेजा है। बैगा को लेकर वह आता ही होगा। बैगा आया और पानी उतरा!"

"न जाने वह कब आयेगा?" पारबती के स्वरों में घबराहट थी। परमू शायद उसके पास ही खड़ा था। वह कुछ बोला, पर आवाज दूर तक न जा सकी। पारबती की चूड़ियाँ जरूर उसी समय खनकीं। ऐसा लगा, जैसे चूड़ियाँ आपस में जूझ रही हों। जरूर उसने पारबती का हाथ पकड़ा होगा। पारबती ने छुड़ाने की कोशिश की होगी।

परमू कब से उसके पीछे पड़ा है। अबेर-सबेर, गैल-घाट में उसे मिल जाता है। पारबती रास्ता काटना चाहती हैं, पर काट नहीं पाती। तब वह किसम-किसम की बातें करता है। न जाने कितनी तरह से नाक और भौंहें बनाता है और अपने मन का सारा प्यार उँड़ेल देना चाहता हैं। पर प्यार भी भला कोई पानी है? इसे वह समझे तब न? पारवती प्यार नहीं करना चाहती, सो बात नहीं हैं। प्यार को कौन मेटे। कौन उससे दूर भागे। भागा भी तो नहीं जाता; क्योंकि प्यार ही तो जिन्दगी है। जब वह आता है, तो जिन्दगी में सूरज की सतरंगी किरनें बिखेर देता है और जब जाता है, तो कलेजे में कभी न मिटनेवाला दर्द छोड़ जाता है। जब से पारबती ने आंगन के बाहर पैर रखा, तभी से प्यार ने उसे जकड़ लिया। पर वह प्यार परमू नहीं पा सका। उसका अधिकारी था सुन्दर—माही का बेटा। नाम की भाँति वह सुन्दर है या नहीं; यह बात महत्त्व की नहीं है। महत्त्व की बात तो यह है कि पारवती को उसका हर अंग सुन्दर दिखता है। उसकी हर बात

उसे सुन्दर लगती है। लोग उसे फटा ओठोंवाला कनकटा कहते है, पर पारबती कहती है कि ओठ और कानों का एक साथ फटना भले भाग की सबसे बड़ी निशानी हैं। जब वह उससे मिलती है तो ढेरों बातें करती है। गाँव-भर उसे मूक लड़की कहता है। सबकी धारणा है कि वह नपी-तुली बातें ही बोला करती है। पर सुन्दर के सामने जैसे उसका गला फट पड़ता है। वह अपना सारा मन खोल देती है। उसका आकर्षण सुन्दर की ओर क्यों हुआ, कोई नहीं जानता। शायद वह भी नहीं जानती। प्यार को कौन पहचानता हैं ? वह हवा के वेग की तरह आता हैं और पानी की लहरों की तरह छा जाता है। कब सुन्दर उसमें प्यार जगा गया, वह नहीं जानती। परमू उसे लाख मनाता है, पर सब कमल के पत्ते पर पानी की बूँद ही साबित होता है।

परमू जात का गड़रिया है। गाँव-भर की भेंड़-बकरियाँ चराता है। देखने में खूबसूरत और हट्टा-कट्टा है। गाँव की न जाने कितनी लड़कियाँ उसके रूप को पसन्द क़रती हैं, पर वह हठ किये है कि वह पारबती को मना कर छोड़ेगा—उस पारबती को जो उसे देखते ही मुँह फेर लेती और जब वह सामने ही आ जाता हैं, तो आँखें बन्द कर लेती है।

एक दिन नदिया से लौट रही थी। अकेला देखकर परमू ने उसका हाथ पकड़ लिया, तो उसने अपने सिर की गगरिया ही उस पर दे मारी। पानी के साथ परमू का खून भी बहने लगा। पर वाह रे परमू, हाथों से अपने खून को वह चाटता रहा। अपने-आप से बोला, "खून देना बड़ी बात है रे, परमू। किसी नें कहा है, तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें प्यार दूँगा। तूने पारवती को खून दे दिया। अब तेरा प्यार बेकार नहीं जा सकता, परमू।" वह अपने-आप बके जा रहा था और पारबती हँसते हुए अँगूठा दिखाक़र वहाँ से भाग गयी थी।

"छोड़ रे छोड़, पारबती की यह फुसफुसाती आवाज थी। परमू कुछ नहीं बोला। गायता ने शायद यह सुन लिया था। बोला, 'अरे परमू, यहाँ तो आ।"

परमू खिसिया गया, पर उसे जाना पड़ा। बोला, "क्या है दादा ?"

"देख तो, बैरन क्या कहती है ?"

परमू ने झुककर पानी छुआ। बोला, "गरम है बाबा।"

गायता ने लम्बी साँस छोड़ी। बोला, "तब तो उफान में है। अब क्या होगा ?"

"धीरज धरो बाबू। पारबती बोली, "सुन्दर बैगा को बुलाने गया है। एक कोस ही तो गाँव है। बस आता ही होगा।"

एक आवाज आयी। सारी लालटेनें एक साथ ऊपर उठ गयीं। क्या हुआ ?

दूर से दूसरी आवाज आयी, हरदौल का पिछवाड़ा खिसक गया।

कई आवाजें—'चिच्च चिच्चचचच।'

"हे महादेव, रच्छा करो!, गाँव को बचाओ! रात तो काट दो भगवान! सबेरे हम भाग जायेंगे। ऐसे अँधरे में हम कहाँ जाएँ ?"

पारबती बोली, "बस बैंगा के आते तक लाज धर लो महादेव! बैरन ने तो अपनी मर्यादा छोड़ दी।"

"सब मर्यादा छोड़ देंगे दादा," परमू जोर से बोला, "देखते नहीं, हरदौल भी अपनी रच्छा नहीं कर सके। बैरन उन्हें भी बहाकर ले गयी। इसी तरह हम सब बह जाएँगे। यह सारा गाँव बह जायगा। देखते नहीं, लहरें ऊँची होती जा रही हैं! कगारें....।"

एक दूसरी आवाज आयी : "बचाओ, बचाओ, बचा....।"

आवाज डूब गयी, परन्तु कोई नीचे न उतरा।

"लो एक बलि भी बैरन ले गयी" परमू बोला।

"तब तो सात बलियाँ देनी होंगी। अब छः कौन जाए। नहीं गये तो गाँव-भर चला जाएगा।" पारबती की आवाज में भय था। उसकी बात का किसी ने उत्तर नहीं दिया। वह बोली, "लो दूसरा नम्बर मेरा ही है। गाँव तो बचाना ही होगा।"

परमू ने उसका हाथ पकड़ लिया, "तू गयी, तो सारा गाँव चला जायगा पारवती ! आज सात नहीं सत्तर बलि भी दे दो तो भी बैरन नहीं रुकनेवाली । ऊपर कल से पानी बरस रहा है । सारे नदी-नरवा ठिल आये हैं । सब बैरन से मिल गये हैं । अब हम सबको यहाँ से भाग....।"

गायता चिल्लाया, "क्या बकता हैं बार-बार ? भागना क्या इतना सहज है । अपनी जन्मभूमि भी कोई छोड़ता है, बाप-दादों की धरती से कोई भागता हैं ?"

"हाँ गायता, तुम ठीक कहते हो । बैंगा भर आ जाय, वह अपने मन्तर से सारे गाँव को बचा लेगा ।" पारबती ने एक लम्बी साँस ली और ऊपर आकाश की ओर देखा । वहाँ अनगिनत तारे चमक रहे थे । पश्चिम की ओर रह-रहकर बिजली कौंध रही थी । बादलों की गड़गड़ाहट से सबके कलेजे थर्रा उठते थे ।

अष्टमी का चाँद निकल आया । उसके हलके से उजाले में बैरन का मटमैला पानी चमकने लगा । अब आसपास की कगारें हल्की-सी दिखायी देने लगी थीं । तब गाँव-भर का भय और भी भारी हो गया था । पीठ का फोड़ा जैसे छाती में निकल आया था । जिस चाँद के निकलने की सब बाट जोह रहे थे, वह क्या निकला, उसने सबको कँपा दिया ।

"अन्धेर हो गया दाऊ", गायता ने कहा, "हरदौल के मन्दिर का तो पता ही नहीं । दक्खिन के बगीचे का पीपल पानी में लहराने लगा है । महादेव की मढ़िया को पानी ने घेर लिया है । पूरब के गेंवड़े की खेरमाई लहरों के साथ जूझ रही है । हे भगवान, अब क्या होगा ?"

"क्या होगा, थोड़ी देर में सब बैरन की गोद में समा जाएँगे । गायता, तुम अपनी घिसी-पिटी और पुरानी मान्यताओं को घेरे बैठे रहोगे और सारे गाँव को खा जाओगे ।"

"बको मत", गायता ने डाँटा, "आज के छोकरे सिच्छा देने चले हैं । हमने क्या धूप में बाल सुखाये हैं । दस बरस पहले भी तो ऐसा ही

पूर आया था। बैंगा ने अपने जंतर-मन्तर से बैरन को ऐसा बाँधा कि नौ बरस तक वह बँधी रही।"

"हाँ भाई, यह तो उजागर[1] बात है। कौन नहीं जानता। बस, बैंगा के आने की देर है।"

पारवती ने हाथ जोड़े, "हे काली देवी, बैंगा को जल्दी भेजो। हे जंगल की देवी, बैंगा को पंख दे दो।"

परमू ने दुहराया, "हाँ देवी, उसे पर दे दो, ताकि वह उड़कर आ जाय!"

पारबती, परमू की बात भाँप गयी। उसने दाँत पीसे। बोली, "देवताओं की हँसी उड़ाते शरम नहीं आती? बेशरम, मुरदार[2]।"

परमू पारवती के पास आ गया। बोला, "तू ही पंख दे दे न उसे। मैं तो तुझे ही देवी मानता हूँ पारवती।"

पारवती ने दाँत पीसे। परमू धीरे से हँसकर रह गया।

"लो बैंगा आ गया", किसी बुढ़िया के आशा-भरे, लड़खड़ाते स्वर थे। पर जैसे ही बैंगा के आने की यह खबर मिली कि सामने पीपल का झाड़ एक बड़ी आवाज के साथ पानी में तैर गया। गायता सिर से पैर तक काँप उठा। पानी की एक गरम लहर ने उसका पैर छुआ, तो वह मेंढक की तरह ऊपर उचटा। उसकी चीख दूर तक गूँज गयी। पलटकर उसने बैगा के हाथ जोड़े। बोला, "नौ वरस तेरे मंतर ने बैरन को बाँधा है। अब ऐसा मन्तर फूंक कि बैरन····।"

"नब्बे वरस तक बँधी रहे" परमू ने बात पूरी कर दी। पारबती खिसिया गयी। जोर से चिल्लायी, "इसे पानी में फेंक दो। इस पापी के कारण सारा गाँव डूब जायगा।"

सुन्दर ने आगे वढ़कर सचमुच परमू को उठाना चाहा। बोला, "फेंक दूँ गायता ?"

---

१. स्पष्ट, सर्वमान्य।

२. एक भद्दी गाली।

तब तक परमू ने अपने हाथ से एक ठेस देकर सुन्दर को नीचे धकेल दिया था। वह कीचड़ में सन गया था। पारवती नागिन की तरह फुफकारने लगी। उसने सुन्दर को उठाया। परमू जरा पीछे हट गया और आँखें फाड़े दोनों को देखता रहा। पारवती का छोटा भाई, जो अब तक शायद अपनी माँ के साथ था, पारवती के पास आ गया और सुबककर उससे लिपट गया। पारवती ने उसके ऊपर हाथ फेरा। बोली, "बस, पल-भर की बात है, बिन्नू। बैगा का मन्तर छूटने ही वाला है।"

बैगा ने आँखें भरकर बैरन को देखा। ऊपर-नीचे उसने हाथ घुमाया और सामने टकटकी लगाये होंठ हिलाता रहा। गायता के चेहरे पर अब एक हल्की-सी चमक आ गयी थी। उसके गले के स्वर बदल गये थे। गाँव के और बूढ़े भी चेतन हो गये थे। औरतों की फुसफुसाहट कम थी, पर लड़कों के रोने की आवाज बढ़ गयी थी। सभी ओर से हलके स्वर आ रहे थे। "अब देखें बैरन क्या करती है?" यह बैरन के लिए मानो एक चुनौती थी।

सुन्दर ने आवाज लगायी, "हमारे बैगा से ताकत आजमा ले, बैरन।" उसकी बात खतम हुई कि बाजू से ही छप्प से आवाज आयी। पारवती ने उसे पकड़ लिया। न पकड़ती, तो वह बह जाता। पास की कगार पानी में समा गयी थी और सुन्दर का पैर नीचे खिसक गया था। एक और ऊँची लहर आयी और गायता के पैर छूकर लौट गयी। गायता ने इशारा किया। सब पीछे हट गये। सबने एक साथ बैगा को देखा। वह अब भी ऊपर-नीचे हाथ घुमा रहा था। मन्तरों की फुसफुसाहट साफ सुनायी दे रही थी।

"भाग चलो, गायता।"—परमू ने कहा, "तुम अपने साथ क्यों सारे गाँव को ले डूबते हो? तुम गाँव के मुखिया हो। सब तुम्हारे इशारों पर चलते हैं, पर इसका मतलब यह तो नहीं कि तुम गाँव-भर की जान ले लो।"

"चुप रह"—एक बूढ़े ने डाँटा, "तुझे ही गाँव-भर की फिकर हैं ! हम तो यहाँ मजाक कर रहे हैं।"

सुन्दर ने कहा, "शहर की हवा लग गयी है इसे दादा। उसी का फल है यह। शहरों के बाजार घूम आया है न। वहाँ से न जाने कितने पाप उठा लाया है।"

"तुम इसे भले ही पाप समझो गायता, मैं साफ कह देता हूँ, आज बैरन से होड़ लेना सहज नहीं है। बहुत दिनों के बाद वह जागी है। नौ बरस के बाद उसमें तूफान आया है। इस तूफान को बाँधना बैगा के वश की बात नहीं हैं। आज का मुकाबला इस सारे गाँव को खतम कर देगा। यह एक क्रांति है दादा, इसे मत रोको। यह बैरन का तूफान नहीं, सभ्यता और संस्कृति का तूफान है। यह कब रुका है ? कौन इसे रोक सकता है ? मान छोड़कर घुटने टेक दो गायता। जब बैरन उतर जायेगी, हम अपने श्रम से नया गाँव बसा लेंगे—एकदम नया गाँव।"

परमू की बात के खतम होते ही बैगा की फुसफुसाहट भी कम हो गयी थी। उसके आधे पैर पानी में समा गये थे, पर उसके हाथ उसी तरह हवा में झूल रहे थे। पारवती घबड़ा गयी थी। उसने चाहा कि बैगा से पूछे बैरन क्या कहती है, पर वह पूछ न सकी। वह जानती है मंतर करते समय बैगा बोल न पायेगा। इस समय वह, वह नहीं है। वह तो स्वयं मंतर के साथ बँध गया हैं। तभी तो वह बैरन को बाँधेगा।

एक साथ रोने और चिल्लाने की आवाज आयी। सबने सुना—पच्छिम की चार झोपड़ियाँ, जो टेकरी पर बनी थीं, पानी में समा गयीं। उन्हीं के पास पारवती का झोपड़ा था। पारवती रो पड़ी। सुन्दर ने उसे धीरज बँधाया। पर, इस बार पारवती ने उसे भी झिड़क दिया। वह दो कदम पीछे हटी कि उसका भाई, जो उससे चिपटा खड़ा था, पानी में खिसक गया। "दौड़ो, दौड़ो। बचाओ !" पारवती जोर से चिल्लायी। सुन्दर ने पारवती का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। उसका भाई नीचे मिट्टी के साथ खिसकता गया। परमू ने देखा, अपनी धोती का छोर कमर में

कसकर वह छप्प से पानी में कूद गया। पानी की एक ऊँची लहर उठी। परमू चिल्लाया, "भाग जाओ, पारबती। इन भूखों के पंजों से भागो। मैं मरनेवाला नहीं। तैरकर कहीं पार लग जाऊँगा। तुम सब नये तूफानों के सामने झुकना सीखो।"

वह एक बार ऊपर उठा और दूसरी लहर के साथ ही पानी में खो गया। पारबती हाहाकार कर उठी। सुन्दर को धकिया कर वह पीछे हट गयी। पानी बैंगा की कमर तक आ गया था। गायता अब भी बैरन के उतरने की राह देख रहा था। और सुन्दर जो उसके भाई को डूबता देखकर पीछे हट गया था, पारबती के और पास चला जाना चाहता था। पारबती ने सुन्दर को फिर एक धक्का दिया और दौड़कर गायता के हाथ पकड़ लिये, "अब तुम गाँव को नहीं बचा सकते, गायता। परमू ठीक कहता था, आज बैरन बाँध में नहीं हैं। यह तूफान किसी के वश का नहीं है, न बैंगा के और न उसके देवता के। परमू का कहना गलत नही है....।"

'बचा ओऽओऽओऽऽ—' एक चीख तभी सुनायी दी। यह बैंगा की आवाज़ थी। दूसरी लहर ने उसे भी आत्मसात् कर लिया। अब देवता की प्रार्थना कौन करता? कौन मन्तर फूँकता! पारबती पूरा गला फाड़कर चिल्ला रही थी—"गायता मर गया समझ लो गांववालो! उसके हुकुम के लिए मत ठहरो, भागो, भागो।"

यह सुनकर गायता भी भागा और पारबती की बात काटने के लिए उसका गला न खुल सका। पारबती पूरब की पगडंडी से भाग रही थी उसी ओर पानी की लहरों के साथ परमू गया था। गाँव-भर ने उसका पीछा किया और यहाँ लहरें भी कम नहीं थीं—वे गांववालों का पीछा कर रही थीं।

